

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178696

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. *211.1* Accession No. *211.1*

Author *211.1*

Title *211.1*

This book should be returned on or before the date last marked below.

ऐयाश मुर्दे

लेखक

डा० रांगेय राघव



किताब महल इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९५३

प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद
मुद्रक—यूनियन प्रेस, प्रयाग

विषय-सूची

	पृष्ठ
देवदासी	१
पेड़	३३
गाज़ी	४२
अनुवर्तिनी	५७
कमीन	६२
पंच परमेश्वर	१००
काई	१२३
नारी का विक्षोभ	१४३
प्रवासी	१८१
नरक	२१६
सांभ के शिकारी	२५१
अधूरी मूरत	२६८
कुछ नहीं	२८०
धर्म का दांव	२९१
मृग तृष्णा	३०१
देवोत्थान	३०६
ऐयाश मुर्दे	३१४

देवदासी

उस समय मन्दिर निर्जन हो चुका था। निस्तब्धता सनसना रही। बाहर धीरे अन्धकार था। आकाश में बिजली कड़क रही थी। उस वक़्त ने तलवार को टेका और उठ खड़ा हुआ। भीतर सब काम कर चुकने पर पुजारी ने सोचा कि अब शीघ्र ही उसे प्रतिमा के चरणों पर गीश रखकर सोने जाना चाहिए।

पल्लव-राज के इस विशाल मन्दिर में कामाक्षी का यह भव्य स्वरूप खने के लिए दक्षिण पथ के अनेक भागों से लोग आ-आकर एकत्रित होते थे। तीन-सौ वर्ष पहले सातवाहनों के अन्त पर सम्राट् विष्णुगोप ने पल्लव साम्राज्य को स्वतन्त्र कर दिया था। उनके उत्तराधिकारी आज कदम्बों और गाणेशों के भी प्रभु थे। पेलार नदी के पास काञ्ची का भव्य नगर भुवन-विख्यात था। राज प्रासाद के विराट् अलिन्दों में दिन में अग्ररु-धूम जलता, रात्रि में दीपाधारों से प्रकाश जगमगाता। बाजार-हाट में सुदूर जावा-सुमात्रा के व्यापारी आ-आकर बैठते। समुद्र तीर पर अनेक सफ़ेद पाल वाले जहाज़ खड़े रहते, प्रकाश-स्तम्भों से रात हो किरणें फूट-फूटकर अथाह सागर की चञ्चल जलराशि पर खेल उठतीं। महेन्द्र के समान विक्रमी सम्राट् सिंहविष्णु के चरणों पर आज ताचीन चोल और पाण्ड्य के रत्नजटित मुकुट रखे थे, चालुक्य राजा मैत्री का कर बढ़ा दिया था। सम्राट् सिंहविष्णु युवावस्था को आज अनेक वर्ष पहले पार कर चुके थे। राजकुमार महेन्द्र वर्मा की सन्त प्रप्यारस्वामी के प्रति श्रद्धा होना प्रजा में प्रसिद्ध हो चुका था। क्योंकि वह पिता की आज्ञा के बिना ही नगर के ईशान कोण में शैव मन्दिर बनवा रहे थे।

पुजारी रत्नगिरि ने इधर-उधर देख भक्ति से प्रतिमा को प्रणाम

किया और सोने चला गया। प्रायः आधी रात बीत गयी। आकाश में बादल गरज रहे थे। मन्दिर का विशाल प्राङ्गण पानी से भीग गया था। उसी समय बिजली बड़े वेग से कड़क उठी। मन्दिर का विशाल गोपुर अन्धकार में एक बार चमक उठा। युवक तलवार लिये कुछ देर खड़ा रहा, फिर बाह्य परिवेष्टि को लाँघकर भीतर अलिन्द में आ गया। वह एक स्तम्भ के पीछे हो गया और अन्धकार में कुछ देखने का प्रयत्न करने लगा।

किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर धीरे से कहा—‘आ गये रङ्गभद्र ?’

रङ्गभद्र ने मुड़कर कहा—‘तुम बुलाती और मैं न आता रुक्मिणी ! देवदासी का कहना तो भगवान् भी नहीं टाल सकते फिर मैं तो साधारण मनुष्य हूँ।’

‘तुम सचमुच बड़े साहसी हो कुमार !’ देवदासी ने धीरे से कहा। युवक ने उसका यह दीर्घ निश्वास भी सुना। उसने उद्वेग से उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—‘रुक्मिणी, मैं कब तक तुम्हारी अवहेलना में तड़पता रहूँगा ? कब तक मैं उस भविष्य के सागर में लहरों की दया पर अपना पोत भटकाता रहूँगा ? आज प्रायः एक वर्ष बीत गया। अब मुझे फिर सिहल लौट जाना होगा। अब के मैं सिहल के बहुमूल्य मोती काशी भेजने का व्यापार करना चाहता हूँ। चलोगी मेरे साथ ?’

देवदासी ने कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप देखती रही। युवक ने फिर कहा—‘सुन्दरी, तुम किस चिन्ता में डूब गयी हो ? धन की कमी नहीं, धर्म की कमी नहीं, अधिकार की कमी नहीं, प्रेम की कमी नहीं और तुम रूपशालिनी हो तो फिर मुझे रूप की कमी नहीं—फिर तुम्हें कौन सी चिन्ता खाये जा रही है ?’

देवदासी काँप उठी। उसने धीरे से कहा—‘धीरे कुमार, धीरे; कहीं देवता न सुन लें। मैं जाती हूँ।’

देवता का अपमान करना है मूर्ख लड़की ! यदि तेरे हृदय में पाप है तो तू मन्दिर छोड़कर चली जा ।'

इससे पहले कि रत्नगिरि कुछ कहे रुक्मिणी परिक्रमा की और चल पड़ी । उन्मत्त सा धनञ्जय उसके पीछे चल दिया । सूर्यमणि कटे वृक्ष सी भूमि पर गिरकर रोने लगी । समुदाय तितर-बितर होने लगा । रत्नगिरि कुछ भी नहीं समझा । इस प्रकार अकारण व्याघात से उसका चित्त सूर्यमणि से उदासीन हो गया । वह उठकर भीतर चला गया । सूर्यमणि स्तम्भ के किनारे रोती रही ।

—३—

वृद्ध सिन्धुनाद कवि था । सूर्यमणि उसकी एकमात्र पुत्री थी । जब वह गाता था साम्राज्य का बड़े-से-बड़ा कठोर हृदय सेना का उच्च पदाधिकारी भूम उठता था । उसके गीतों को आज पल्लव ही नहीं, चोल और पाण्ड्य के घर-घर की स्त्रियाँ गातीं, पुरुष मुग्ध होकर सुनते और सम्राट् सिंहविष्णु उसे अपने भाई के समान प्यार करते । देवदासियाँ उसके गीतों पर जिस तन्मयता से नृत्य करतीं उसे देखकर लगता जैसे वह सचमुच देवकन्या हों । उसके गीतों की प्रवाहमान लय प्राची से पश्चिम तक गगन में अनन्त वणों से भरी नीलिमा की छाया सी काँपती रहती और प्रेम और करुणा का वह स्रोत कहीं भी समाप्त नहीं होता, कहीं भी जैसे विश्रान्ति को आवास न मिलता ।

सिन्धुनाद इस समय वीणा के तारों पर उँगलियाँ फेरकर यौवन के खोये हुए स्वर का उत्ताल ढूँढ़ रहे थे । उनके शरीर पर बहुमूल्य रेशम मन्द-मन्द वायु में फहरा रहा था । उनके प्रकोष्ठ की दीवारों पर सुदूर ताम्रलसि के प्रसिद्ध चित्रकारों ने अद्भुत चित्र अंकित किये थे । स्फटिक के स्तम्भों पर दीपों का झिलमिल प्रकाश प्रतिध्वनित हो रहा था, जैसे बादलों में बिजली चमक रही थी । मादक सुरभि-वाही समीर जब अग्रभूमि की कवरी खोलकर नृत्य करने लगता था तो दीवारों पर

छायाएँ मुद्रा बनाने लगतीं और वीणा के करुण स्वर रुमरुम करते वायु की लहर-लहर पर गा उठते ।

सिन्धुनाद इस समय दमयन्ती का विलाप गा रहे थे । उनकी यह कविता अजर-अमर हो जायेगी । आज उनके भाव सीमा में नहीं थे । नल चला गया है । दमयन्ती पेड़-पेड़ से पूछ रही है, मृग-मृगी कातर होकर रो पड़े हैं, आकाश में प्रतिपदा का चंद्र उग आया है, सघन वन-स्पति पर उसकी विलोल-मुखरा किरणें काँप रही हैं जैसे सागर पर फैन काँप रहे हों, जैसे श्यामा सुंदरी के कर्णफूलों की आभा से कपोलों पर प्रकाश रणरण करता अवगुण्ठन खींच रहा हो ।

सिन्धुनाद तन्मय होकर विभोर हो गये । एकाएक भारी-भारी श्वास लेती सूर्यमणि ने प्रवेश किया और चुपचाप पास बैठकर सुनने लगी ।

दमयन्ती उस समय आकाश के तारों से पुकार-पुकार कर पूछ रही थी—हे नील असीम के बुदबुदों ! हे अनंत कवरी के शीशफूलों ! कहाँ है वह मेरे हृदय की एकमात्र सात्वना ?

सूर्यमणि रो उठी । वृद्ध का स्वप्न टूट गया । गीत के आवत्तों में पड़कर सूर्यमणि के टूटे प्यार की भग्न नौका भटके खाने लगी । वह पिता की गोद में सिर रखकर रोने लगी । वृद्ध ने एक हाथ से वीणा को हटा दिया और फिर उसने कहा—‘क्या हुआ बत्से ?’ पहले उसने समझा शायद गीत को सुनकर रो रही है । सूर्यमणि ने कुछ नहीं कहा । वह रोती रही । उसके मुख की पत्र-लेखा बिगड़ गयी । वृद्ध ने उसका सिर उठाया । वेदना से उसका मुख कातर हो उठा था । वृद्ध का हृदय विह्वल हो उठा । उसने कहा—‘पुत्री, तुझे किस बात का शोक है ? मैंने आज तक कभी तेरी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया । आज तक तू ही मेरे जीवन का एकमात्र सहारा रही है । फिर तेरे नयनों में यह व्याकुल अश्रु किसलिए ? करुण रात्रि की भाँति तेरे इन पङ्कज दलों पर यह नीहार-कण क्यों ?’

सूर्यमणि ने कुछ उत्तर नहीं दिया । वह रोती रही । उस समय कवि को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे साक्षात् कामाक्षी आज ग्लपयित कण्ठ से उच्छ्वास रुद्ध-सी आर्चमना सिसक उठी थी । उसके नयनों में आँसू छा गये । देर तक दोनों कुछ न बोले । सिन्धुनाद अपनी पुत्री के सिर पर हाथ फेरते रहे, जैसे उन्होंने कविता को सहला दिया था । सूर्यमणि के सघन सुचिक्कण केशों पर वृद्ध का वात्सल्य से भरा आर्द्र श्वास ऊष्मा से भरकर बिखर गया । सूर्यमणि का हृदय उद्वेग से बारंबार ठोकर खाकर गिर जाता और आँसू बह-बह आते ।

वृद्ध ने आंदोलित होकर कहा—‘सूर्ये, कह न ? क्या कष्ट है तुझे, जो पावस की नदी की भाँति तेरे आँसू अज्ञातवास करने निकले जा रहे हैं ?’

सूर्यमणि ने सिर उठाया । आँखों में आँसू चमक रहे थे, जैसे हीरक के चपक में वारुणी छलक रही थी । डबडबाते अश्रु प्रभात के उज्ज्वल प्रकाश के समान काँप रहे थे अथवा जैसे सीप में मोती जगमगा उठे हों ।

‘सूर्यमणि’, वृद्ध ने फिर कहा—‘पल्लव के इस समुद्र पर्यंत साम्राज्य में मैं तेरे अतिरिक्त किसी को भी इतना भाग्यशाली नहीं गिनता था । आज तेरी आँखों में यह अश्रु क्यों ? सिन्धुनाद ने वही किया जो तूने चाहा । जिसके लिए राजकुमारियाँ लालायित थीं उस कामदेव के सदृश लावण्य-मनोहर धनञ्जय की तू पत्नी होनेवाली है फिर तुझे कैसा दुःख ?’

सूर्यमणि ने धीरे से कहा—‘पिता, वह मेरी उपेक्षा कर रहा है । आज देवमन्दिर में एक साधारण नर्तकी के पीछे पागल-सा घूम रहा था । मैं हृदय को साक्षी करके कहती हूँ, उसने मुझे एकबार भी मुड़कर नहीं देखा ।’

‘यह नहीं हो सकता सूर्यमणि, यह नहीं हो सकता ।’ वृद्ध सिन्धुनाद उठ खड़े हुए । ‘किंतु’, उन्होंने कहा—‘प्रेम में बल नहीं चल सकता । मैं जानता हूँ धनञ्जय युवक है । यौवन प्रेम के अतिरिक्त लोभ में भी

पड़ सकता है। किंतु बल-प्रयोग भी तो नहीं किया जा सकता। मैं उसे समझाऊँगा पुत्री, इतनी व्याकुल न हो।'।

‘नहीं पिता’ उच्छ्वसित सूर्यमणि ने कहा—‘नर्तकी मुझसे भी सुन्दर है। उसका रङ्ग तुहिन-सा श्वेत, कमल-सा लालिम, रेशम-सा चिकना है और सागर-सा गम्भीर रूप है। उसमें अनावृत यौवन है, मादकता में वह मेनका जैसी है। उसके नयनों में त्रिभुवन काँपते हैं, मेखला की प्रभा से उसकी मन्द-मन्द गति में भुवनमोहिनी वशीकरण की शक्ति आ जाती है। उसकी कोमल बाहु जब नृत्य करने में लचकती हैं तब स्वर्ग का सुख जैसे तुला पर टँग जाता है। उसके केशों की सुरभि से देवमंदिर कमल-वन की भाँति सुगंधित रहता है, उसकी मासल गरिमा पर चीनांशुक ऐसे दिखायी देता है जैसे शरद् के प्रसन्न आकाश में धवल स्वर्ग-गङ्गा का मुखरित प्रवाह हो...’।

सिन्धुनाद हठात् बोल उठे—‘सूर्यमणि वह कौन है?’

सूर्यमणि ने पराजित स्वर में कहा—‘पिता, वह देवदासी रुक्मिणी है।’

‘देवदासी रुक्मिणी!’ उनके मुख से आश्चर्य से निकल गया।

‘हाँ, पुजारी रत्नगिरि की पुत्री रुक्मिणी।’

‘ओह!’ कहकर कवि सिन्धुनाद बैठ गये जैसे एकाएक चलते-चलते महानद थम जाय और समस्त लहरों का कलकल नाद क्षण भर के लिए रोककर स्तब्ध हो जाय। उन्होंने कहा—‘सूर्यमणि, तू जा। मुझे सोचने दे।’

सूर्यमणि चकित-सी लौट आयी। वृद्ध सिन्धुनाद को कुछ भी नहीं सूझा। वह चुपचाप वैसे ही बैठे शून्य दृष्टि से सामने जलते दीपाधार में काँपती शिखाओं को देखते रहे।

पुजारी रत्नगिरि सोच में पड़ गया। उसके वृद्ध मुख पर चिंता की रेखाएँ खिच गयीं। कुछ देर वह टहलता रहा। वृद्ध सिन्धुनाद ने कहा—‘तुम जानते हो रत्नगिरि, सब कुछ जानते हो। पर देवदासी के प्रति धनञ्जय का हृदय आकर्षित है यह तुम भी नहीं जानते, मुझे इसका विस्मय है।’

‘तुम भी वृद्ध हो गये हो सिन्धुनाद ! जीवन भर जिसने अटूट विश्वामित्र सा दर्प कभी नीचा नहीं होने दिया, जिसके पवित्र जीवन से संसार विस्मित हो उठा था, जिसके सामने सम्राट् सिंहविष्णु एक साधारण नागरिक की भाँति सिर झुकाकर खड़ा रहता है उसकी बात पर तुम संदेह कर रहे हो ? जिसने तुम्हारे जीवन के महान्तम पाप को छिपाने के लिये अपने युग-युग के संचित तप और यश को तुकरा दिया, जिसने ब्रह्मचारी होकर भी केवल तुम्हारी मित्रता के लिए रुक्मिणी को अपनी पुत्री कहकर प्रसिद्ध कर दिया, उसकी बात पर तुम अविश्वास कर रहे हो ?’

सिन्धुनाद ने कम्पित कण्ठ के कहा—‘मित्र, यह तुम क्या कह रहे हो ?’

रत्नगिरि ने कहा—‘तुम मेरे बाल्य-सखा ही नहीं, गुरुभाई भी हो। तुम कवि हो। सौंदर्य को छलना ही तुम्हारे अन्तःस्तल की अंतिम प्रेरणा है। जिस दिन तुमने राजकुमारी इंदिरा को देखा था उसी दिन मैंने तुमसे कहा था कि तुम भूल कर रहे हो। किन्तु तुमने कुछ भी नहीं सुना। आज से बीस वर्ष पहले जब तुम रुक्मिणी को गोद में लेकर आये थे मैंने उसे बिना हिचकिचाये गोद में उठा लिया था। राजकुमारी इंदिरा आज राजमाता इंदिरा है। आज संसार उसके पुण्य की गाथा गा रहा है। वह नहीं जानती कि उसका पाप आज भी जीवित है। उससे कह चुका हूँ कि रुक्मिणी मर चुकी है। किन्तु सिन्धुनाद, आज जब वह पाप मानव-सत्ता के परम पुण्य के रूप में मुझे एकमात्र

सान्त्वना दे रहा है, तुम उस पर लाच्छुन लगा रहे हो ? रुक्मिणी की पवित्रता तुषारघौत शतदल के समान है, देवता में उसकी भक्ति सुमेरु के समान है । उसने अपना तन-मन-धन केवल देवता की सेवा में अर्पित कर दिया है । वह मनुष्य से प्रेम कर सकती । मैं उसे नहीं दे सकता । देवी कामाक्षी की शपथ है, मैं उसे नहीं दे सकता ।’

‘तब तो सूर्य्यमणि रो-रो कर मर जायगी ?’ सिन्धुनाद ने करुण स्वर से कहा—‘बोलो रत्नगिरि, मेरा इस संसार में और कौन है ? किस-लिये मैं इतनी माया-ममता को परवश सा आज भी सहेजे बैठा हूँ । यश नहीं चाहिए, धन नहीं चाहिये । सासारिक भोगों से मैं तृप्त हो चुका हूँ । देवदासी रुक्मिणी को कुछ दिन के लिये तुम छिपा नहीं सकते ? धनञ्जय उसके पीछे पागल हो रहा है । यदि यह दीपशिखा उसके सामने रहेगी तो वह शलभ की भाँति परिभ्रमण करके अपने पंख जला लेगा । देवदासी से कभी भी उसका विवाह नहीं हो सकता । फिर सूर्य्यमणि के जीवन पर आघात किस लिए ?’

रत्नगिरि गम्भीर स्वर से चिल्ला उठा—‘सिन्धुनाद, रुक्मिणी भी तुम्हारी पुत्री है । क्या तुम एक पुत्री के लिए दूसरी का अहित करना चाहते हो ? जब संसार में तुम्हें राजकुमारी इंदिरा से बढ़कर कुछ भी नहीं था उस समय रुक्मिणी ही तुम्हारी संतान थी । क्या अब तुमको उससे तनिक भी स्नेह नहीं ? क्या संसार के नियमों में तुम्हारा हृदय इतना कायर हो गया है कि यदि संसार नहीं कह सकता तो तुम भी उसे पुत्री नहीं मान सकते ?’

सिन्धुनाद उद्भ्रात से इधर-उधर घूमने लगे । उनके मुख पर आशङ्का काँप रही थी । वे दो पाषाणों के बीच में भिंच गये थे । उन्होंने मुड़कर कहा—‘तो रत्नगिरि, देवदासी को मुझे दे दो । मैं साम्राज्य के नियमों को ठोकर मार कर, देवता का अपमान करके, अपने प्राणों का

मोह छोड़कर उसे अपनी पुत्री घोषित करूँगा और उसका कहीं विवाह कर दूँगा ।’

रत्नगिरि ने धीरे से कहा—‘यह नहीं हो सकता सिन्धुनाद !’

‘तुम डरते हो रत्नगिरि ?’ सिन्धुनाद ने आगे बढ़कर कहा—‘राज-माता इंदिरा का सतीत्व डूब जायगा ? पांड्य, चोल और चालुक्य देशों में पल्लवराज के कुटुम्ब की निन्दा के गीत गाये जायेंगे ? सिन्धुनाद का पाप प्रकट हो जायगा ? रत्नगिरि की घोर मिथ्या सूर्य की तरह जगमगा उठेगी, इसलिए ?’

‘नहीं’, रत्नगिरि ने कहा—‘रुक्मिणी फिर से पाप में लिप्त नहीं हो सकती । वह देवता को निष्काम रूप से अर्पित हो चुकी है । वह लौटाई नहीं जा सकती । उसका जीवन धर्म का एक महान् छंद है, उसको अपौरुषेय कहकर ही गाया जा सकता है । वह कोई साधारण हाटों में नाचने वाली स्त्री नहीं है, वह कलाओं में पारङ्गत होकर पुरुषों से पुष्कल के लिये विलास करनेवाली गणिका नहीं है । वह उत्सर्ग कर चुकी है अपना स्त्रीत्व, अपना मानृत्व, आजन्म कुमारी रहने के लिए । वह नहीं लौट सकती । वह देवता की सम्पत्ति है । सिन्धुनाद, तुम कर्त्य-अकर्त्य का भेद नहीं समझ पा रहे हो । तभी तुम कविता का प्रथम चरण प्रेम भूल गये हो । जाओ लौट जाओ ! देवदासी तुम सबसे अस्पृश्य आकाश-मन्दाकिनी का कमल है । उसे तुम नहीं पा सकते ।’

सिन्धुनाद आर्त्त-से बैठ गये । उनसे कुछ भी नहीं कहा गया । उन्हें चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा छाता हुआ दिखने लगा । उनके सामने सूर्यमणि का आतुर स्वरूप बार-बार घूम गया, जो उनकी प्रतीक्षा करती होगी, जिसे नहीं मालूम कि रुक्मिणी उसी की बहिन है । जिस पिता की कीर्त्ति से आज पल्लव साम्राज्य में स्थित सरस्वती का अञ्चल श्वेत से भी अधिक उज्ज्वल हो उठा था, उसी का पाप वह कैसे सुन सकेगी । कैसे सह सकेगी वह यह घोर अधकार की गाथा ?

वह कुछ भी नहीं सोच सके। एक दीर्घ निश्वास छोड़कर वे मंदिर से बाहर चल दिये और बाहर खड़े स्वर्ण रथ पर जा बैठे। सारथि ने रथ हाँक दिया। वृद्ध सिन्धुनाद की आँखों में आँसू भर आये। उनके हृदय में आँधी चल रही थी।

रात्रि के घनघोर अंधकार में एक छाया-सी चलने लगी। दूसरी ओर से दूसरी छाया का अङ्गचालन हुआ। एक ने दूसरे के पास आकर कहा—‘कौन ? रङ्गभद्र तुम आ गये ?’

‘हाँ देवी !’ रङ्गभद्र ने धीरे से कहा—‘क्या तुम तत्पर हो ?’

रुक्मिणी ने कुछ नहीं कहा। रंगभद्र बोला—‘देवि ! यहाँ तुम्हारा मान तब हो सकता है जब तुम अर्थ के फूल के समान अपनी गंध स्वयं नहीं पहिचान पाओगी। तुम्हारी मनुष्यता के हनन पर तुम्हारा यह स्वर्ग है। किन्तु क्या तुम्हारे हृदय में कोई कोमलता शेष नहीं है ? क्या केवल पाषाण हो ? किन्तु कामाक्षी के मंदिरों में प्रस्तर गाते हैं, प्राचीरें बोलती हैं। एक तुम हो जो अपने जीवन को देव-सेवा की छलना में बिताये जा रही हो। कभी किसी से दो पल प्रेम की बात नहीं, तुम तो स्त्रीत्व के प्रारम्भिक चिह्न तक भूल गयी हो। किसलिए यह सब रुक्मिणी ?’

‘देवता के लिये रंगभद्र। क्या यह सब त्याग करना मेरे लिए पाप नहीं होगा ?’

‘पाप ?’ रंगभद्र ने हँसकर कहा—‘पाप यह नहीं है कि जीते-जागते मनुष्य को एक कठपुतली बना दिया है ? उससे उसकी दृष्टि छीनकर दूसरों को लूटने के लिए उसे नयन दे दिये हैं, उससे उसके हृदय का अपहरण करके उसे दूसरों के हृदयों पर दस्युवृत्ति करने के लिए छोड़ दिया है ? यदि मनुष्य को झूठे प्रलोभन देकर उसे मनुष्य नहीं रहने दिया तो इससे बढ़ कर और कौन-सा पुण्य होगा ?’

‘रंगभद्र ! पिता ने तो देवसेवा को संसार का सबसे बड़ा सुख बताया है। फिर तुम क्या कह रहे हो ? मैं तुम्हारे मुख से पाप को बोलता

हुआ सुनकर काँप उठती हूँ। किन्तु न जाने तुम जो कहते हो अनाचक ही क्यों मेरे हृदय पर आघात कर उठता है। मैं नहीं जानती तुम मुझे इतने अच्छे क्यों लगते हो ?

रंगभद्र का मुख प्रफुल्लित हो गया उसने कहा—‘रविमणी, वह स्त्री नहीं जो अपने प्रेमी के आलिङ्गन में बद्ध होकर विभोर नहीं हो सकती, जो आँखों में आँखें खोकर एक बार कलकण्ठ से उसे अपना स्वामी कहने को उद्यत नहीं हो सकती। कहाँ है तुम्हारे जीवन की नीरव हाहाकार करती वेदना का अन्त, कुमारी ? जिस देवता के पीछे तुम पागल हो रही हो, क्या कभी उसने तुम्हारे हृदय पर हाथ रख कर उसकी धड़कन को सुना ? क्या बसंत के मलयानिल में पुंसकोकिल की कुहू सुनकर कभी तुम्हारे हृदय में हूक नहीं उठी ? बोलो देवदासी ! यदि प्रेम पाप है तो किसलिए कालिदास का नाम आज प्रातःस्मरणीय है ? किसलिए इस समस्त भूलोक में प्राणी एक-दूसरे के लिए कातर हैं ? यदि प्रेम पाप है तो तुम्हें क्यों आजीवन देवता से प्रेम रखने का दुरभिमान सिखाया गया है ?’

देवदासी सोच में पड़ गयी। रङ्गभद्र उन्मत्त-सा कहता रहा—‘क्या यह माधवी रजनी की अनन्त सुलगन शून्य में केवल हाहा खाने के लिए है ? तुम्हारा यह अनिन्दित रूप, जिसको आज संसार उपेक्षा के भयावह गर्त में डाले बेसुध है, किस लिए यौवन की भुजाएँ फैलाकर हृदय में उतरता चला जाता है ? पल्लव साम्राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी नहीं जानती कि यौवन क्या है ? नहीं है ज्वालामुखियों में वह ताप, नहीं है आकाश के नक्षत्रों में वह रूप जो तुम्हारे श्वास में है, जो तुम्हारे नयनों में है ? काञ्ची की कुल नारियों के रूप का गर्व तुम्हारी अनन्त रूपराशि के सामने धूल के तुल्य है देवी !’

देवदासी ने कहा—‘यही तो सेनापति तनय धनंजय कहते थे।’

‘धनञ्जय ?’ रङ्गभद्र ने काँपते स्वर से पूछा—‘क्या वह आया था ? तुम्हें कब मिला ?’

देवदासी ने सिर उठाकर कहा—‘कल दिन में नृत्य हुआ था । सूर्यमणि ने अचानक नृत्य रोक दिया । उससे रोषित होकर मैं भीतर चली गयी । पीछे-पीछे ही वह भी आ गया ।’

‘फिर ?’ रङ्गभद्र ने आशङ्कित होकर पूछा ।

‘फिर वह कहने लगे—मुन्दरी, तुम्हारे सामने सूर्यमणि कुछ भी नहीं है । मैं उसे तनिक भी नहीं चाहता । मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ । संसार में मेरी कोई अभिलाषा नहीं, केवल तुमको प्राप्त करना चाहता हूँ ।’

रङ्गभद्र ने उत्सुक होकर आवेग से पूछा—‘और देवदासी, तुमने क्या कहा ?’

रुक्मिणी ने उत्तर दिया—‘और देवदासी ने क्या कहा यह भी जानना चाहते हो ? मैंने कहा—तुम मूर्ख ही नहीं पतित हो । एक देवदासी से तुम्हें ऐसी बात करते लजा नहीं आती ? क्या तुम अपने को राजवंश को उच्चारित करने का साहस करते हो ? तुम्हारे वाक्यों में भीषण हलाहल है जिससे देवमन्दिर की ईंट-ईंट मूछित होती जा रही हैं । तुम नारायण की पवित्र विभूति को अपमानित करने का दुस्साहस कर रहे हो ? जिससे तुम बात कर रहे हो वह साधारण स्त्री नहीं, एक देवदासी है ।’

उसका श्वास फूल गया । वह चुप हो गयी । रङ्गभद्र मन्त्रमुग्ध-सा उसकी ओर देख रहा था । उसने कहा—‘धन्य हो तुम देवदासी ! तुम प्रेम करना जानती हो । किन्तु जिस पाषाण को तुम जीवन का सर्वस्व बनाती हो वह आत्मा का हनन है । मनुष्य की चरमशान्ति शुष्क ज्ञान नहीं, भक्ति है । वह भक्ति नहीं जिसमें त्याग का दम्भ हो देवदासी ! मैं तुम्हें व्यर्थ ही यह जीवन नष्ट नहीं करने दूँगा । कहो रुक्मिणी, तुम मुझसे प्रेम करती हो ?’

रुक्मिणी ने कुछ नहीं कहा। अंधकार में ही उसके हाथ ने रङ्गभद्र के हृदय हाथ को पकड़ लिया। रङ्गभद्र ने उसे अपने पास खींच लिया। दोनों देर तक एक-दूसरे की आँखों में भाँकते रहे। रङ्गभद्र ने धीरे से कहा—‘तुम्हारे चरणों पर जीवन का समस्त वैभव उठाकर भिक्षा माँगेगा। तुम्हारे पाँव मेरे हृदय पर चलेंगे। तुम पल्लव साम्राज्य की सबसे बड़ी धनवती, सर्वश्रेष्ठ सुंदरी, सबसे अधिक भाग्यशालिनी स्त्री होगी रुक्मिणी ! असमय का यह वैराग्य जैनियों को शोभा दे सकता है जो अपने शरीर को कष्ट देना ही जीवन का निर्वाण समझने की भूल करते हैं। तुम वैकुण्ठ की लक्ष्मी हो। काशी में मोती बेचकर मैं दक्षिण पथ का सबसे धनवान व्यक्ति हो जाऊँगा। भूल जाओ यह परिमित सीमाओं के बन्धनों को ही अंतिम सत्य समझने की कल्मषभरी छलना। तुम देवदासी नहीं हो, नारी हो। स्त्रीत्व का अधिकार तुमसे कोई नहीं छीन सकता।’

देवदासी का हृदय धड़क उठा। उसका कण्ठ वाष्पस्फीत हो गया। अंधकार में दूर, बहुत दूर कुछ हल्के से तारे टिमटिमा रहे थे। और कुछ नहीं। विशाल प्राङ्गण, दीर्घ स्तम्भ, वक्राकार अलिद—द्वार सब अंधकार में एक हो गये थे। निर्जनता से चारों ओर वायु कोलाहल-सा मचा रही थी। देवदासी की आशङ्का मन ही मन भयभीत हो गयी। उसने अपना हाथ रङ्गभद्र के वक्ष पर रख दिया और विभोर-सी खड़ी रही। रङ्गभद्र ने कहा—‘परसों मैं सिंहलद्वीप जा रहा हूँ। प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरे साथ पोत पर आरुढ़ होकर मेरी अर्द्धाङ्गिनी के रूप में चलोगी। परसों काञ्ची के देव-मन्दिर में महोत्सव होगा। उस दिन लोग अपने-अपने काम में संलग्न होंगे। किसी को भी अधिक चिंता नहीं होगी। हम तुम परिक्रमा के पीछे वाली पुष्करिणी के पास मिलेंगे और तुम निर्भीक, पाप की भावना से हीन मेरे साथ चली चलोगी, क्योंकि तुम मुझे प्रेम करती हो।’

देवदासी ने अपना सिर रङ्गभद्र के सुदृढ़ वक्षस्थल पर टेक दिया । उसकी आँखें बंद हो गईं और मुँह से धीरे से उच्छ्वसित हुआ—‘मैं प्रतिज्ञा करती हूँ रङ्गभद्र, मैं चलूँगी । तुमने मेरी नीरवता मे जो वीणा बजायी है उससे मेरा रन्ध्र-रन्ध्र गूँज रहा है । मैं अवश्य चलूँगी ।’

रङ्गभद्र ने अंधकार में उसके केशों को चूम लिया । देवदासी लाज से मुस्करा उठी ।

—६—

राजमाता इंदिरा उद्यानमन्दिर में विष्णु के चरणों पर सहस्र शत-दल कमलों का धीरे-धीरे विसर्जन कर रही थी । उनका हृदय पवित्र और स्निग्ध था । जब वे पूजा समाप्त करके उठीं उन्होंने देखा सूर्य्यमणि उदास-सी सामने खड़ी थी । राजमाता के मुख पर करुण प्रभा फैल गयी । उन्होंने कहा—‘सूर्य्यमणि, आज तू इतनी उदास क्यों लगती है ? श्याम मेघ की तरल-छाया आज तेरे नयनों में आश्रमहीना-सी क्यों काँप रही है ? आज तू निदाघ के कानन की भाँति क्यों यह दीर्घ निश्वास छोड़ रही है ? सिकता पर चञ्चल क्रीड़ा करनेवाली लहर के समान तेरी स्मित आज एकदम ही कहाँ लुप्त हो गयी ?’

सूर्य्यमणि ने सिर झुका लिया । राजमाता ने स्नेह से फिर कहा—‘महाकवि की तनया को ऐसी कौन-सी पीड़ा व्याकुल कर उठी है ? बोल बेटी !’

सूर्य्यमणि ने कहा—‘कुछ नहीं माता, ऐसे ही आज कुछ चित्त में अनबूझ-सी ग्लानि छा गयी थी ।’

राजमाता चुप हो गयीं । उन्हें याद आया कि एक दिन वह भी सिन्धुनाद के प्रेम में ऐसी ही व्याकुल हो उठी थीं । आज बीस वर्ष बीत गये । वह अब चालीस वर्ष की थीं । सिन्धुनाद पचास से ऊपर था ।

उन्होंने मन ही मन अपने उस पाप को भूलने के लिए नारायण का स्मरण किया । हृदय निर्मल हो गया । आज वे राजमाता थीं । उनके

पवित्र आचरणों पर दक्षिणापथ को गर्व हो सकता था। उनके पति ने अपार विक्रम से चोलराज के दाँत खट्टे कर दिये थे। सम्राट् सिंहविष्णु ने तभी से विधवा को अपने संरक्षण में ले लिया था। उन्होंने कहा—
‘सूर्यमणि, तेरा विवाह कब का निश्चित हुआ है?’

सूर्यमणि ने मुँह फेरकर उत्तर दिया—‘बसन्त पञ्चमी को’—और वह वहाँ से चली गयी।

एक दासी ने झुककर कहा—‘महाकवि आये हैं देवी!’

‘महाकवि!’ राजमाता ने विस्मय से सिर उठाकर पूछा।

‘हाँ देवी!’ दासी ने सिर झुकाकर उत्तर दिया।

‘उनको उद्यान में ही ले आओ।’

दासी चली गयी राजमाता शङ्कित होकर इधर-उधर घूमने लगीं। उनका हृदय भीतर-ही-भीतर काँप उठा। आज वह उस व्यक्ति को बीस वर्ष बाद फिर देखेंगी जिसकी स्मृति भी उनके जीवन का एक महान् पाप है।

इसी समय वृद्ध सिन्धुनाद ने दासी के साथ प्रवेश किया। राजमाता इन्दिरा ने उन्हें आगे बढ़कर स्वागत दिया। एक सङ्गमर्मर की चौकी पर सिन्धुनाद बैठ गये। दासी चली गयी। राजमाता ने दृष्टि उठाकर देखा और फिर उनका शीश झुक गया। सिन्धुनाद के नयनों में आज वही चमक थी जो बीस वर्ष पहले उनके सर्वनाश का कारण बन गयी थी। उन्होंने सारंगपाणि का मन-ही-मन फिर स्मरण किया और कहा—
‘कवि, आज आपने कैसे कष्ट किया?’

सिन्धुनाद ने धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ किया—‘एक दिन अनेक वर्ष पहले हम तुम इसी उद्यान में अपना सब खो बैठे थे। किन्तु उस दिन भी तुमने मुझे अपना सब कुछ दिया था। आज मैं फिर तुमसे तुम्हारा सब कुछ माँगने आया हूँ।’

राजमाता ने कहा—‘कवि, मैं कुछ भी नहीं समझी। तुम मुझसे

क्या लेना चाहते हो ? सूर्यमणि के लिए मैंने स्वयं धनजंय जैसा उपयुक्त वस्त्र खोज दिया है फिर और तुम मुझसे क्या माँगना चाहते हो ?

सिन्धुनाद ने कहा—‘देवी, धनञ्जय एक देवदासी की ओर आकृष्ट है। वह सूर्यमणि की उपेक्षा कर रहा है।’

राजमाता निष्प्रभ हँसी हँस उठीं। उन्होंने कहा—‘तो इतने मर्महत क्यों हो कवि ! एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे ?’

‘नहीं देवी आज मैं सभी कुछ सुनूँगा।’

‘तो सिन्धुनाद’, राजमाता ने कहा—‘देवसेवा के लिए अर्पित इन सहस्रों बालिकाओं के जीवन में और एक साधारण गणिका के जीवन में भेद ही क्या है ? साम्राज्य का धर्म भले ही इसे स्वीकार न करे, किन्तु जिन सामन्तों के यहाँ नगर की प्रजा की ललनाएँ कुछ दिन दासी बनने आती हैं और अपने यौवन की भेंट देकर लौट जाती हैं उन सामन्तों के यहाँ क्या देवदासियाँ वेश्या ही नहीं होती ? क्षमा करो कवि, दिन में वे देवसेवा करती हैं, रात को छिपकर पुरुष-सेवा ! कवि, यौवन कभी भी सत्पथ पर नहीं चल सकता। उसकी टोकर से विद्वत् उँगलियों का रक्त सदा के लिये पथ पर छूट जाता है। फिर तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों ? कौन है वह देवदासी जो धनञ्जय के रूप की अवहेलना कर सकेगी ? कौन है वह साधारण नर्तकी जो धनञ्जय के बल और यश के अंक में सब कुछ खोल न देगी ? दो दिन की यह भूख मिटा लेने दो उन्हें। जब हमारा समय था तब हम भी तो पीछे नहीं हटे। धनजंय का यह लोभ एक आलिगन में प्रवाहित हो जायगा। और पुरुष के लिए तो कोई पवित्रता नहीं, वह तो अनेक स्त्रियों में मत्त गजराज की भाँति क्रीड़ा कर सकता है। वसन्त-पञ्चमी को यदि वह सूर्यमणि के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा न करे, पुजारी फिर से पुरुषस्य भाग्य का उन्माद न गुँजावे तो आकर इस पापिनी से जो मन आये कहना—जो विवाह के पहले माता हो चुकी थी किन्तु जिसके छल से आज भी साम्राज्य उसकी पवित्रता

के सम्मुख वैदेही और अनुसूया को तुच्छ समझने लगा है। बोलो सिधुनाद, नारी का मोल ही क्या है? पुरुषों के हाथों खेलने वाली कठपुतली : पुरुष भूमि पर मरता है वह आकाश को चूमने का प्रयत्न करती है। यही तो है सब से बड़ी दासी गृहस्वामिनी का रूप—जिसकी सत्ता अपने आप में कुछ नहीं !

‘देवी !’ सिन्धुनाद ने लुब्ध होकर कहा—‘बीस वर्ष पहले मैंने कहा था मर्यादाओं का संकोच जीवन की वास्तविकता नहीं है। आओ हम तुम इस देश को छोड़कर कहीं चले जायँ। किन्तु तुमने स्वीकार नहीं किया।’

‘लेकिन कवि’, राजमाता ने कहा—‘पाप तो मिट गया, पाप की स्मृति अवश्य हृदय में चुभती है। किन्तु कभी-कभी जब तुम्हारी कविता पढ़ती हूँ तब लगता है कि वह पाप नहीं था, यह परवश जीवन सबसे बड़ा पाप है।’

‘पाप ! देवी’—सिन्धुनाद ने कहा—‘मेरे तुम्हारे जीवन का पाप ही आज फिर इस समस्त वैभव को भस्म कर देना चाहता है। मैं इसी से काँप रहा हूँ। तुम देवदासी को साधारण वेश्या कहने तक मैं नहीं भिन्नकी, तो सुनो कि जिस साधारण नर्तकी की पवित्रता को रूढ़ते देखकर भी तुम्हारा गर्व कुण्ठित नहीं होता वह तुम्हारी औरस पुत्री है। सूर्यमणि तुम्हारे प्रेमी की पुत्री है, किन्तु देवदासी रुक्मिणी तुम्हारी पुत्री है, तुम्हारे यौवन-तरु का प्रथम पुष्प है, तुम्हारे जीवन-सागर में प्रतिबिम्बित होने वाली प्रथम बालारुण की दीप्ति है।’

राजमाता ने काँपते हुए कहा—‘किन्तु रत्नगिरि ने तो मुझसे कहा था वह मर चुकी है।’

‘रत्नगिरि नहीं जानता था कि एक दिन बलशाली साम्राज्य के एक विशाल-स्तम्भ सेनापति का पुत्र उसके पीछे व्याकुल हो उठेगा। सहस्रों देवदासियों के बीच उसने उसे छिपा दिया था। किन्तु यदि धनंजय

उसकी पवित्रता को अपनी उच्छृङ्खलता में विध्वस्त करेगा रत्नगिरि उसे कभी भी नहीं सह सकेगा। उसने कठोर तप से अपना जीवन बिताया है। उसने दूसरों की भूलों को सरल चित्त से क्षमा किया है। उसे रुक्मिणी से पुत्री का-सा स्नेह हो गया है। जिसने आजन्म खण्ड-स्फटिक जैसा धवल ब्रह्म तेजस् अपने चारों ओर प्रकाशित किया है वह क्रोध से पल्लव साम्राज्य को खण्ड-खण्ड कर देगा। राजमाता, वह वैभव और सुख को इन दीवारों की नींव में पलते पाप को समूल उखाड़ कर फेंक देगा। उसके दुर्वासा के-से अग्नि क्रोध को ठण्डा कर सके ऐसा साहस, ऐसी पवित्रता जिसमें है? प्रजा क्या कहेगी? देवता की पवित्र सम्पत्ति पर वह कभी पदाघात नहीं सह सकेगा। राजमाता, मेरा मन भय से काँप उठता है।’

राजमाता सिहर कर खड़ी हो गयीं। उन्होंने कहा—‘कवि, चलो। मैं रत्नगिरि से मिलना चाहती हूँ। देवदासी मेरी पुत्री है। उसे मैं अपने पास ले आऊँगी। वह मेरे शरीर का सञ्चय है। रत्नगिरि माता की आज्ञा की उपेक्षा नहीं करेगा। मेरे वत्सस्थल में एक स्नेह काँप रहा है। मेरी पुत्री भुवन-सुन्दरी है? वह मेरी है? मैं उसे देखना चाहती हूँ कवि!’

सिन्धुनाद उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—‘रत्नगिरि पाषाण है देवी! उसके हृदय में एक सोता है और वह केवल देवदासी रुक्मिणी के लिए है। वह उसकी पवित्रता पर मुग्ध है। जिस दिन उसे उसमें अपवित्रता की गन्ध आयेगी वह अपने हाथ से उसका वध करके देव प्रतिमा के चरणों पर उसे समर्पित करके आत्मघात कर लेगा। आत्मघात का पाप भी उसके सामने देवता के प्रति विश्वासघात की तुलना में कुछ नहीं। वह कठोर तपस्वी है। ममता के भूटे आवरण से उसकी आँखें कभी नहीं चौंधती। आज जो माता बनकर जा रही हो वह तुम्हारे मातृ-स्नेह को ठुकरा देगा। वह पूछेगा, कहाँ था यह प्रेम उस दिन जब सद्यःजात शिशु को स्तन से लगाने के स्थान पर तुमने रातों रात बाहर

कर दिया था । एक राजकुमारी को तुमने पाप बना दिया और जब मैंने पाप को भगवान् की छाया बना दिया है तुम फिर उसे अपवित्र करना चाहती हो ?

राजमाता ने कहा—‘फिर क्या होगा कवि ?’

सिन्धुनाद ने कहा—‘रथ बाहर खड़ा है देवी, चलिए ।’

राजमाता ने आवाज़ दी—‘नीला !’

दासी ने आकर शीश झुकाया ।

राजमाता ने कहा—‘शीघ्र ही रथ तैयार कराओ ।’

‘जो आज्ञा’, कहकर दासी चली गयी ।

थोड़ी देर बाद राज-मार्ग पर दो बहुमूल्य रथ दौड़ने लगे । एक पर महाकवि थे, दूसरे पर राजमाता । रथ राजमन्दिर के बाहर रुक गये । दोनों उतर पड़े ।

जब वे भीतर पहुँचे उन्होंने देखा रत्नगिरि सूर्यमणि के सिर पर हाथ रखकर कह रहा है—‘पुत्री, यह संसार अत्यन्त कुटिल है । सत्य का उन्मीलन आज के संसार में प्रलय का सूत्रपात हो जायेगा । मैं तुझे कुछ भी बताना नहीं चाहता । किन्तु तू पवित्र है । तेरी पवित्रता की रक्षा करना, तुझे सत्यपथ पर चलाना, तेरे जीवन को श्रेष्ठ और मनोहर बनाना मेरा कर्तव्य है । मैं तेरी सदा सहायता करूँगा । तेरे सुखों के लिए मैं कुछ भी उठा नहीं रखूँगा । तुझे डरने का कोई कारण नहीं । धनञ्जय को लाचार होकर तुझसे प्रेम ही नहीं, पवित्र परिणय करना होगा । महोत्सव के बाद मैं देवदासी रुक्मिणी को लेकर काशी चला जाऊँगा । मैं तुझे अपने ब्राह्मणत्व की साक्षी देकर यह शपथ करता हूँ ।’

राजमाता ने दौड़कर रोते हुए पुजारी के चरण पकड़ लिये । सिन्धुनाद गद्गद-से रोने लगे । सूर्यमणि कुछ भी नहीं समझी ।

अविचलित स्वर से रत्नगिरि ने कहा—‘परसों राजमाता ! परसों कवि ! कल महोत्सव है । अंतिम बार कल मैं कामाक्षी की अपने हाथों

से पूजा करूँगा। कल मैं अपने जीवन के सारे पापों के लिए समस्त शक्ति से देवता के चरणों पर क्षमा माँगूँगा। मैं जीवन की इस लुका-छिपी से ऊब गया हूँ कवि ! मैं कहीं दूर चला जाना चाहता हूँ। अपराध का सबसे बड़ा प्रतिदान ब्राह्मण की क्षमा है। ब्राह्मण वह नहीं है जो अपनी पवित्रता की स्वर्ण और राजमद के सामने बलि दे दे, ब्राह्मण वह है जो पाप को पुण्य बना दे, पुण्य को साक्षात् नारायण बना दे। उठो राजमाता, उठो ! राजमाता को यदि एक पुजारी के चरणों पर लोग देखेंगे तो विस्मय करेंगे।

राजमाता के मुख से निकला—‘तुम मनुष्य नहीं हो रत्नगिरि ! तुम देवता हो !’

रत्नगिरि ने कहा—‘नहीं राजमाता ! मैं केवल देवता का एक पुजारीमात्र हूँ।’

सूर्यमणि आश्चर्य-चकित-सी देखती रही। पुजारी मुस्करा रहा था।

—७—

राजमन्दिर की शोभा आज अनुपम थी। द्वार-द्वार पर आम्रपल्लव बाँधे गये थे। स्थान-स्थान पर घट स्थापित करके केले के मांसगर्भा वृक्ष लगाये गये थे। समस्त मन्दिर गन्ध से सुवासित था। सम्राट् सिंहविष्णु आज अपने पूरे वैभव के साथ आये थे। एक ऊँचे मण्डप में उनका स्वर्णसिंहासन दमक रहा था। कुमारपादीय युवराजों के बाद यथायोग्य आसनों पर सामन्तगण आकर बैठ रहे थे। कुलीन स्त्रियाँ एक ओर एकत्रित हो रही थीं। राजकुमार महेन्द्रवर्मा चुपचाप अपने आसन पर बैठे आते-जाते मनुष्यों को देख रहे थे। श्यामा सुन्दरियों की किल-कारियाँ गवाक्षों में से झङ्कारती वायु के साथ बाहर निकल जातीं और उनके अङ्गचालन पर विभिन्न आभूषणों की मधुर ध्वनि फूट निकलती। योद्धाओं के भारी चरणों से आहत चमकती भूमि विक्षुब्ध हो उठती और उनके हास्य-तरल स्वरों में मादकता विलोल छपा बनकर प्रभा से

दीप्त दंत-पंक्तियों में छिप जाती । मेखलाओं की मंदिर-मंदिर कंधरण-ध्वनि यौवन की द्रिम्बिक-द्रिम्बिक हुंकार बनकर चंदन-लेपित स्तनों के उभार के डुलन पर ताल दे रही थी ।

एक विराट् स्तम्भ के पीछे देवदासी रुक्मिणी प्रतीक्षा कर रही थी । रङ्गभद्र पास आ गया । देवदासी ने कहा—‘नृत्य के बाद मैं भीतर जाकर पहले वस्त्र बदलूंगी फिर पुष्करिणी के पास जाऊंगी । तुम प्रायः एक प्रहर के बाद वहाँ पहुँच जाना । क्या सब तैयार हैं ?’

रङ्गभद्र ने धीरे से कहा—‘तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं देवी ! पेलार नदी पर श्रेष्ठ रङ्गभद्र के अमूल्य वस्तुओं से भरे चौबीस पोत खड़े हैं । बस हमारे पहुँचने का विलम्ब है । कल हम स्वतन्त्र होंगे ।’

‘अच्छा, अब मैं जाती हूँ । और वह भीतर चली गयी । रंगभद्र कुछ देर वहीं खड़ा रहा और फिर भीड़ में मिल गया । प्रसाधन प्रायः समाप्त हो चुका था । बाहर वायु आदि लिए सब स्थान सज्जित करके गायक आ गये थे । नृत्य प्रारम्भ होने वाला था । सब सामने के पट की ओर देख रहे थे । धीरे-धीरे यवनिका उठने लगी । जनसमुदाय स्तब्ध होकर देखने लगा ।

अनन्य सुन्दरी देवदासी को देखकर सबके नयन चकाचौंध हो गये । वह साक्षात् उर्वसी-सी अङ्गचालन कर रही थी । मृदंग का निर्घोष प्रतिध्वनित हो उठा । नर्तकी की नूपुर ध्वनि का मधुर प्रवाह सुनकर सभा चित्रलिखित-सी देखती रही । आज वह अद्भुत नृत्य कर रही थी । उसके अंग-अंग में मदन हुंकार रहा था, रति-कोमल कण्ठ से अपना अजस्र रूप बहाये दे रही थी । उसके प्रवाल से अधरों पर उन्माद की मोहक गन्ध तड़प रही थी । उसके विशाल नितम्बों को देखकर महादेव का सहस्रों वर्षों का तप आज हाथ खोलकर चिल्ला उठा था ।

एकाएक नूपुर मिलकर बज उठे । नृत्य तीव्र गतिमय हो गया ।

सभा स्तम्भित-सी बैठी रह गयी। उन्होंने देवदासी को देखा जैसे प्रलम्ब के अनन्तर वसुंधरा बाहर आ रही थी। मृगमद का टीका उसके स्निग्ध वर्ण पर स्वर्ण की भाँति दमक रहा था।

आज नृत्य में विभोर वह हीरक की किरन उस मणिकुट्टिम रङ्ग-मञ्च पर ऐसे डोल रही थी जैसे शिव के ललाट पर चन्द्र की स्निग्ध रश्मि कैलाश के शिखरों पर आलोडित हो रही हो, जैसे वीणा पर उँगलियाँ द्रुतगति से झंकारमुखर होकर तन्मय हो गयी हों ! उसका उन्नत वक्षस्थल यौवन का अपराजित गर्व बनकर, अपनी पीवर मांसल सुकोमलता में चंदन से लिप्त ऐसा लग रहा था ज्यों युगचंद्र पर चाँदनी बार-बार भूम-भूम कर अपने आपको भूल जाती हो। वह इस प्रकार अपनी मादकता में अपने आप खो गयी जैसे मन्दाकिनी में परिमल खाकर कलकण्ठ निनादित कूजन में राजहंसिनी स्वयं आपको भूलकर मृदुल लहरियों पर अपने रेशम-सदृश पंखों को खोलकर क्रीड़ा करने लगती है। क्षण भर को प्रतीत होने लगा मानों नर्तकी के साथ समस्त वसुमती आज स्वर्ग की ओर उड़ जायेगी और भारालस वासना का यह मंदिर उत्साह वाहणी की भूमि में अपना अनन्त विसर्जन कर देगा।

नृत्य रुक गया। सब अविश्वास से चारों ओर देख उठे। सम्राट् सिंहविष्णु ने गद्गद् होकर कहा—‘पुजारी, तुम धन्य हो। देवदासी तुम्हारी पुत्री है ?’

‘हाँ, सम्राट् !’ पुजारी ने गर्व से सिर झुका लिया।

राजमाता इन्दिरा और महाकवि सिधुनाद के नयनों में आनन्द के अश्रु छड़ा गये। सूर्यमणि भयार्त-सी मौन बैठी रही। देवदासी ने एक बार देवता को झुककर प्रणाम किया और गर्व से सिर उठा लिया। उस समय उसके मुख पर स्वर्गीय आभा खेल उठी। रङ्गभद्र हर्षित होकर देखता रहा। जनञ्जय अपने स्थान से उठ गया और अंधकार में कहीं खो गया।

सम्राट् ने फिर कहा—‘कवि, क्विमणी पर पल्लव को अभिमान है। क्या तुम्हारे हृदय में इस रूप को देखकर सरस्वती का संगीत नहीं उमड़ता ?’

सिन्धुनाद ने कहा—‘मेरा कवित्व रूप की इस अपार राशि को देखकर विक्षुब्ध हो उठा है। मैं असमर्थ हूँ।’

मन्थरगति से चलती देवदासी ने प्रांगण पार करके, बाह्य परिक्रमा को लांघकर, भीतरी परिक्रमा में पाँव रखा। उसी समय उसने सुना—‘सुन्दरी।’

उसके पाँव टिठक गये। सामने ही धनञ्जय खड़ा था। उसके नयनों से वासना ने अवगुण्ठन हटा दिया। वह लोलुप दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था।

देवदासी ने कहा—‘क्या है सेनापति तनय ?’ धनञ्जय मन्त्रमुग्ध-सा उसे देखता रहा। देवदासी ने फिर कहा—‘क्या है कुमार ? आप क्यों मुझे निष्कारण घूर रहे हैं ?’

धनञ्जय उच्छ्वसित स्वर में कहा—‘देवी, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।’

‘धनञ्जय !’ देवदासी हुंकार उठी। बाहर प्राङ्गण में उस समय कोई कलकण्ठ से प्रेम का मनोहर और करुण गीत गा रहा था। धनञ्जय फिर भी देखता रहा। देवदासी ने आगे चलने को पग उठाया। नूपुर बज उठा। धनञ्जय को लगा जैसे रतिका विजयी डमरू आकाश, वसुंधरा और पाताल में एक घोष भरता हुआ गूँज उठा। वह पागल हो उठा। और धनञ्जय ने आगे बढ़कर उसके कन्धों को पकड़ लिया। देवदासी क्रुद्ध-सी चिल्ला उठी—‘धनञ्जय तुम दुस्साहस कर रहे हो।’

धनञ्जय व्याकुल होकर बोला—‘क्विमणी, तुम भूल रही हो। मैं तुम्हारी पवित्रा से प्रोखा नहीं खा सकता। मैंने तुम्हें उस युवक से छिपकर बातें करते देखा है। मेरे हृदय में आग जल रही है। आज तुम्हारे

नृत्य ने हविष्य ढालकर उसे धधका दिया है। सुन्दरी आज मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता।'।

देवदासी काँप उठी। उसने कहा—‘तुम पागल हो गये हो धनञ्जय ! मैं तुमसे भीख माँगती हूँ। मुझे छोड़ दो।’

किन्तु धनञ्जय हँस उठा। उसने उसे खींचकर अपनी छाती से लगाकर उसके सुन्दर मुख को चूम लिया। देवदासी क्रोध से उसके मुँह पर हाथ से आघात कर उठी। विवृण्ण धनञ्जय को एक धक्का मारकर भागने लगी। धनञ्जय उसे पीछे से पकड़कर चिल्ला उठा—‘मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा स्त्री ! तुम्हें मेरी प्यास बुझानी ही होगी। धनञ्जय आज तक कभी स्त्री से अपमानित नहीं हुआ।’

‘नहीं ! नहीं ! नीच पशु ! मैं चिल्ला-चिल्लाकर सम्राट् को बुला दूँगी, तू मुझ पर बलात्कार नहीं कर सकता...।’

धनञ्जय ने हँसकर कहा—‘तो तू चिल्लाकर ही देख ले।’

देवदासी के मुँह खोलते ही उसकी कठोर उङ्गलियों ने उसकी कोमल ग्रीवा को कस लिया और वह दाबते हुए कहने लगा—‘चिल्ला ! जितनी शक्ति हो उतना चिल्ला-चिल्लाकर आकाश सिर पर उठा ले। देखें कौन तेरी रक्षा के लिए आता है।’

धनञ्जय ने उन्माद में भर कर पूरी शक्ति से उसका गला दबा दिया। अपने बोलने में वह रुक्मिणी का आर्त्तस्वर नहीं सुन सका। देवदासी का शरीर भूल गया। धनञ्जय ने अपने हाथ खींच लिए। देवदासी का मृत-शरीर पृथ्वी पर धड़ाम से गिर गया। धनञ्जय व्याकुल-सा देखता रहा। भय से उसका शरीर जड़ हो गया। यह उसने क्या किया ?

इसी समय एक कठोर स्वर सुनायी दिया—‘धनञ्जय, तूने स्त्री की हत्या की है ? क्योंकि वह तेरे प्रलोभन में नहीं फँस सकी ? कुलांगार ?’

धनञ्जय काँप उठा। उसने मुड़कर देखा। पुजारी रत्नगिरि द्वार पर खड़ा था। धनञ्जय लड़खड़ा उठा। रत्नगिरि हँसकर कहा—‘भूल गया

अपना समस्त बल और वैभव के अत्याचार का बर्बर रूप ? स्त्री की हत्या करके भागना चाहता है ? तू एक देवदासी की पवित्रता को कलुषित करना चाहता था क्योंकि तुझे सेनापति का पुत्र होने का गर्व था ? तेरी शक्ति के सामने देवता का अपमान एक साधारण वस्तु है ? तेरे बल के सामने एक पवित्र नारी का सतीत्व कुछ भी नहीं ? धिक्कार है ऐसे वैभव को, धिक्कार है ऐसे साम्राज्य को ! ब्राह्मण तुझे शाप देता है.....”

किन्तु एकाएक पुजारी की जिह्वा रुक गयी । मास्तष्क में तीन बार कुछ चोट कर उठा । पुजारी ने कहा—‘मैं सूर्यमणि को वचन दे चुका हूँ पापी । जा भाग जा । अन्यथा अभी यहाँ भीड़ हो जायगी और तू पकड़ा जायगा । तूने अनेक हृदयों का सर्वनाश कर दिया है । किन्तु तेरे लिए जैसे युद्धभूमि में यश के लिए अनेक हत्या करना है वैसे ही एक यह भी सही । वहाँ तू अनेक स्त्रियों को धन और भूमि के लिए विधवा बनाता, यहाँ तूने ब्राह्मण और देवता की सम्पत्ति पर पदाघात किया है ।’

धनञ्जय वज्राहत-सा खड़ा रहा । पुजारी ने उसे धकेलकर बाहर कर दिया । उसने पास जाकर देखा देवदासी की आँखें उलट गयी थीं, जिह्वा बाहर निकल आयी थी । धनञ्जय ने पीछे से उसका गला धोत दिया था । तभी उसके नयनों में कोई चिह्न नहीं था ।

कैसा कठोर होगा उसका हृदय जो इस फूल-सी बालिका की हत्या कर सका ? सूर्यमणि एक हत्यारे से विवाह करेगी ? और वह देखता रहेगा ? किन्तु राजमाता का मान, सिन्धुनाद की उज्ज्वल देदीप्यमान कीर्ति !

वृद्ध शव पर रो उठा । उसने कहा—‘उन्हें क्षमा कर दे रुक्मिणी ! सिन्धुनाद तेरा पिता है, राजमाता इन्दिरा तेरी माता है, सूर्यमणि तेरे पिता की पुत्री है और मैं सूर्यमणि को वचन दे चुका हूँ । तू बिल्कुल पवित्र है आकाश की शरद पूर्णिमा की ज्योत्स्ना से भी अधिक श्वेत ! उन्हें क्षमा कर पुत्री ! मैंने तुझे बचपन से पाला था, अपना वैराग्य मैंने

नैरे कारण त्याग दिया। चूमा कर रुक्मिणी ! ब्राह्मण, देवता और देवदासी को सब कुछ खोकर भी चूमा करना चाहिए पुत्री !'

उसने देवदासी के शरीर को स्पर्श करके ऊपर हाथ करके कहा—
'देवता, नारायण, कामाक्षी ! देवदासी को स्वर्ग में बुला लो। वह बिल्कुल पवित्र है।' पुजारी उठा। उसने अपने आँखों में पोंछ लिये और बाहर निकल आया। बाहर कोई वीणा बजा रहा था। रत्नगिरि ने कहा—'मैंने देवदासी रुक्मिणी की हत्या की है। मैंने देवदासी रुक्मिणी को गला घोटकर मार डाला है। भीतर परिक्रमा में उसका शव पड़ा है।'

गीत रुक गया। वीणा की सिसक बन्द हो गयी। महा सम्राट् सिंहविष्णु हठात् उठ खड़े हुए। उनके उठते ही समस्त सभा हड़बड़ाकर खड़ी हो गयी। चारों ओर निस्तब्धता छा गयी। प्राङ्गण का बिल्लौर का मध्य भाग एक उदासीनता और किकर्तव्य-विमृदता से स्तब्ध हो गया। महोत्सव रुक गया। स्त्रियों के आभूषण चुप हो गये, पुरुषों के नयन विस्मय से खुल गये। प्राचीन राजमन्दिर की विशाल प्राचीरें विलुब्ध हो गयीं।

कुछ देर तक सब चुपचाप देखते रहे। सम्राट् ने कहा—'कौन ? वही जिसने अभी-अभी अप्सराओं का-सा नृत्य किया था ?'

'हाँ, वही, सम्राट् !' रत्नगिरि ने दूर से उत्तर दिया और प्राङ्गण की ओर बढ़ चला।

चारों ओर कोलाहल मच उठा—'पुजारी रत्नगिरि ने अपनी पुत्री की हत्या कर दी !' ब्राह्मण होकर उसने पवित्र देवता की सम्पत्ति को मार डाला !' 'जन्म से जिसे उसने पाला उसी पर हाथ उठाया ?' 'उसने निरपराधिनी स्त्री का ध्वंस कर दिया ?' ब्राह्मण ने आज यह घोर पाप किया !' 'रत्नगिरि ने पल्लव के गौरव-वृक्ष को फल और फूलों से लदा देखकर भी कुठार चला दिया ?' प्राङ्गण में आकर अकेला रत्नगिरि मुनता रहा। उसको चारों ओर से सम्राट्, राजकुमार, सामन्तों,

नागरिकों, कुलीन ललनाओं और जनसमुदाय ने घेर लिया। सब कुछ-न-कुछ उसके विरुद्ध कह रहे थे। सम्राट् कुछ सोच रहे थे। किसी को भी विश्वास न था। पुजारी रत्नगिरि साम्राज्य का सबसे पवित्र ब्राह्मण था। चारों ओर से प्रश्नों की भरमार होती रही। जनसमुदाय विचलित होकर उसे धिक्कार रहा था। सामन्तों की भृकुटि खिंच गयी थी। सब उसे क्रुद्ध-दृष्टि से, घृणा से व्याकुल होकर देख रहे थे, किन्तु पुजारी रत्नगिरि निर्भीक खड़ा रहा। रङ्गभद्र ने उसके पास जाकर कहा—‘पुजारी ! तुमने रुक्मिणी को मार डाला ? तुमने उसके मनुष्य होने के प्रयत्न को देखकर उसका बध कर दिया ? ब्राह्मण ! तुम युग-युग तक रौरव की यातना भोगोगे। तुमने एक मनुष्य को पशु बनाना चाहा था, और जब उसने मनुष्य होने का प्रयत्न किया तुमने उसे कुचल दिया ? क्योंकि वह मेरे साथ भागनेवाली थी ?’ राजकुमार महेन्द्रवर्मा ने आगे बढ़कर कहा—‘ब्राह्मण होने से तुम अवध्य हो पुजारी। किन्तु ब्राह्मण आज तक पशु बलि देते थे तुमने नरमेध किया है। मैं आज उस धर्म के नाम पर पूछता हूँ क्या वैष्णव-भक्ति में पिता पुत्री की हत्या करके नहीं मर सकता ?’ रङ्गभद्र की ओर दिखाकर सम्राट् सिंहविष्णु ने कहा—‘यदि यह युवक सत्य कहता है तो पुजारी का कोई दोष नहीं। उसने देवता की सम्पत्ति को अपवित्र होते देखकर उसका ध्वंस करके पवित्र भागवत धर्म की रक्षा कर दी। रत्नगिरि ! बोलो, कहो, देवदासी अनाचारिणी थी ?’

रत्नगिरि ने अविचलित स्वर से कहा—‘यह युवक झूठ बोलता है। मैंने इसे कभी भी उससे बात करते नहीं देखा। देवदासी सदा अकलुष, पवित्र, और पुण्य से भी मधुर थी। उसकी आत्मा प्रभात के नीहार की भाँति उज्ज्वल कल्मषहीन थी।’

सम्राट् सिंहविष्णु ने क्रोध से कहा—‘तब तू ब्राह्मण नहीं है रत्नगिरि, तू चाण्डाल है। अपनी पुत्री को निष्कारण मारकर तू पत्थर की तरह

मेरे सामने खड़ा है । राजकुमार महेन्द्रवर्मा सच कहता है कि ब्राह्मण को अब्ध कहना धर्म का सबसे बड़ा दुराचार है ।’

रत्नगिरि ने कहा—‘सम्राट्, रत्नगिरि पुत्री की हत्या करके अब ब्राह्मण नहीं रहा । वह हत्यारा है ।’

इसी समय राजमाता धीरे-धीरे रत्नगिरि के सम्मुख आ खड़ी हुई । उनकी आँखों में अश्रु छा रहे थे जिनमें वात्सल्य और भय मिश्रित घृणा चमक रही थी । उन्होंने कहा—‘पुजारी, सच कहो, पुत्री को तुमने ही मारा है ?’

पुजारी ने कुछ जवाब नहीं दिया । राजमाता फूट-फूटकर रो उठी । उनका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा था । उन्होंने कहा—‘तुम रक्त नहीं हो, तुम हिंस्र पशु हो । जन्म से तुमने उसे पाला, फिर क्या इसी अन्त का तुमने उसके लिये निर्णय किया था ? पैदा होते ही क्यों न मार दिया पिशाच ? स्वर्ग की उस अमूल्य पवित्र प्रतिमा का तुमने अन्त कर दिया, तुम्हें क्या मालूम मेरे हृदय की वेदना.....’

उनका कण्ठ रुँध गया । पुजारी ने उनकी ओर देखा । वह रोती-रोती पीछे हट गयीं । आगे आकर कवि सिन्धुनाद ने कहा—‘पुजारी, यह तुमने क्या किया ? सच कहो, तुमने यह हत्या क्यों की ? तुम तो उसे लेकर काशी जा रहे थे ! रत्नगिरि, तुमने क्या यही मित्रता दिखायी है ? आजीवन पवित्र रहे हो तुम ? तुमने स्त्री हत्या ही नहीं की, तुमने देवदासी की हत्या की है ! ब्राह्मण होने के कारण तुम्हारी हत्या नहीं की जा सकती, क्या इसी से तुमने ऐसा किया ? आज तक तो तुमने कभी अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं किया ? क्या देवदासी पापिनी थी ?’

उस समय रत्नगिरि ने दृढ़ स्वर से कहा—‘नहीं कवि !’

सिन्धुनाद की आँखों में आँसू छा गये । उसने धीरे से कहा—‘तुमने सबसे बड़ा पाप किया है । तुमने अनेक हृदयों पर ठोकर मारकर चूर कर दिया है । तुम मेरे मित्र हो । रत्नगिरि, क्या तुम अब जीवन

भर अपने इस भीषण पाप की ज्वाला में जीवित ही नहीं मर जाओगे ? कैसे सह सकोगे यह सब ब्राह्मण ? किन्तु तुम अब सब कुछ सह सकोगे वज्र-हृदय ! तुमने हत्या की है । तुमने विश्वासघात किया है । तुमने इस वृद्ध का हृदय बिल्कुल ध्वस्त कर दिया है । क्या चिता की भस्म को अपने पापी नयनों से घूर रहे हो ? रत्नगिरि यह तुमने क्या किया ?

पुजारी ने नीचे का होंठ दाँत से काट लिया और चुपचाप खड़ा रहा । सम्राट् सिंहविष्णु ने कहा—‘ब्राह्मण को राजमन्दिर से बाहर निकाल दो, उसको पल्लव साम्राज्य से निर्वासित कर दो । मैं आज्ञा देता हूँ कि पल्लव का एक भी नागरिक, सैनिक अथवा जो कोई भी हो ब्राह्मण को एक मुठी अन्न न दे, एक बूँद पानी न दे और इसके पाप से पूर्ण मुख को देखकर चिल्ला उठे—नारायण ! नारायण !!’

समस्त समुदाय पुकार उठा—‘नारायण ! नारायण !!’

सम्राट् सिंहविष्णु ने फिर कहा—‘मन्दिर को यज्ञ से पवित्र करना होगा । यहाँ ब्राह्मण के वेश में एक चाण्डाल रहता था । इसे निकाल दो ।’

रत्नगिरि धीरे से मन्दिर के बाहर निकल गया । सहस्रों हृदय एक स्वर से उसे धिक्कार उठे ।

—८—

उस समय मन्दिर निर्जन हो चुका था । निस्तब्धता सनसना रही थी । नागरिक समुदाय अपने-अपने घरों को लौट चुका था । दीप बुझ चुके थे । घोर नीरवता छा रही थी । स्तम्भ के सहारे खड़े युवक की तन्द्रा टूट गयी । वह धीरे-धीरे बाहर आया और पेलार नदी की ओर चल पड़ा ।

प्रभात का मधुर प्रकाश सिकता पर डोलने लगा । धीवरों की वंशी की करुण लहरियाँ सिन्धु-मिलन के लिए अधीर ऊर्मियों पर फहरने

लगीं। सहसा युवक ने पोत पर चढ़कर पुकारा—‘कदम्ब !’ सेवक ने झुककर कहा—‘प्रभु ?’

‘हमारे पास कितने पोत हैं ?’ युवक ने अविचलित स्वर से पूछा।

‘चौबीस, प्रभु !’ सेवक ने विनीत उत्तर दिया।

‘उनकी सम्पत्ति बाँट दो कदम्ब ! काञ्ची की भूखी प्रजा को वह सब दान कर दो।’

‘प्रभु !’ कदम्ब ने विस्मय से कहा।

‘विस्मय न करो कदम्ब ! आज महाश्रेष्ठि रङ्गभद्र प्राणों का व्यापार करने सिहल जा रहा है। जिस मोती को खोजने वह महासमुद्र में गोता मारने जा रहा था, वह उसे भीषण से भीषण समुद्र का मन्थन करके भी अब नहीं मिल सकता।’

‘प्रभु !’ सेवक ने फिर निवेदन किया—‘स्वामी का चित्त आज कुछ अस्थिर है।’

‘नहीं कदम्ब ! रङ्गभद्र अब कभी विचलित नहीं हो सकता। जिस धन को मैं आज एकत्रित करने जा रहा था आज उसी धन और अधिकार के मद ने मुझे आमरण जीवित ही जलने का महान् वरदान दिया है। रङ्गभद्र कभी भी अब काञ्ची की अभिशप्त नगरी को नहीं लौटेगा। पल्लव साम्राज्य का यह भीषण नरमेघ आज पाषाणों के चरणों को अपने रक्त से रँग चुका है। मैं इससे धृणा करता हूँ, कदम्ब ! मैं इससे जी भर कर धृणा करता हूँ।’

कदम्ब चला गया। युवक थोड़ी देर तक खड़ा रहा और फिर सहसा ही पुकार उठा—‘माँझी, पोत को बहने दो।’

कठोर मांस-पेशियों वाले नाविकों की पतवारों ने अथाह नदी की लहरों को काटना प्रारम्भ किया। फेन उठकर पोत के किनारे पर छींटे मारने लगे। अकेला पोत सागर की ओर बह चला। निराधार, अनन्त जलराशि पर डगमगाता, काँपता, भयभीत होता। पाल हवा से भरकर

फैल गये । उज्ज्वल प्रकाश लहरों पर भागने लगा । तीर दूर छूट गये । पोत की गति तीव्र होने लगी ।

रङ्गभद्र एक बार ज़ोर से हँस उठा और फिर सिर थामकर अद्ध-मूर्छित-सा बैठ गया । वह न जाने कौन-सा मोती ढूँढ़ने जा रहा था ? चारों ओर महानद का ऊर्मिजाल अट्टहास कर उठता था और ऊर्ज-स्वित प्रतिध्वनि आकाश में मँडराने लगती थी ।

प्रवाह पर पोत मन्थर गति से बहा जा रहा था । दूर-सुदूर केवल जलराशि के अतिरिक्त आज चारों ओर कहीं भी कुछ न था । क्षितिज जैसे सन्निपात में कुछ मर्मर कर रहे थे, और रङ्गभद्र बैठा रहा, बैठा रहा, विश्रान्त पराजित, विध्वस्त.....अवसाद का दृढ़ हुआ स्तम्भ.... अभिलाषाओं की वधकृती भस्म का उन्माद.....!

पेड़

पंडित सालिगराम को अपनी छोटी-सी हवेली बहुत प्यारी थी । उन्होंने अपनी गरीबी से जीवन भर संघर्ष करके भी उसे अपने हाथों से बाहर नहीं जाने दिया था । चाहे घर कितना भी पुराना क्यों न हो किन्तु फिर भी पुरखों की शान था । आखिर वे उसी में पले थे । उन्होंने उसी में घुटने चलना प्रारंभ किया था, उसी में चलना सीखा था और जीना तो था ही मरना भी प्रायः उसी घर में निश्चित था । घर के सामने ही एक छोटा सा मैदान था । कहने को तो वह वास्तव में पंडितजी की ही जमीन थी, किन्तु उन्होंने अपनी रहमदिली के कारण उसके चारों ओर कभी काँटे नहीं बिछवाये । गाँव के बच्चे आते । आज्ञादी से गोदी के बच्चों को धूल में खेलने को छोड़ कर बड़े-बड़े बच्चे मैदान के बीच में खड़े बड़े से बरगद के पेड़ के नीचे छाया में

कबड्डी खेलते । अकसर चाँदनी रातों में झू झू झू झू की आवाज़ गूँजा करती । कभी कभी पंडितजी की रात में नींद खुल-खुल जाती जब कोई नड़का खम ठोक कर पूरी आवाज़ से चिल्लाता—

मेरी मूँछें लाल लाल

चल कबड्डी आल ताल'''।

किंतु पंडितजी ने कभी क्रोध नहीं किया । उनके पुरखों ने इसी छ़ाया के लिये वह पेड़ लगाया था । गाँव के लोगों से यह छ़िपा नहीं था कि जिस पेड़ का एक छोटा-सा पौधा मात्र लाकर उनके पुरखों ने अपनी सब्जी उगाने की जगह लगाया था, वही अब इतना फल फूल कर खूब फैल गया है । इसी की जड़ें अपने आप इतनी फैल गई हैं कि जमीन का सारा रस चूस लिया है । अब उस जमीन में दिन रात अधेरा सा छ़ाया रहता है । पेड़ की डालियों में अनेक पंछी रहते हैं । कौन नहीं जानता इन पंछियों की बान कि 'चरसी यार किसके, दम लगाये खिसके' । आज यहाँ हैं, कल वहाँ । सिर्फ मतलब के यार है ।

उम जमीन में सब्जी की भली चलाई घास तक ढंग से नहीं उग सकती । उल्टी बरगद की जटाओं ने लौटकर अपनी मजबूत हथेलियों को धरती में घुसा दिया है कि पूरा महल-सा लगने लगा है । एक दिन पंडितजी के पुरखों ने इसी छ़ाया के लिये तो उसे वहाँ धरकर पनपने के लिए छोड़ दिया था ।

पण्डितजी को कभी वह पेड़ नहीं अखरा । सदा उसकी हरियाली का वैभव देखकर उनकी आँखें टंडी होती रही है ।

और पण्डितजी देखते कि गूलरों के गिरने पर बच्चों का जमघट आकर इकट्ठा हो जाता । सब ओर शोर करते । और गाँवों के महरबान जमीनदार को तो जैसे उस पेड़ से खास प्रेम था । दसहरे पर जब गद्दी होती तो वे उस शाम को इसी पेड़ के नीचे अपना दरबार करते । आस-पास के गाँवों तक से लोग उन्हें भेंट देने आते । भला वे राजा

आदमी । पेड़ क्या हुआ उन्होंने उसे गाँव वालों के लिए भगवान का अवतार बना दिया ।

पेड़ भी एक ही कमाल का था । जगह जगह उसमें खोखले हैं । शायद जगह जगह उसमें साँप हैं । और उसके अरमानों की थाह नहीं । वामन को विराट रूप की भाँति तीन डगों में ही सारे संसार को नाप लेना चाहता है । आकाश, पाताल और धरती । ऊपर भी फैलता, नीचे भी उतरता है और धरती को भी जकड़ता चला जाता है । जैसे पृथ्वी को सँभालने वाले हाथियों में एक की संख्या बढ़ गई हो । हवेली की बगल में पेड़ की इस सघनता से एक मुनसान बियाबान की सी नीरवता छा गई है । और शायद अब वह दिखाई भी नहीं देती । पेड़ ही पेड़ छा गया है ।

और रात को जब अँधेरा फैल जाता है तब उस सन्नाटे में हवा के तेज झोंकों में जब पेड़ खड़खड़ाता है तब लगता है जैसे कोई भयानक दैत्य अपने शिकार पर टूट पड़ने के पहले भयानक आकार को हिला रहा हो ।

पण्डितजी की छोटी बच्ची भय से आँखें मीच लेती और अपनी माँ की छाती से चिपट जाती । पण्डितजी वह भी देखते किंतु कभी इस बात पर ध्यान नहीं देते क्योंकि उन्होंने सदा ही अपने पूर्वजों की बुद्धि पर विश्वास किया है, और इतना किया है कि अपने पर तो कभी किया ही नहीं.....

—२—

पण्डितानी सुबह उठकर नहाती हैं । दिन में नहाती हैं, साँझ को नहाती हैं । किंतु फिर भी उन्हें कोई साफ-पुथरा नहीं कह सकता जैसे वह पानी एक चिकने घड़े पर गिरता है, फिसल जाता है ।

पण्डितजी बैठे पूजा कर रहे थे । एकाएक बाहर शोर मच उठा । पण्डितजी की पूजा में व्याघात पड़ गया । शोर बढ़ता ही जा रहा था । कुछ समझ में नहीं आया । इसी समय कुछ लड़के उनकी छोटी

बच्ची को उठाकर भीतर लाये। लड़कों की आकृति सहमी हुई थी। डरते-डरते लाकर उन्होंने उसे उनके सामने रख दिया।

पण्डितजी ने देखा बच्ची की नाक से खून बह रहा था। सारी देह नीली पड़ गई थी।

उन्होंने मर्मांत स्वर में पूछा—क्या हुआ इसे ?

कंठ अवरुद्ध हो गया, वे और कुछ भी नहीं कह सके।

एक लड़के ने सहमी हुई आवाज में कहा बरगद के नीचे भाड़ियों में से कोई साप काट गया। ‘काट गया ?’ उन्होंने चीखकर पूछा।

लड़कों ने कोई उत्तर नहीं दिया। सब ने सिर झुका लिया। इस कोलाहल को सुनकर पण्डितानी भीगे कपड़े पहने ही बाहर आ गई और बच्ची की यह हालत देखकर उससे चिपट गई और जोर-जोर से रोने लगी।

पण्डितजी किकर्तव्यविमूढ़ से खड़े रहे। वे कुछ भी नहीं समझ सके कि उन्हें क्या करना चाहिये ?

और धीरे-धीरे अड़ोस-पड़ोस के अनेक किसान आ-आकर इकट्ठे होने लगे।

पण्डितानी का करुण क्रंदन सबके हृदय को हिला देता है। ऐसा कौन सा पाप किया था कि जिसके सामने उठना चाहिये था वही आज अपने सामने से उठा जा रहा है और हम चुपचाप देख रहे हैं।

पण्डितजी सुनते थे और उनकी आँखों में कोई तरलता नहीं थी।

पहली बार उन्होंने बरगद की ओर आँखें उठाईं जैसे अपने किसी विराट शत्रु की ओर देखा हो। वे देर तक उसे घूरते रहे।

यही है वह पुरखों का, जो दैत्य आज संतान को ही खा जाना चाहता है।

और पहली ही बार उन्होंने अनुभव किया कि उनके घर की भी कोई बचत नहीं।

इधर ही मुका आ रहा है। आज उनकी हवेली गिरेगी, कल करीम का मकान गिरेगा फिर बस्ती के सारे मकानों पर उल्ल बोलेंगे। और तब भी यह दैत्य का सा बरगद अपनी जटाओं के अंकुश भूमि में गाड़कर खड़ा रहेगा जैसे सारी जमीन इसी के बाप की है।

विद्वोभ से उनका गला रुंध गया। उन्होंने एक बार जोर से अपनी मुट्ठियाँ भीच लीं और देखा पंडितानी का हृदय टुकड़े-टुकड़े होकर आसुओं की राह बहा जा रहा था। उन्होंने बच्ची को गोद में धर लिया था और तरह-तरह के विलाप कर रही थी। रुदन की वह भयानक कठोरता उनके मन में ऐसे ही उतर गई जैसे साप उनकी बच्ची को काटकर फिर उस पेड़ के ग्योखले में छिप गया होगा।

उन्होंने बड़ी देर तक निश्चय किया फिर धीरे से कहा—रोने से क्या अब वह लौट आवेगी?

पंडितानी ने लाज से आज माथे पर घूँघट नहीं सरकाया क्योंकि इस समय वह बहू नहीं माँ थी।

लोगों ने पंखे बांधकर बच्ची को उस पर सुला दिया और पंडितानी चिल्ला उठी—धीरे बाँधो मेरी बच्ची को, धीरे कि कहीं उसको लग न जाये।

पंडितजी का हृदय भीतर ही भीतर काँप उठा और उनकी आँखों से आँसू की दो लाचार बूँदें धीरे से गालों पर बहती हुई भूमि पर टपक कर उनके मन की अथाह वेदना को लिख गईं.....

—३—

पंडितजी का निश्चय निश्चय था। करीम की राय तो पहले ही थी कि बरगद काट दिया जाये। कौन-सा लाभ है उससे? इधर बड़ी देह रखकर देता क्या है गूलर जो न खाने के न उगलने के, फूले की सी आँख न खूबसूरती की, न देखने की।

पंडितजी ने कहा इसी बरगद को मेरे पुरखों ने, आपके पुरखों ने,

अपना समझ कर पाला था। आशा की थी कि एक दिन इसकी छाया होगी। आसमान से होने वाले अनेक वारों से यह हमें बचायेगा। लेकिन भइया करीम यही होना था क्या ?

‘कौन सुनेगा तुम्हारी पुकारों को पंडितजी, करीम ने सोचते हुए कहा—यह बरगद उतनी ही जान रखता है जितने फल फूल सके। इसे भला मतलब कि हम आप जी रहे हैं या मर गये। इसके तो कोई इंसान के से कान है नहीं।

‘लेकिन पंडितजी ने तड़पकर कहा,—‘दुनिया भर के जहर को अपने आप में भर लेने के लिये इसकी छाती में जगह की कमी नहीं।’

करीम ने हँसकर कहा—आप भी कैसी बातें करते हो ? जानते हो रात को कैसी नशीली हवा में सोना पड़ता है हमें ? और भइया यह तो इस पेड़ की आदत है। जहाँ बोओगे वहीं जड़ पैलायेगा। कोई नहीं रोक सकता।

‘नहीं कैसे रोक सकता ? इसे मैं कटवा दूँगा।’ पंडितजी ने विचित्र होकर कहा।

‘तुम,’ करीम ने विस्मय से पूछा—‘पंडित होकर पेड़ कटवा दोगे ? धरम वरम सब छोड़ दोगे ?’

‘धर्म,’ पंडितजी ने आसन बदल कर कहा—‘धर्म का नाम न लेना करीम ! मेरी बच्ची का खून है इसके सिर पर। इस पर हत्या का दोष है। जाने कितनों के बच्चे अभी और काटेगा ? और कमबख्त का हौसला देखो। अब इसका जाल इतना फैल गया है कि हमारे ही घर को ढहा देना चाहता है। मेरे बाद तुम्हारी ही बारी है करीम.....’

करीम ने हाथ उठाकर कहा—‘अल्लाह रहम कर। पंडितजी ! कहीं के न रहेंगे। इसे कटाना ही पड़ेगा।’

पंडितजी को कुछ सन्तोष हुआ। मन की जलन पर कुछ शीतल लेप हुआ। तब एक आदमी तो साथ है। पुरखे तभी तक अच्छे हैं जब

तक पितर हैं, पानी दे दिया, लेकर चले गये, यह क्या कि अपने ही बच्चों पर भूत बनकर सवार और रोज-रोज गङ्गा नहाने के खर्चे की धमकी दे रहे हैं। अरे अगर जिन्दा ही नहीं खावेंगे तो इन कमबख्तों को कौन चरायेगा ?

पंडितजी उठ पड़े। घर आकर पंडितानी से कहा। उनकी आँखों में आँसू और होठों पर एक फीकी मुसकराहट छा गई। किंतु हृदय में एक शंका भीतर ही भीतर काँप उठी। फिर भी उन्होंने कुछ कहा नहीं।

गाँव भर में पेड़ से एक दहशत छा गई। बच्चों ने पेड़ के नीचे खेलना बन्द कर दिया। जैसे वह फूहड़ की तलैया का दूसरा भूत हो गया।

पेड़ के नीचे का मैदान नीरव हो गया। अब उसमें कभी-कभी कोई-कोई अकेली गिलहरी भागती हुई दिखाई देती है। और फिर शाखों में जाकर छिप जाती है। अब कोई मुसाफिर उसके नीचे नहीं लेटता। क्या जाने कब माप आये और सोते के कान में मन्तर पढ़ जाये ?

पंडितजी का निश्चय गाँव में एक अचरज फैलाता हुआ फैल गया। लोगों के हृदय में उनके साहस, उनके जीवन के प्रति एक अज्ञात श्रद्धा जाग्रत हो गई।

—४—

मजदूर पेड़ काटने लगे। गाँव के अनेक-अनेक लोग आते देखने और इधर-उधर की बातें करके चले जाते। सचमुच अब पेड़ से प्रत्येक को एक न एक शिकायत थी जो आज तक किसी ने प्रकट नहीं की। आज सब ही को उस पेड़ से एक निहित घृणा थी। हमारे सीने पर ऐसा खड़ा था जैसे मूंग में मुगदर।

एकाएक जमींदार के कारिंदे ने कहा—‘पंडितजी पा लागन।’

‘खुश रहो भइया, खुश रहो।’ पंडितजी ने कहा—‘कहो कैसे आये ?’

‘सरकार ने याद फ़रमाया है।’

‘चलता हूँ’ पंडितजी उठ खड़े हुए ।

‘हुजूर’ कारिन्दे ने कहा—‘एक बात और है ।’

‘क्या बात है ?’ पण्डितजी ने भौं सिकोड़कर उत्सुकता से पूछा ।

‘सरकार पेड़ का काटना बंद करवाना चाहिए ।’

‘पेड़ कटना क्यों ?’ पंडितजी ने एकदम टकरा कर गिरते हुए व्यक्ति की सी चीख निकाली ।

‘हाँ सरकार’

‘नहीं हो सकता यह। पेड़ तो कट कर ही रहेगा । जमीन मेरी है मालिक का इसमें क्या उजर है ?’

‘सोच लोजिये पंडित’ कारिन्दे ने आँखें मटक कर कहा ।

‘सोच लिया है सब ।’ न जाने पंडितजी में इतना साहस कहाँ से आ गया ?

मुनने वाले सहमे से खड़े रहे । कारिंदा चला गया । पंडितजी ने कहा—‘काटो पेड़ । यह तो कट कर ही रहेगा ।’

मजदूर फिर काटने लगे । अचानक एक दर्दनाक चीख । ‘क्या हुआ ?’ पंडितजी ने पुकार कर पूछा ।

एक मजदूर शाग्व पर मे नीचे टपक पड़ा । उसे साप ने काट लिया था वह मर रहा था । मजदूर कूद-कूदकर भागने लगे । पंडितजी ने चिल्लाकर कहा—‘कहाँ जा रहे हो आज इसकी एक-एक जड़ उखाड़ कर फेंक दो वर्ना कल यह सारी बस्ती को वीरान बना देना । डरो नहीं । और पेड़ से मुड़कर कहा—ओ राज्स तेरी एक-एक डाल में मौत का भीषण ज़हर है आज मैं तेरी बोटी-बोटी काट डालूँगा ।’

लोगों ने मजदूरों को घेर लिया था । वे कुछ नहीं समझ पा रहे थे । कोलाहल मचने लगा था ।

एकाएक पंडितजी ने मुना—देखा ? तेरे पाप का फल । दूसरों को खाने लगा है । तूने धरम की जड़ पर वार किया है ।

पंडितजी चौंक उठे । उन्होंने कहा—मालिक ! हमने दो खून किये हैं ।

‘वून इसने किये हैं कि तेरे पाप ने, तेरे परबीले जनम के पाप ने ? जमींदार साहब ने कहा ! पंडितजी ने तड़पकर कहा—और इसने हमारे घर की रोशनी बंद कर दी है, इसने हमारे घर में अंधेरा कर दिया है, इसने अपने भयानक गड्डों से हमें खंडहर बनाने का इरादा किया है, इसने हमारे बच्चा को डसा है.....मैं आज इसे काटे बिना नहीं रहूँगा ।

कहते हुए पंडित सालिगराम ने जमीन पर पड़ी हुई कुल्हाड़ी को उठा लिया ।

जमींदार साहब ने कहा —‘देख पागल न बन । देखता नहीं मेरे साथ कौन हैं ?’

पंडितजी ने देखा । पुलिस के सिपाही थे । जमींदार साहब ने मुसकरा कर देखा । पंडितजी चिल्ला कर कहने लगे—‘मालिक जमीन मेरी है ।’

‘खामोश’ जमींदार ने चिल्लाकर उत्तर दिया—‘कैसे है तेरी जमीन ? जिस जमीन पर हमने दरबार किया है वह तेरी कहाँ है ? आज तू उसे काट रहा है, जिसकी छाया में हमने राज किया है । कल तू हम पर हाथ उठावेगा’ !

‘मगर यह धरती बगावत कर रही है वह मेरी हो गई है.....!’ पंडितजी ने कुल्हाड़ा उठाकर कहा—‘मैं इसे ज़रूर काटूँगा.....!’

जड़ पर कुल्हाड़ा पड़ते ही पंडितजी मूर्छित होकर गिर गये । उनके सिर पर जमींदार के-गुर्गों के लठ बज उठे ।

और बरगद अपने चरणों पर बली का रक्त फैलाये ऐसा खड़ा था जैसे अश्वमेध के उठते धुँए में एक दिन साम्राज्य की पिपासा से तृप्त समुद्रगुप्त हुआ होगा ।

गाजी

आगरे के प्राचीन नगर में बाज़ार के ऊपर एक बड़ी लाल मस्जिद है। कहा जाता है, यह मुगलों के ज़माने में एक भव्य स्थान था। अनेकानेक युग बदल गए हैं; किन्तु हाथ-मुँह धोकर जब अस्सी बरस का बूढ़ा इमाम सामने लड़कों को बिठा कर पढ़ाने लगता है, तब उसके होठों पर एक कम्पन छा जाती है और लगता है कि वह व्याकुल हो उठा है और नहीं जानता कि अन्तर की उस हलचल को छिपाने के लिए वह क्या करे ? बूढ़े का मुख अनेक ऋतुओं के थपेड़े सह-सहकर भुर्रियों से भर गया है; किन्तु उसकी सफेद दाढ़ी को देख बाजार के गुण्डों का भी सिर अज्ञात श्रद्धा से झुक जाता है। बृद्ध के शरीर पर उसका लम्बा मटमैला ढीला-ढाला सा कुर्ता झूला करता है। अब उसके कोई कहो नहीं है। सुबह की ठण्डी हवा में जब उसका अजा का स्वर गूँजने लगता है, तब पानवाले रऊफ का पिंजरे में बन्द तोता टैं-टैं कर उठता है, मानो वह भी उसकी याद में बोल उठता है, जिसको इमाम अपने उस लम्बे पथ से याद कर रहा है, जिसका प्रत्येक पल काफ़िले के एक-एक ऊँट की तरह जिन्दगी के रेगिस्तान पर चलता चला आया है। और गंभीर कण्ठ का वह स्वर थोड़ी देर तक चारों ओर चक्कर मार और उस निस्तब्धता में काँप फिर एक भारी भाफ़ की तरह उड़कर आस्मान में लटक जाता है।

इस्लामी होटल में नीचे भाड़ू लगने लगी। आने वाले दोनों पठान चाय पीने लगते और होटल का लड़का कभी उनको घूरता और दर्बी ज़बान में कभी-कभी मज़ाक करने की भी कोशिश करता। किन्तु जब बाज़ार की वह घोर हलचल भी मस्जिद की सीढ़ियों पर शोर

मचाती हुई चलने लगती, तो बरबस ही उसका मुँह बन्द हो जाता और वह चुपचाप दबे पाँव लौट जाती। कभी कदा आस्मान में हवाई जहाज उड़ते, कभी कदा नीचे कसाई की दुकान से गोश्त के कच्चे टुकड़े काटने का शब्द आता और फिर कभी कभी दो तीन दुकानें छोड़ कर जो दुमंजिले पर एक छत है, वहाँ बही खाते लेकर बाज़ार के बनिये आकर इकट्ठे होते और सट्टा होता। किन्तु वृद्ध इन बातों में कभी दिलचस्पी नहीं लेता। सोचता, यह तो सब देखा हुआ है। इसमें हे ही क्या ?

लड़के सामने बैठ भूम-भूम कर पढ़ते। वृद्ध इमाम बैठा-बैठा देखता रहता कि लड़कों के कोमल कण्ठों की काँपती आवाज़ शीशे की तरह भनभनानी हुई मस्जिद के लाल पत्थरों से टकरा उठती और वृद्ध एक लम्बी साँस खींच कर ऊपर देखने लगता। उस समय लड़के कुछ देर को आपस में ऊधम कर लेते और फिर वही सिर हिलाना, हिल-हिल कर पढ़ना। और जीवन की नवीनता ऐसे गुल मचाने लगती, जैसे बाग में बहार चहक उठती है, लहरों में चंचल कोलाहल होने लगता है।

वृद्ध ने अपने हाथ धोकर मुँह धोया और सीढ़ी से नीचे उतर चला। रऊफ़की बूढ़ी भुकी माँ ने देखा और कहा—‘आज कहाँ चले ?’

‘कहीं नहीं’—वृद्ध ने कहा और छुज्जे पर हो बैठ गया।

कसाई अपनी मैली चादर ओढ़ कर दुकान में ऊँध रहा था। बाज़ार पर दोपहर की थकान छाने लगी थी। एक आध तवायक दिन में ही बाहर छुज्जे पर आ बैठी थी और बाज़ार में आते जातों से आँखों के खेल कर रही थी। कभी-कभी जब वह बनावटी अँगड़ाई लेने लगती, तो सामने दर्जी की दुकान से लड़कों की नजर उधर ही अटक जाती और फिर वे बगलों में हाथ दबा कर भदे ढंग से हँसते। कुछ

फौजी सड़क पर से चक्कर लगाते हुए, उसकी ओर सतृष्ण नयनों से देखते...।

बूढ़ी ने कहा — ‘इमामपाक, कहो, अब भी खुदा हम पर मेहरबानी क्यों नहीं करता ?’

इस्लामी होटल में शीरीं-फरहाद का नाटक ग्रामोफोन पर बज रहा था। उसका स्वर कभी-कभी इधर भी थिरकने लगता और फिर प्यालियों की खनखनाहट होती। वृद्ध ने एक बार अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरा और कहा—‘रऊफ की माँ, खुदा क्या करता है, यह तो हम लोग, जो गुनाहों में डूबे हुए हैं। इतनी आसानी से नहीं समझ सकते।’

‘दुरुस्त है’—जब्वार साइकिल का ट्यूब तसले के पानी में धुमाने हुए कहा। वह देख रहा था कि कहीं पञ्जर तो नहीं रह गया है ?

वृद्धा ने पोपले मुँह से एक बार कुछ कहना चाहा, किन्तु फिर कुछ सोच कर रुक गई। रऊफ ने घुटनों पर जोर देकर कहा—‘अब कल से देखना, क्या लुत्फ आएगा। कहते हैं, दो छटाक गेहूँ का राशन मिलेगा और ...’ वह कठोर हँसी हँस पड़ा जिसमें एक नहीं, अनेक वेदनाओं की घुटन लुट गई और लुटेरा आस्मान तक अपने डंके की चोट को गुँजा कर इन्मान का गला घोटने लगा।

वृद्धा ने कहा—‘अल्लाह रहम करे। हमारे ज़माने में फकीर को भी बुला-बुला कर ख़िरात दी जाती थी, बेटा।’

कसाई, जो जाग कर सुन रहा था, कह उठा—‘यानी भिखारियों को पाला जाता था। अँगरेजों का रहम है अम्मी, अब हिन्दुस्तान को भिखारियों की कोई ज़रूरत नहीं। उन्हें भूखों मार दो।’

जब्वार ने एक दम जोश से उठते हुए कहा—‘और यह भिखारियों की बला हटाने के लिए सबको ही भिखारी बना दिया। जिस मुल्क में

कोई खायगा, वहीं तो भूखे की आह लगेगी ?' वह भी हँसा और बातावरण पर एक हल्कापन छा गया ।

रऊफ की माँ ने खखार कर थूका और मुँह में तम्बाकू डालते हुए कहा—‘बेटा, एक वह भी दिन था, जब हमारी माँ कहती थी कि ये फिरंगी...।’

रऊफ ने चौंक कर जरा कटोर स्वर से एक दम टोक दिया—‘अम्मी !’

बूढ़ा फिर मुस्करा उठी, जैसे कुछ नहीं हुआ । बात बदल गई । बूढ़ा ने कहा—‘अभी कितनी और हैं, इमामपाक ?’

इमाम ने बिना उसकी तरफ देखे ही कहा—‘कितनी भी हो मुझे तो वह काम दिया है उसने, जिसके लिए एक दिन किले के बुर्ज में बादशाह तड़पा करता था ।’

बूढ़ की बात कितनी गहराई से छा गई, यह बूढ़ा के अतिरिक्त और कोई नहीं समझा; क्योंकि जिस दिन की बूढ़ा कह रहा था, सिवा बूढ़ा के उस दुनिया की छाया के निकट और कोई नहीं था ।

और शीरी-फरहाद का वह नाटक अब भी बज रहा था । उसमें गलत इतिहास था, लेकिन इन्सान की वह भयानक ताकत ‘जिसने बारूद से नहीं’ बेलचे से चट्टानों को निचोड़ कर पानी निकाल दिया था, जैसे कोई सलतनत के फरेब में से सचाई का आग निकाल ले ।

साँझ की धूप मस्जिद के ऊँचे गुम्बद पर टण्डी होकर लेटी-लेटी सरकने लगी थी । इमाम ने कहा—‘उन दिनों शाहंशाह औरंगजेब कुछ बेचैन रहा करते थे । उन्होंने सिकखों के गुरु को कैद कर लिया । और जानते हो, उस पीर ने कैद की घड़ी में कैदखाने की खिड़की से क्या देखा ?’

छोटे-छोटे बच्चों ने उत्सुकता से कहा—‘क्या देखा’ इमामपाक ?’

बूढ़ ने कहा—‘उसने देखा दूर समुन्दर पर फिरंगियों के कई

जहाज खड़े थे । हिन्दुस्तान से व्यापार करने आए थे । सौदागरों को शाहंशाह ने रहम करके रहने के लिए जमीन दी थी । और उसने देखा, जहाजों के सफेद-सफेद पाल हवा से भर कर फूल उठे थे ।'

बच्चों का ध्यान एकत्र हो गया । उन्होंने यह भी नहीं देखा कि गुम्बद पर अब एक कौआ आकर बैठ गया है और अपनी गर्दन को देखने के लिए ऐसे घुमा रहा है, जैसे उसे एक ही आँख से दिखाई देता है । और दिन होता तो, यूमुफ जरूर मोहसिन की बगल में कुहनी मार कर उसे दिखाता और फिर दोनों उस तरफ ललचाई आँखों से देखते । हसन ने कहा—'फिर ?'

'फिर'—इमाम ने गम्भीर स्वर में कहा—'उस पीर ने कहा कि एक दिन ऐसा आयगा, जब हमारे भगड़ों से बेईमान फायदा उठायेंगे और सारे हिन्दुस्तान पर ये सफेद पाल एक किनारे से दूसरे किनारे तक छा जायेंगे ।'

इसी वक्त अस्पताल की सड़क पर बहुत से लोगों के गले से 'इंक्लाव जिन्दाबाद' मुनाई दिया । बच्चों के रोंगटे खड़े हो गये । बृद्ध सिहर उठा । उसने भर्गए गले से कहा—'बच्चो, मैं अस्सी बरस का बूढ़ा हूँ, लेकिन उन दोनों सतरों को कभी नहीं भूल पाता, जो मुगलों के आखिरी चिराग शाहंशाह बहादुरशाह के मुंह से उनके आखिरी दिनों में रंगून के कैदखाने में निकल पड़ी थीं...।'

'बादशाह और कैद ?'—बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर मोहसिन ने साश्चर्य पूछा ।

'हाँ बेटा, फिरंगियों ने उनके ६ बेटों के सिर काट, भालों की नोक पर टांग कर, उनका तोहफा उनके बुढ़ापे के सामने पेश किया था ।' बृद्ध की आँखें भर आईं, जैसे भीतर सारी नसें अब फट पड़ना चाहती हों उनमें से रक्त के स्थान पर अरमानों की भस्म निकलने को आतुर हो—

वह भस्म, जिसमें जगह-जगह अबुल अझारे निकल कर गिर पड़ेंगे और उनकी दहक से पत्थर भी पानी की तरह पिघल उठेंगे।

बच्चे स्तब्ध थे। उनकी आँखों में वही नफ़रत थी, जो जुल्म और बर्बरता के विरुद्ध हिन्दुस्तान के हर बच्चे की आँखों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी तरह सुलगा करेगी। मानो उन्हें गुस्सा इसका नहीं कि विदेशियों ने यह भी किया था, वरन् क्रोध इस बात का है कि सरे बाजार बेचने वाली यह तवायफ़ अपने-आपको पारस कहती है और चाहती है कि हम भी इसे कुबूल कर लें कि इसकी माप-जोख ही इंसानियत का पैमाना है। किन्तु नासमझ बच्चे खामोश थे। वृद्ध इमाम ने ही कहा—‘उस वक्त बादशाह ने अपने दिल की उस आधी में से एक पैगाम दिया था—

गाज़ियों में बू रहेगी जब तलक इमान की,

तख़्त-लंदन तक चलेगी तेरा हिन्दुस्तान की!’

वृद्ध के हाँट काँप उठे। फिर ‘इन्कलाब जिन्दाबाद’ की आवाज थहर उठी। चुनाव का जमाना था। कांग्रेस, लीग, कम्युनिस्ट और न जाने कौन-कौन सी पार्टियाँ अपना-अपना जोर आजमा रही थीं, क्योंकि गोरी सरकार ने कहा है कि वह हिन्दुस्तान को आज़ाद कर देना चाहती है! वृद्ध ने सुना। हसन कह उठा—‘इमामपाक, फिर हिन्दू-मुसलमान आपस में क्यों लड़ते हैं? अब क्या अंगरेज़ों का राज नहीं है?’

‘है क्यों नहीं, लेकिन लोग तो अपनी-अपनी खुदगज़ियों में उलभे हुए हैं। उन्हें क्या पड़ी कि गरीबों की क्या हालत है?’

हसन कुछ समझ नहीं सका। उसने फिर कहा—‘इमामपाक, बादशाह ने तो कहा था कि जब तक गाज़ियों में इमान की बू रहेगी...।’

‘शाबाश!’ वृद्ध ने कहा—‘लेकिन कहाँ है इमान की बू? मैं चाहता हूँ कि तुम में से हर एक में इमान की बू हो, तुम में से हर एक गाज़ी बने। उस दिन भी बादशाह के तख़्त के लिये हिन्दुओं ने तलवार उठाई थी। आज से पच्चीस वर्ष पहले एक बार फिर भाई-भाई मिल

कर उठे थे, तब खूनी के पाँव डगमगाने लगे थे। लेकिन बदकिस्मती से फिर फूट पड़ गई।' वृद्ध का स्वर तीखा हो गया। उसने कहा—'बच्चो, रसूले-इलाही का पैगाम सुन कर गुलाम आज़ाद होते थे। आज आज़ादी को पैरों से कुचल कर हम मुसलमान बनने का दावा नहीं कर सकते।'।

मोहसिन ने पूछा—'लेकिन अब्बा तो कहते थे कि पाकिस्तान के बिना हम अंगरेजों से नहीं लड़ेंगे।'।

'नहीं, बेटा', वृद्ध ने कहा—'पाकिस्तान तो अंगरेजों के हाथ में गुलाम है। तुम्हारा घर तुम्हारा है, पाकिस्तान की भीख माँगते हो? और वह भी एक भूखे गुलाम से? उसे कोई तुमसे नहीं छीन सकता, अगर तुम आज़ादी के लिए खून बहाने को तैयार हो जाओ; क्योंकि जो तुम्हारा है, उसको अपना न समझने की बात कमज़ोरि-ए-जज़्बात है, दिमागी गुलामी है।'।

मोहसिन खामोश हो गया। वृद्ध ने फिर कहा—'मैं चाहता हूँ, तुम अभी से जुल्मों से नफ़रत करने लगो। तुम्हारे खून की हर बुँद में विजली की तरह यह खयाल दौड़ा कर कि तुम इन्सान होने के पहले गुलाम हो। तुम्हें याद रहे कि तुम्हारी कोई हस्ती नहीं, क्योंकि तुम्हारा रहनुमा आज वह है, जिसके सामने तुम्हारी जान की कोई कीमत नहीं।'। बच्चों का जैसे खून जम गया था। वृद्ध ने धीरे से बात पलट कर कहा—'हाँ, बेटा हसन, सुनाओ तो हौले-हौले ज़रा—पहले आती थी...'।

और हसन गालिब के अशआर सुनाने लगा।

इमाम के विद्यार्थी उसी मुहल्ले के लड़के थे, जो बारह बरस तक के होने पर भी इमाम के बुढ़ापे के सामने बिल्कुल बच्चों जैसे थे। किसी का बाप बटन बेचता था, किसी का जिल्दसाज़ था, तो किसी का किसी कारखाने में काम करता था। सब ही गन्दे रहते और उर्दू सीखते; किंतु शिक्षा का उनके सामने कोई ठोस महत्त्व हो, ऐसी गलती उन दिनों

की गोरी सरकार ने कभी उनके पक्ष में नहीं की। मस्जिद के नीचे ही दीवट कबाड़िए की दुकान थी। उसका छोटा-सा लड़का चंदू वहीं सब बच्चों के साथ खेला करता था।

मोहसिन चाकू से कलम बनाते-बनाते उससे बातें कर रहा था। चंदू कभी हँसता, कभी उल्ललता और कभी-कभी सूनी दुकान पर भी दृष्टि डाल लेता। दीवट मुहल्लों से टूटी-फूटी बोटलें खरीदने गया हुआ था। मोहसिन ने कहा—‘अबे चंदू, वह जो है हसन ? मैंने साले को दो झपाटे दिए।’

चंदू उस समय मोहसिन की छोटी बहन के कान पकड़कर उसे उठाकर दिल्ली दिग्वा रहा था और उधर अधिक तन्मय था। मोहसिन ने उसके ध्यान न देने से चिढ़कर कहा—‘क्यों बे कबाड़िए, साले सुनता ही नहीं। दूँगा अभी एक हाथ।’

चंदू भला कब सुननेवाला था। उसने कहा—‘अबे जा-जा, देख लिये तुझ जैसे सैकड़ों।’

‘अबके न कहियो उल्लू के पट्टे, वर्ना...’।

‘वर्ना क्या ?’ चंदू अकड़ कर सामने खड़ा हो गया।

अब तो मोहसिन फँस गया। आन का मामला था। उसने कहा—‘देख, मान जा।’

‘अबे जा’, चंदू ने घृणा से मुख विकृत करके कहा। इसी समय मोहसिन को एक झटका-सा लगा और चाकू से उँगली जरा कट गई। खून बह निकला। चोट साधारण थी, किन्तु रक्त की लाली ने उसे एक हमले का भयानक रूप दे दिया। दूसरे ही पल मोहसिन का चाकू उठा और चंदू के अँगूठे से खून टपक पड़ा ! इसके बाद यह दे, वह दे और चाकू छिटक कर दूर जा गिरा और दोनों सड़क की धूल में एक दूसरे को पटखें देने लगे और दोनों ही नाली की तरफ कलामंडियाँ खाते हुए लुढ़क चले।

इसी समय जब्बार के बड़े-से हाथ ने चंदू का गला पकड़ कर उसे मोहभिन से अलग कर दिया, और चंदू ने सुना—‘क्यों बे साले कहीं है तेरा बाप ? तोड़ दूँगा साले की हड्डियां...!’

‘क्या हुआ?’, कसाई ने दुकान से ही पूछा—‘कौन है?’

‘कोई हिन्दू लौंडा है।’—रऊफ़ ने बीड़ी का कश बाहर छोड़ कर कहा।

और ‘हिन्दू’ शब्द सुनकर बाजार के दो-एक राहगीर ठिठक गए ! एक ने आगे बढ़कर कहा—‘क्या है ? क्यों मारते हो उसे ?’

जब्बार ने चन्दू का हाथ तो छोड़ दिया, और अकड़ कर बोला—‘भयों, तुम कौन होते हो उसके ? आ गए बड़े हिमायती बन के ?’

‘होश में बोलना’,—राहगीर ने लाग कस कर कहा—‘समझा होगा वह तुम्हारा मुहल्ला है। मगर हिन्दुओं का खून कोई मर नहीं गया है, समझे !’

इसी समय एक गम्भीर स्वर ने उनको रोक दिया। इमाम की दीर्घ काया बोंच में थी। उसके हाथ में वही खून से भीगा हुआ चाकू था। बोला—‘किस लिए लड़ते हो, बाबलो ?’ उसका स्वर काँप उठा।

जब्बार ने चेत कर कहा—‘लौंडे का खून बहा है यह।’

‘किसका खून बहा है ?’—इमाम का प्रश्न गम्भीर आवरण-सा सब के हृदयों पर छा गया। उस छोटी-सी भीड़ का कंलाहल थम गया और सबकी उत्सुक आँखें उस पर गईं। इमाम ने कहा—‘तड़प रहा था अभी तुम्हारा हिन्दू खून ! उबल रहा था तुम्हारा इस्लामी खून।’

जब्बार, बता सकते हो, इस चाकू पर कितना खून हिन्दू है और कितना मुसलमान ?’

सुनने वालों के सिर झुक गए। इमाम ने कहा—‘बेवकूफों, जिनके पीछे लड़ते हो, वे क्या कर रहे हैं देखो और जरा आँखें खोलकर देखो।’ सब ने देखा—उस समय मोहसिन की छोटी बहन अपने नन्हें हाथों

से कुर्त्ता उठाकर चन्दू की आँखें पोंछ रही थी, मानों समस्त मानवीय वेदना घुमड़ आई हो, जैसे एक गुलाम ने दूसरे गुलाम की मर्यादा को अपनी संकीर्णता को ठोकर मारकर पहचान लिया हो !

भीड़ छुट चली । इमाम वहीं खड़ा रहा । जब वह लौटकर मस्जिद में पहुँचा, हसन को लगा, जैसे वह रो पड़ेगा । कुछ देर तक नीरवता छाई रही । फिर हसन ने पतली आवाज में धीरे से कहा—‘इमामपाक ।’

वृद्ध के मुँह से निकला—‘बेटा ! एक दिन आगरे के इसी बाजार में गोरे सौदागरों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के गलों में फन्दे लगा कर फासी पर लटकाया था; लेकिन लोग शायद भूल गए हैं...।’

हसन ने कहा—‘लेकिन हम नहीं भूलेंगे, इमामपाक !’

‘तू नहीं भूलेगा ?’ वृद्ध ने गद्गद स्वर से कहा—‘तू सचमुच नहीं भूलेगा ? तब, तब अल्लाह, अस्ती बरस बाद आज इन्सान में ईमान की बू आ रही !’...और वह रो पड़ा ।

उस रात हसन सो नहीं सका । शहर में लोगों में एक सनसनी थी । कोई कहता था—घटिया में लूट मच जायगी, कोई कहता था—शहर में शीघ्र ही भयानक दङ्गा होगा । सामने के मुन्शी जी कहते थे—उन्होंने अखबार में पढ़ा है कि जंग खत्म हो गया है, मगर हर मुल्क में बलवे हो रहे हैं । सरकार की घबराहट दिन पर दिन बढ़ रही है । कुछ समझ में नहीं आता कि क्या होने वाला है । बारह-तेरह बरस का हसन अधिक कुछ नहीं समझा, मगर बहादुरशाह की दोनों सत्रों उसके दिमाग में गुंज रही थीं । घर-घर तहलका मच रहा था । राशन घटा कर रोज का दो छटांक कर दिया गया था, क्योंकि सरकार ज्यादा का इन्तजाम नहीं कर सकती ।

दूसरे दिन अलसुबह इमाम ने देखा, हसन हाथ में एक कागज लिए खड़ा था । इमाम ने मुस्करा कर कहा—‘पढ़ो ।’ और हसन की काँपती हुई आवाज गुंज उठी :—

शहीदों के खून में हुंकार उसकी गूंजती,
 जिसने मर कर भी न इज्जत मुल्क की कुर्बान की ।
 'ग्राजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,
 तख्ते-लंदन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की ।'
 फिर बुला हमको रहा है दूर से वह कोहेनूर,
 जुल्म का बदला तो क्या नोचेंगे तेरी शान भी ।
 हांगे तेरे; देख लेंगे कौन-से कानून है !
 अब फारस्ता बन रहा है देख लो शैतान भी !
 भूख से हम मर रहे हैं राह के कुत्ते बने,
 मौत के नुस्खे बने हैं वह तेरे परमान भी !
 तख्तो-ताजों की अंधेरी आज धरती से मिटे,
 गरजते मजदूर हम, मजलूम, देख किसान भी !
 तेग चंगेजी न कर सकती कभी इंसाफ है,
 एक है हम, टेक दे घुटने यहाँ तूफान भी ।
 बादलों में बिजलियाँ टूटी तड़पती जो बंधी,
 लरज़ती है मिल बगावत का बनीं उन्वान-सी ।
 सल्तनत के धन पै हिन्दी पिट के अब फौलाद है,
 देख हर गौशे में जागी आबरू ईसान की !

हसन का स्वर रुक गया । वृद्ध तन्मय होकर बैठा था । उसने
 विस्मय से सिर उठा कर पूछा—'यह तू ने कहा है हसन ?'

हसन के अभिमान को चोट पहुँची । उसने कहा—'क्या मैं नहीं
 कह सकता, इमामपाक ?'

'रदोफ़ आर क्राफ़िये की कुछ गलतियाँ हैं, मगर वह कोई बात
 नहीं । लेकिन मुझे यकीन नहीं आ रहा । अल्लाह, सच कह ? क्या
 हिन्दुस्तान के बच्चों को अब बचपन भी नसीब न होगा ? क्या उनमें भी

तू ने यह आग भर दी है ? क्या यह गुलामी आज इन्सान को पत्थर बना देना चाहती है ?'

वृद्ध उद्भ्रात होकर मस्जिद में टहलने लगा । आज बिसाती के बेटे ने उस तख्त को ललकारा है, जिस पर बैठने वाले का नाम सुनकर हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े राजा व नवाब कुत्तों की तरह दुम हिलाते हैं, क्योंकि उनके दिलों में ईमान नहीं रहा है—क्योंकि दौलत और ऐश का कोई ईमान नहीं है । ईमान है तो सिर्फ गुलाम का, क्योंकि वह पेट का ईमान है ! वृद्ध को लगा, जैसे पत्थर का हर एक टुकड़ा अपनी जगह से उग्वड़ कर छुटक जायगा । आज जो यह लड़का अभी-अभी आग उगल रहा था, उस पर जैसे कानून का खूनी दरिन्दा झपट कर उसे मार डालेगा और इन्सान के खून से भोंगे हुए होंठ चाट कर कहेगा—‘यह तहजीब और तमद्दुन की इन्तहा है । इसके आगे कोई मजहब नहीं, कोई सुन्न नहीं ।’

वृद्ध काप उठा । उसने घुटने टेक हाथ बाँध कर कहा—‘अल्लाह, मुझे माफ़ कर । मैंने कोई गुनाह नहीं किया, मैंने राह पर दम तोड़ते हुए गिलबिले कीड़े से सिर्फ यह कहा है कि तू इन्सान है, रोटी पाना तेरा अख्तियार है । जो भी तेरे मुँह से तेरी रोटी छीनता है, वह जल्लाद है । उसे तू कभी भी माफ़ न कर, क्योंकि तू उससे न सिर्फ अपने ऊपर जुल्म करता है, बल्कि साँप के जहर की तरह बढ़ने वाले गुनाहों के अंधेरे को फैल जाने के लिए अपना उजाला भी समेट लेता है और वह दिन आ जाता है; जब उस अंधेरे में तेरे उजाले का बेटा ऐसे गर्क हो जाता है; जैसे दलदल में राहगीर और फिर तू घुट-घुट मरने लगता है ।’

हसन चुपचाप सुनता रहा । वृद्ध उठ खड़ा हुआ । उसने स्नेह से आगे बढ़ कर हसन के सिर पर हाथ फेरा और कहा—‘बेटा शाबाश; लेकिन तेरा बाप कहेगा कि इमाम ने मेरे घर के चिराग को कितने बड़े तूफान के बीच रख दिया ।’

हसन ने अपनी मासूम आँखों से देखा और हठात् ही उसके मुँह से निकला — 'लेकिन मैं किसी से नहीं डरता, इमामपाक !'

इमाम ने सुना और मन-ही मन काँप उठा ।

शहर में हड़ताल थी । चारों ओर दुकानें बिलकुल बंद थीं । कुछ कालेज के लड़के सिगरेटों के लिए सड़कों पर चक्कर लगा रहे थे । दुकानदार दुकानें बन्द कर-कर के सड़क पर आ इकट्ठे हुए थे । मजदूरों और गरीबों की टोलियाँ इधर-उधर घूमती हुई 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाती; कभी 'महात्मा गांधी की जय' बोलतीं । उनके लिए गांधी का मतलब व्यक्ति से नहीं, किन्तु अपनी आजादी के लिए लड़ने की भावना के प्रतीक से था । बच्चों के झुण्ड जगह-जगह नारे लगाते हुए घूम रहे थे । राजनीतिक पार्टियों के जगह-जगह एलान हो रहे थे । आज हर कोई बाहर था, क्योंकि रोटी की राजनीति थी और सबका पेट पुकार उठा था !

तीन बजते-बजते लोग जुलूस के लिए इकट्ठे होने लगे हर मुहल्ले में से क्रान्ति की धारा बढी और जाकर एक जगह समुद्र बनाने लगे । आज मजदूर, गरीब, मध्यवर्ग, हिन्दू, मुसलमान, बच्चे, बूढ़े, औरतें वगैरह सब ही जुलूस में एक बन कर शामिल हुए थे । वे राजनीतिक पार्टियाँ, जो कल तक नहीं मिलती थीं, आज उन्हें जनता के उस अपार समूह में अपने-अपने झण्डे लेकर स्वयं आना पड़ा था, क्योंकि भारत के प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक ही प्रश्न था । कल जब नगर में स्वतन्त्रता-दिवस मनाया गया था, पार्टियों के अलग-अलग जुलूस निकले थे और पुलिस ने सबको तितर-बितर कर दिया था, किन्तु आज 'रोटी-दिवस' था और सब एक थे !

जुलूस के उस भीम प्रवाह ने दूर-दूर तक बाजार को ढँक दिया, और जब सहस्रों वज्र कण्ठों से इन्कलाब जिन्दाबाद का स्वर गूँजने लगा, तब पत्थर की सड़कें अपना कण्ठ खोल कर मानो चौक-सी

उठों और दीवारों पर जा कर स्वर जैसे अंकुश मार कर उन्हें गुलामी की नौद से जगाने के लिये भकभोर उठा। घोड़ों पर बन्दूकधारी पुलिस चक्कर लगा रही थी। नाके नाके पर स्पेशल आम्बुड-कान्स्टेबुलरी का सशस्त्र पहरा था। किन्तु लोग चिल्ला रहे थे—‘अंगरेजी सरकार का नाश हो ! निकम्मी सरकार को बदल दो ! राशन को बढ़ाना होगा ! आध सेर गेहूँ लेके रहेंगे।’ और पुलिस उस बेटे हुए बर्तन-जैसे जुलूस को देख भीतर ही भीतर कांप उठी थी। किस पर करंगा जालिम अपना राज, क्योंकि आज गुलाम अपने सारे भेद छोड़ कर वह मांग रहे हैं, जिसको न देने के लिए अत्याचारी ने धर्म की दीवार उठाई है।

इमाम अपने छोटे-छोटे विद्यार्थियों को लेकर मस्जिद पर खड़ा खड़ा उस विराट जन-समूह को गुजरते हुए देख रहा था। एकाएक भीड़ में किसी ने आवाज लगाई—‘अखण्ड हिन्दुस्तान...!’ उधर से आवाज लगी—‘पाकिस्तान ले के रहेंगे...!’ भीड़ में शोर मच उठा। कोई भी संयत नहीं रह सका। मुसलमानों ने कहा—‘अपना अपना जुलूस अलग निकालिए।’ हिन्दुओं ने कहा—‘आप अपने नारों को बदल दीजिए।’

पुलिस मौका देख कर इस समय भीड़ तितर-बितर करने की फिराक में थी। एकाएक सहस्रों सिर मस्जिद की ओर उठ गए। इमाम हाथ उठा कर कह रहा था—‘अभागे गुलामों, देखा नहीं था, जब थोड़ी ही देर पहले तुम सब एक हो कर जा रहे थे, तब वह नादिरशाही पुलिस भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाए खड़ी थी और अब उसके हाथ में फिर पांसा आ जायगा। हिन्दू और मुसलमान होने की वजह से तुम गुलाम नहीं हो, रोटी के गुलाम हो। अगर पेट के बल पर भी तुम एक नहीं हो सकते तो दुनियाँ में तुम कभी एक नहीं हो सकते—यानी कभी आजाद नहीं हो सकते। रोटी की सियासत आज तुम सबकी सियासत है। तुम वेदों और कुरआन की नई ज़िल्दें चढ़वाने के लिए लड़ रहे

हो या अपने-अपने पेट भरने के लिए ? अरे, जब तक गुलाम हो, तब तक एक होकर हुंकार उठो, भूल जाओ अपने सारे भेद-भाव...'

हसन ने स्तब्ध जन-समाज पर गर्म सीसा पैला दिया—'इन्क़ाब...!'

जन-समाज चिल्ला उठा—'ज़िन्दाबाद !' और जुलूस बढ़ने लगा । रोटी के लिए यह चट्टान-जैसी भीड़ आज हराम की टांगे मुकने के लिए बढ़ रही थी । जिसकी जितनी रोटी है, उसे कोई छीन नहीं सकता; लेकिन जो सबकी रोटी को छीन रहा है...?

और आवाज गूँज रही थी—'जालिम है सरकार विदेशी !' इमाम ने आगे बढ़ कर कहा—'हसन !' हसन स्तब्ध था, जैसे उसके भीतर खून इतनी तेजी से दौड़ रहा हो कि अब बोलना भी असम्भव हो गया था । इमाम ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—'कसम खा कि जब-जब यह दोनों बेवकूफ भाई लड़ेंगे, तब-तब तू इन्हें याद दिलाएगा कि नूफ़ान की नाव के मुसाफिरों की पहली लड़ाई पानी के धोखे से है !'

हसन की आँखों में प्रकाश था, मानो जीवन का जाने कौन-सा नया अध्याय आज सामने खुलता चला जा रहा था । इमाम ने ही फिर कहा—'आज जो गुलामी को मिटाने का सब से बड़ा जंग नहीं छेड़ता, वह मजहब का दुश्मन है । असली गुलामी है कि हम सब उस जालिम के राज्य में भूखे हैं । हम उसके इसलिए दुश्मन नहीं कि उसकी चमड़ी गोरी है, क्योंकि वह सैकड़ों काले कुत्तों के गलों में पट्टे डाल कर हम पर लइसा रहा है, बल्कि इसलिए कि उसके तख्त में हीरे नहीं हैं, हमारे दुधमुँहे बच्चों की आँखें निकाल कर उस पर जड़ दी गई हैं, और वे हमारी तरफ घूर रही हैं, हमें बुला रही हैं !'

रात हो गई थी । जुलूस ऐसा निकला था, जैसा आज तक आगरा में कभी नहीं निकला । पुलिस दबी-दबी-सी खड़ी थी । वह जब बार करना चाहती थी, उससे पहले ही इमाम ने उसे रोक दिया था । अमन की गुलामी को आज आज़ादी के एके के अमन ने हरा दिया था ।

हसन चुपचाप खड़ा था । मोहसिन ने उसे हिला कर कहा—
 'इमामपाक कहाँ हैं, हसन ?' हसन नहीं बोला । मोहसिन ने फिर कहा—
 'इमाम बुर्जुग कहाँ हैं, हसन ?'

इसी समय इमाम ने प्रवेश किया । वह गम्भीर था । मोहसिन ने
 चिह्ना कर कहा—'इमामपाक, आप कहाँ चले गए थे ?'

इमाम ने भारी स्वर से कहा—'बेटा, पुलिसवाले मुझे धमकाने के
 लिए कोतवाली पकड़ कर ले गए थे । कहते थे; मैंने कल दंगा करवा
 दिया होता । वह तो पुलिस थी, इसलिए लोग दब गए । वे कहते थे
 कि मैंने मस्जिद में से बगावत का नारा लगाया था उनके बादशाह के
 खिलाफ । खुदा के इबादत खाने की वजह से उन्होंने मुझे नहीं पकड़ा...।'

हसन ने दृढ़ हो कर कहा—'नहो कहेंगे कि कल उनके होश फाख्ता
 थे । जालिम के घुटने कितने कमजोर हैं ? उनकी दुकान का सौदा जाली
 सिक्कों के बल पर ही चलता है । दो आने का रुपया सोलह आने में चला
 कर रईस बनता है ! उसके कोई खुदा नहीं, उसका मजहब लूट है !'

इमाम ने हर्षित हो कर कहा—'क्यों दे दे वह आजादी ? हम क्या
 उसके इकलोते बेटे है ? अरे, वह मर कर भी ऐसी वसीयत कर जाय,
 इतनी भी उसमें इन्सानियत नहीं है । वह तो दरिन्दा है—ख़ूरेज़ !'...

हसन और मोहसिन मुन रहे थे । उनका खून तड़प रहा था और
 इमाम कह रहा था—'क्योंकि उनमें ईमान की क़ नहीं बची है ।'

अनुवर्त्तिनी

[१]

वृद्ध कौत्सुभ ने उद्वेलित होकर पूछा—'अरे क्या हुआ, कुछ मुझे
 भी तो बताओ । अरे कोई कुछ बताता क्यों नहीं ?'

‘कौन ? कौत्सुभ भिन्नु तुम हो ?’ संघस्थविर ने चलते-चलते रुक कर कहा—‘आज विजयतीरा के संघ का नाम फिर से चमक उठा है ।’

पास खड़े युवक भिन्नु अनागारिक ने चिल्लाकर कहा—‘मेधावी आनन्द भिन्नु विजयी हुए हैं । उनकी अद्भुत वाक् शक्ति, प्रचुर प्रमाण, अकाट्य तर्क से बालनाथ की समस्त योगसिद्धि ऐसे उड़ गयी जैसे खर के सिर से सींग ।’

‘आनन्द जीत गये ?’ वृद्ध ने गद्गद् होकर कहा—‘जीत गये आनन्द ! भगवान्, तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए ! संघस्थविर, आर्य संघ का नाम अमर है ।’

संघस्थविर ने कहा—‘आनन्द पर संघ को गर्व है भिन्नु कौत्सुभ ! वह मेरा शिष्य है । वह प्रकाण्ड मेधावी है । जिस समय आनन्द बोलने को खड़ा हुआ एक और वज्रयान के महासुखवादी सिद्ध, दूसरी ओर गोरक्ष के अनुयायी योगी बैठे थे । उन्होंने बहुत कुछ कहा । सिद्धों ने प्रज्ञा और उपाय को बखेर दिया । शून्य, विज्ञान और महासुख के विवेचन से जन-सभा को मन्त्रमुग्ध कर दिया । ध्यानी बुद्धों, बोधि-मत्त्वों, युगनद्ध स्वरूपों से उन्होंने सब कुछ एकदम सिर में उतार देना चाहा । इन पतितों में कुछ जो शैव हो गये हैं, उन्होंने भी बहुत कुछ प्रमाणित करने का प्रयत्न किया किन्तु न सङ्गम तन्त्र काम आया, न साधना ही । वे केवल अशिषितों, मूर्खों को परास्त कर सकते हैं । आनन्द ने जब बोलना प्रारम्भ किया एकदम नीरवता छा गयी । उसने कहा—अन्तसाधना, अन्तसाधना का मार्ग बाह्य-आडम्बर नहीं है । तुम शरीर को कष्ट देकर समझते हो कि आत्मा पवित्र हो रही है ? तुम गुणों के स्थान पर गुण का प्रयोग न करके क्रिया-व्यापार को सूक्ष्म और स्थूल में विभाजित करने का प्रयत्न करते हो ? भिन्नु कौत्सुभ, उस समय सभा में ऐसा कोलाहल मचा जैसे किसी ने समुद्र का मन्थन कर दिया हो । आनन्द फिर भी बोलता रहा । मैंने उसे वेदान्ती माधव

मिश्र से भी शास्त्रार्थ करते देखा है। किन्तु नहीं भिक्षु, वह कुछ भी नहीं था। आज तो ऐसा खण्डन किया उसने कि मुझे महाप्रभु के प्रथम शिष्य आनन्द की आभा उसके चारों ओर फूटती हुई दिखायी दी। मुझे आनन्द पर गर्व है; आर्य संघ को कृतज्ञ होना पड़ेगा उसका। उसने आज गौतम के नाम पर कलंक नहीं आने दिया।'

बुद्ध कौत्सुभ ने आनन्द से विह्वल होकर कहा—'संघस्थविर, गौतम के इन बनने वाले अनुयायियों ने कितने भयानक पाप किये हैं। आज जब कि सब जगह से प्रायः हीनयान मिट गया है विजनतीरा के संघ में हम अब भी पवित्र हैं। आर्यावर्त्त को विदेशियों ने सहस्रों वर्षों में विच्छिन्न कर दिया है। विभिन्न-धर्मा आज धर्म की ओट में अनाचार फैला रहे हैं। कहते हैं सुदूर सागर तीर पर पश्चिम में यवन विजयी होकर अब अपने धर्म का बलपूर्वक प्रचार करने लगे हैं। उत्तर से अनेक अभियान करके भी उनका बल अभी ठण्डा नहीं हुआ। राजपुत्र परस्पर युद्ध कर रहे हैं। गौतम को लोग भूलते जा रहे हैं। प्राचीनावीति कहकर जन समाज सब कुछ खोता जा रहा है। आर्य, आर्यावर्त्त में लोग एक दूसरे को अब आर्य भी नहीं कहते।

संघस्थविर ने कहा—'बुद्ध भिक्षु, गौतम का आशीर्वाद चाहिए। सब कुछ फिर प्राप्त होगा। खोया हुआ लौट आएगा। आज जो प्रशस्त ललाट धीरे-धीरे उठ रहा है उससे फिर से राजा और प्रजा बौद्ध होंगे। चक्रवर्ती सम्राटों की छत्रछाया में आर्यावर्त्त फिर बौद्धों का केन्द्र हो जाएगा। वह देखो भिक्षु आनन्द आ गया।'

तभी आनन्द ने आकर प्रणाम किया। कौत्सुभ ने गद्गद् होकर आशीर्वाद दिया—'वत्स, तुम्हारी सदा जय हो !'

'महापंडित बुद्ध भिक्षु के रहते मुझे कोई भय नहीं'—आनन्द ने नम्र होकर कहा।

संघस्थविर मुस्करा दिये।

[२]

उन दिनों आर्यावर्त्त की शक्ति विभिन्न सामन्तों के हाथ में खंड-खंड होकर उच्छृङ्खल हो उठी थी । पश्चिम के कुछ साधू आकर अपने अनोखे उपदेश देने फिरते थे । नित्य ही गोरख-पन्थी और भैरवी साधुओं का उनसे समागम होता और वे साथ बैठकर खाते, साथ ही मदिरा पीते, समझ न आने वाली बातें कहते और प्रजा उनसे भयभीत होकर बात-बात में उनके सामने सिर झुका देती । देश में तीन ही वर्ग प्रधान थे । एक प्रजा, दूसरा राजवंशीय समुदाय, तीसरे यह साधू जो व्यक्तिगत महानिर्वाण की खोज में पागल हो रहे थे । भैरवी चक्रों और हठयोगियों की समाधियों को लोग सुनते और श्रद्धा करते थे । दुर्दमनीय गिरि-कन्दराओं में युवक बैठकर बलि देते, उनकी धूनी की लपट आकाश को चूमने लगती और उस उन्माद में वे स्त्रियों की योनि-पूजा करते । दर्शन और अभ्यास के इस अन्वकार मूल वितण्डावाद में आर्य संस्कृति की जड़ें हिल रही थी । दक्षिण में उस प्रबल शक्ति से दिग्विजयी शङ्कर का गम्भीर गर्जन उठा था कि बौद्ध धर्म लड़खड़ा गया था । यवनों के आक्रमण की दिन पर दिन आशङ्का बढ़ती जा रही थी । अपार धनराशि लिये बौद्धों के संघाराम नगर के बाहर भविष्य की काली छाया में काँपते हुए अब भी कनिष्क और अशोक के भग्न स्तूपों में तथागत का नाम मात्र दुहरा लेते थे ।

विजनतीरा नदी के किनारे ऊँघता हुआ वह संघ सन्ध्या की डूबती छायाओं में रङ्ग-बिरङ्गा बहुत ही मनोहर सा दीख रहा था । बाहर-ही विशाल फाटक पर प्रस्तर की मूर्तियाँ समय को देख स्तब्ध हो गयी थीं, मानों उन्होंने उसे निर्भय होकर काट दिया था । अर्धेड आयु के संघ-स्थविर बुढ़ भिन्नु बाहर खड़े कुछ सोच रहे थे । उनके पास ही आनन्द भिन्नु खड़ा था ।

‘बात में उसकी कुछ सार अवश्य है आनन्द’—कहते हुए बुद्ध भिन्नु ने आनन्द की ओर देखा ।

‘आप सोच सकते हैं ऐसा आर्य ? मुझे तो कुछ समझ नहीं पड़ता । वज्रयान की यह अद्भुत पिपासा मुझे कभी सन्तुष्ट नहीं कर सकी । शून्य को विभाज्य रूप देने के क्या हम अन्तरात्मा को धोखा नहीं देते ?’—आनन्द ने आकाश की ओर देखते हुए कहा । संघस्थविर मौन रहे । आनन्द ने फिर कहा—‘देव, प्रच्छन्न बौद्ध के मिथ्या प्रचार से अनेक ब्राह्मणों को नये-नये उपाय सूझने लगे हैं । नगर में एक यवन आया है जो अनेक उल्टी-सीधी बातें कहता फिरता है । वह तो सिद्धों से भी बढ़ गया है । मैं कुछ नहीं समझ पाता ।’

उसकी उत्तेजना देखकर संघस्थविर हँस दिये । उन्होंने कहा—‘आनन्द तुम अभी युवक हो ।’

आनन्द बिल्कुल नहीं समझा । उसके सोने के से दमकते रङ्ग पर कापाय का वर्ण प्रफुल्लित हो रहा था । कठोर संयम ने उसका मुख दमदमाता था जिस पर सौम्य क्षमा का आर्य मौन उसे बहुत ही मनोहर बना देता था । एकाएक उसने एक सुन्दरी युवती को अपनी ओर आते देखा । आनन्द ने कहा—‘देव, कोई स्त्री यहाँ आ रही है ।’

संघस्थविर ने देखा । स्त्री ने आकर प्रणाम किया ।

संघस्थविर ने पूछा—‘शुभे, तुम कौन हो ? यहाँ किसलिए आई हो ?’

‘दीक्षा लेने आयी हूँ प्रभु । मैं विधवा हूँ—स्त्री ने उत्तर दिया ।

‘गौतम के संघ में स्त्रियों की गणना अधिक होती जा रही है, आर्ये ! तुम भिक्षुणी होकर क्या करोगी ?’

‘मैं अपने वैधव्य का अन्धकार संयम के महाप्रभात में हीरे की तरह चमकता हुआ देखना चाहती हूँ प्रभु ।’

‘नासी !’—संघस्थविर के नयनों में एक कठोरता छा गयी—‘तुम मुण्डित केश अलंकारविहीन कर दी जाओगी ।’

‘शिरोधार्य’

संघस्थविर ने आनन्द की ओर देखा । आनन्द का कुन्दन-सा मुख गम्भीर था । वह स्त्री की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था । स्त्री का प्रस्फुटित यौवन मचल रहा था, जैसे नदी उफन कर बह जाना चाहती थी । उसके नीले दुकूल पर वह सफ़ेद कंचुक कालिन्दी पर काँपते कमलों की भाँति था जिसे छू-छूकर समीरण अङ्गड़ाई भर रहा था । स्त्री ने आनन्द को देखकर सिर झुका लिया ।

संघस्थविर ने कहा—‘वत्स आनन्द, भिन्नु कौत्सुभ के पास ले जाकर इमे दीक्षा दो ।’

आनन्द ने आज्ञा को सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया । स्त्री उसके पीछे-पीछे चलने लगी । आनन्द ने मुड़कर पूछा—‘आर्ये तुम्हारा नाम ?’

स्त्री ने कहा—‘देव, मेरा नाम नन्दिनी है ।’

‘कसकी पुत्री हो ?’

‘मेरे पिता स्वर्ग चले गये । मेरा पालन मेरी माता ने ही किया है । किन्तु जब वे भी चल बसी, संसार मे मेरा कोई भी सहारा नहीं रहा, तब मैं गौतम की शरण में आयी हूँ ।’

भिन्नु की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी । उसने फिर पूछा—‘आर्ये, क्या तुम्हारे पति के सम्बन्धियों ने भी तुम्हें संघ में सम्मिलित होने की स्वीकृति दे दी है ?’

स्त्री ने उत्तर दिया—‘आर्य, नन्दिनी ने अपने पति का मुख भी नहीं देखा । जब वह छोटी थी तभी उसका विवाह एक दस वर्ष के बालक के साथ कर दिया गया था । माता तब पाटलिपुत्र में थी । एक दिन श्रेष्ठि सुदत्त के घर से लौटते समय सुना कि मेरे पति के घर कुछ दस्युओं ने आक्रमण किया और तभी मेरे पति चले गये । कहते हैं उस

दस वर्ष के बालक की वहीं हत्या कर दी गयी। माँ ने तभी से मुझे विधवा कहा है। उच्च कुल की मर्यादा पालने का मैंने अपनी माता को उसकी मृत्यु शैया पर हाथ रखकर वचन दिया है।’

आनन्दभिक्षु विचार मग्न हो गया। जैसे उसका हृदय किसी घोर चिन्ता में डूब गया। जब दोनों भग्न स्तूप के पार सरोवर के तीर पर पहुँचे उन्होंने देखा नेत्रहीन वृद्ध कौमुभ कुछ गा रहा था। आनन्द ने सुना वह अश्वघोष के बुद्ध-गृह-त्याग के महावैराग्य के गीत गा रहा था। उसका हृदय एकदम शान्त हो गया।

उसने प्रणाम करके कहा—‘आर्य, संघस्थविर ने देवी नन्दिनी को प्रव्रज्या ग्रहण करने को आपके पास भेजा है।’

वृद्ध ने कहा—‘कौन ? नन्दिनी ? शुभे, मेरे पास आओ।’

वृद्ध ने स्नेह से कहा—‘यह केश नहीं रहेगे, यह अलंकार नहीं रहेंगे। न चंदन लगा सकोगी, न अङ्गराग, न आलक्तक, न कानों में कुमुम खोस सकोगी, न.....’

नन्दिनी ने काँपते स्वर में कहा—‘भिक्षु, मैं तो अब भी यह सब नहीं कर सकती। मैं विधवा हूँ।’

‘किन्तु मन वश मे रख सकेगी?’

‘प्रयत्न करूँगी भगवन् !’

वृद्ध हँसा। उसने कहा—‘आर्ये, गौतम ने कहा था कि स्त्रियाँ संघ में आकर संघ की आयु घटा रही है, किन्तु जो भगवान् बुद्ध नहीं रोक सके वह मैं अन्धा, आँखों से ही नहीं मन से भी, कैसे रोक सकता हूँ ? आओ, मैं तुम्हें प्रव्रज्या ग्रहण कराऊँगा। आज तुम अनुवर्त्तिनी हो। बुद्धं शरणं संघं शरणं गच्छामि !’

नन्दिनी ने नम्रता से शीश नत कर लिया। आनन्द चुपचाप देखता रहा। सन्ध्या के धूमिल वसन गहरे हो चुके थे।

[३]

आकाश में नारङ्गी उजाला फैलने लगा । उन्मत्त समीरण नन्दिनी के मुख पर बज उठा । उसने अपने काषाय को हाथ से थाम लिया । अन्धे भिन्नु कौत्सुभ की पुकार गूँज उठी—‘अनुवर्त्तिनी !’

‘आयी बाबा’—कहते हुए नन्दिनी ने पास जाकर उसकी लाठी को थाम लिया ।

भिन्नु ने कहा—‘अनुवर्त्तिनी, सङ्ग का वातावरण तुझे कैसा लगता है बेटी ?’

अनुवर्त्तिनी ने कहा—‘देव, मेरा हृदय शांत है, मेरी भावनाएँ स्थिर हैं और मेरा चित्त अकलुप है ।’

बुद्ध ने प्रसन्न होकर कहा—‘भगवान् बुद्ध तेरी रक्षा करें !’

अनुवर्त्तिनी उसके पास से चल पड़ी । स्तूप के पीछे भूमि पर कुछ लकीरें खींचकर आनन्द भिन्नु गणना कर रहा था । उसके विशाल मस्तक पर चिन्ता की हल्की लहर सिकता पर मानों अपनी पद रेखा छोड़ गयी थी । अनुवर्त्तिनी उसे देखकर रुक गयी । आनन्द अपने आप कह उठा—‘यदि गणना सत्य है तो संघ का ध्वंस अब दूर नहीं है । नालन्द का जो भी ज्ञान अब तक सुरक्षित रह सका है उसका अन्त होने में विलम्ब नहीं रहा ।’

अनुवर्त्तिनी ने आगे बढ़कर कहा—‘आर्य, संघ का ध्वंस ! क्या कह रहे हैं आप ?’

‘मैं झूठ नहीं कहता अनुवर्त्तिनी’—भिन्नु आनन्द ने अपने दीप्त मुख को उसकी ओर मोड़कर कहा, ‘गणना, नागार्जुन की विद्या कभी मिथ्या नहीं हो सकती ।’

‘गणना ?’—अनुवर्त्तिनी ने शङ्कित स्वर में पूछा, ‘आप मेरा भविष्य बता सकेंगे ?’

आनन्द भिन्नु ने उसे बैठने का संकेत करके कहा—‘अपना बाँया हाथ दिखाओ ।’

नन्दिनी बाँया हाथ फैलाकर बैठ गयी । एकाएक हाथ पर से दृष्टि उठा कर उसके मुख पर गड़ाते हुए आनन्द ने कहा—‘आर्य्ये, तुम तो विधवा नहीं हो । फिर यह कैसा छल ?’

नन्दिनी काँप उठी । उसने करुण स्वर में कहा—‘आर्य्य, उपहास भी तो इतना निर्दय !’

आनन्दभिन्नु ने गंभीर स्वर में कहा—‘आर्य्ये भिन्नु आनन्द स्त्री तो क्या पुरुष से भी उपहास नहीं करता । वह अनेक मेधावियों को दिन में दीपक जलाकर परास्त कर चुका है । किन्तु तुम विधवा नहीं हो । मैं गौतम की शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि गणना सत्य है, सामुद्रिक शास्त्र सत्य है तो तुम विधवा नहीं हो ।’

नन्दिनी कुछ भी नहीं सोच सकी । वह उठकर खड़ी हो गयी । एक बार उसने आकाश की ओर शून्य-दृष्टि से देखा । आनन्द भिन्नु ने देखा जैसे नीले आकाश में नवीन शतदलों की स्थिर निर्वात सृष्टि-सी हो गयी । नन्दिनी चिन्तामग्न चल पड़ी ।

संघस्थविर ध्यान में मग्न बैठे थे । उनका पका हुआ शरीर ताम्र-वर्ण का हो गया था । नन्दिनी सामने जाकर श्रद्धा से शीश नतकर बैठ रही । जब संघस्थविर बुद्ध भिन्नु के नयन खुले उन्होंने देखा नन्दिनी सम्मुख ही प्रणाम कर रही थी । संघस्थविर देर तक देखते रहे । आज उनके हृदय में कामनाओं के वृक्ष के न-जाने कहाँ से पत्ते निकल कर खड़खड़ा उठे । उन्होंने मन-ही-मन त्रिपिटक का स्मरण किया । नन्दिनी ने कहा—‘आर्य्य, चित्त का विकार दूर करने का संयम इतना दुख क्यों देता है जब उसका परिणाम केवल पवित्र शान्ति और मुख है ?’

संघस्थविर ने कहा—‘वत्से, संघर्ष से जन्म होता है । मनुष्य जैसे करवट बदलकर ही नींद में पूरा विश्राम पाता है और वह करवट उसे

एक श्रम-सा प्रतीत होता है इसी प्रकार दुख हमें केवल दिखायी देता है । इस दुख की निवृत्ति ही मन की वास्तविक शान्ति है ।’

नन्दिनी ने फिर कहा—‘देव, मनुष्य के जीवन की चरम सात्विक वृत्ति क्या है ?’

संघस्थविर ने विचलित स्वर को दबाते हुए कहा—‘सम्यक् ज्ञान का सम्यक् क्रिया से सम्यक् मिलन कराना ही जीवन को सुचारु पथ पर अग्रसर करना है ।’

नन्दिनी उठ गयी । संघस्थविर ने फिर ध्यान लगाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे असफल रहे । उन्होंने एक बार चारों ओर देखा और फिर काँप उठे । दूर नन्दिनी सिर झुकाये चली जा रही थी ।

[४]

सन्ध्या के धूमिल अन्धकार में चैत्यां पर दीपक जलने लगे । तथागत की विराट सौम्य मूर्ति के सम्मुख अनेक दीपाधारों में आलोक पुंजीभूत होकर जगमगा उठा । अगर्धूम की काँपती लहरें स्नायवित कम्पन में झूमने लगीं, घण्टे और शङ्ख बजने लगे ।

संघराम के एक प्रकोष्ठ में संघस्थविर बुद्धभिन्तु बैठे कुछ ध्यान कर रहे थे । धुँधला दीपक जैसे सिर उठाकर अन्धकार को देख-देखकर सिहर उठता था । एक ओर तालपत्र पर लिखी पुस्तकें रखी थीं । बुद्धभिन्तु का हृदय आज कुछ अस्थिर था । कई बार प्रयत्न करने पर भी वह ध्यान नहीं लगा सके । उन्होंने देखा, दूर उपासिकाएँ चली जा रही थीं । वे गौर से देखने लगे । अन्त में उन्होंने देखा, प्रशान्त गम्भीर नन्दिनी धीरे-धीरे चल रही थी । भिन्तुणी होकर भी उसकी चाल की मादकता कम नहीं हुई थी, क्योंकि यौवन के दो दुर्ग अपने वैभव के उफान में मंथर आवाहन में झूम उठते थे । उसके मांसल शरीर से प्रभा फूट रही थी । एक क्षण के लिए संघस्थविर के हृदय में एक चौंधियाती ज्वाला सुलग उठी ।

उन्होंने उठकर बाहर बैठे भिन्नु को बुलाकर कहा—‘जाओ, भिन्नु आनन्द को बुला लाओ ।’

भिन्नु चला गया । संघस्थविर व्याकुल से घूमने लगे । उनकी छाया दीवारों पर काँपने लगी । थोड़ी देर बाद भिन्नु आनन्द ने आकर प्रणाम किया ।

संघस्थविर ने बिना उत्तर दिये पुकारा—‘आनन्द !’

‘देव !’—आनन्द ने नम्र स्वर में कहा ।

संघस्थविर शान्त हो गये; उन्होंने कहा—‘वत्स आर्यसंघ को नित्य चुनौतियाँ दी जा रही हैं। तक्षशिला से खबर आयी है कि अनेक भिन्नुओं ने चीवर त्याग दिया । वे लोग अपनी प्रसन्नता से स्मार्त शैव हो गये हैं । ऐसे समय में हमें क्या करना चाहिए ? संघ को किसी प्रकार बचाना होगा । भगवान गौतम के अनुयायी आज अपने अन्तःकरण के सम्मुख भयानक से भयानक पाप करते नहीं हिचकते ।’

भिन्नु आनन्द ने देखा संघस्थविर व्याकुल हो उठे थे । उसने कहा—‘आर्य्य, मैं दस वर्ष की आयु से ही माता-पिता से ही छीन लिया गया था । मुझे नहीं मालूम मेरे माता-पिता हैं या नहीं । श्रेष्ठ धनदत्त ने मुझे गोद लिया था । तब से मैं संघ के लिए दान कर दिया गया हूँ । आज मुझे संघ में रहते हुए चौदह वर्ष बीत गये हैं । मैंने विद्याओं का मन्थन किया है । आपने अपने हाथ से मुझे ज्ञान का नवनीत खिलाया है । आज तक आपने बड़े-बड़े-वैष्णव, शैव अथवा विभिन्न-धर्मा से हँसते हुए मुझे शास्त्रार्थ करने मेजा था । आपके विश्वास का प्रबल श्वास ही मेरे प्रतिद्वन्द्वी की टिमटिमाती दीपशिखा को बुझा देता था और दीपक की निर्जीव धूमराशि को उठते देखकर सब हँस देते थे । आर्य्यसंघ के प्रबल चालक यदि शत्रु को देख भय से काँप उठेंगे तो आर्यावर्त में वह आग लगेगी कि गौतम का प्रत्येक अनुयायी, प्रत्येक मठ भस्म में मिल जायगा । क्षमा करें देव, मैंने विजयतीरा के प्रबुद्ध

संभाराम के महायशस्वी, आयु से अधिक ज्ञानी, प्रकांड मेधावी सौम्य, सत्यवादी, संयमी संघस्थविर बुद्धभिक्षु को कभी भी चलती हवा में काँपते पत्ते की तरह नहीं देखा था ।’

‘भिक्षु.....!’ संघस्थविर चीख उठे । किन्तु आनन्द कहता गया, ‘भिक्षु के तन का ध्वंस एक प्राकृतिक नियम है, किन्तु मन का ध्वंस एक अनाचार है, मार के अंधकार की विजय है ।’

संघस्थविर ने कुछ नहीं कहा । वह बाहर देखने लगे । उपासिकाएँ लौट रही थीं । संघस्थविर की दृष्टि कहीं अटक गयी । आनन्द ने देखा—वह अनुवर्त्तिनी थी । नन्दिनी ने एक बार भगवान् बुद्ध की महान् मूर्त्ति को सिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर उपासिकाओं में मिल गयी जैसे अगदधूम की लहरें आपस में घुल-मिल जाती हैं ।

आनन्द मन-ही-मन उन्मत्त-सा हिल उठा । आज उसके मस्तिष्क में एक नया प्रहार हो रहा था । नन्दिनी ! भिक्षु के संयम का सारा ममत्व क्षण-भर उपेक्षा की ठोकर से निर्जीव-सा पीछे हट गया । चौबीस वरस का वह रुका हुआ यौवन थपेड़े मारकर अंतस्तल के किसी कोने में पुकार उठा । संघस्थविर की व्याकुल दृष्टि में वह तृष्णा देखकर आनन्द का मन विलुब्ध हो उठा ।

उसने कहा—‘आर्य्य !’

संघस्थविर ने धीरे से कहा—‘वत्स !’

आनन्द ने धीरे से कहा—‘भगवन् ! आपका हृदय.....’

संघस्थविर एकाएक मुड़कर खड़े हो गये । उन्होंने आनन्द को कठोरता से देखा । किन्तु आनन्द ने बिना हिचकिचाये कहा—‘देव, प्रलोभन ही प्रकाश का ज्य है ।’

‘तुम मुझे शिस्त दे रहे हो बालक ?’ संघस्थविर ने चौंककर कहा ।

‘प्रभु मैं बालक हूँ ।’ आनन्द ने झुककर कहा ।

संघस्थविर क्षण-भर मौन रहे । फिर उन्होंने ही कहा—‘आनन्द,

तुम जाओ। मुझे सोचने दो। संघ की रक्षा करनी होगी। शत्रु बढ़ते जा रहे हैं।’

आनन्द ने कहा—‘आर्य्य, मनुष्य अपने भीतर के शत्रु से सबसे अधिक भय खाता है, क्योंकि पतवार टूट जाने पर कोई नाव-जल को नहीं काट सकती वह केवल लहरों की दया पर भटकते खाती है।’

और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही तेज़ी से बाहर चला गया। संघस्थविर उद्भ्रांत-से, मोहाकुल-से जड़भूत बैठे शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखते रहे। द्वार में से नीला अधकार, उस पर तारे.....सब काँप रहे थे। संघस्थविर ने विचलित होकर आँखों को बन्द कर लिया।

[५]

मेघों का गम्भीर गर्जन रात्रि की सनसनाती निस्तब्धता में व्याप गया और देर तक संधाराम गूँजता रहा। संघस्थविर व्याकुल-से प्रकोष्ठ में टहलने लगे। दीपक हवा से बुझ गया। उन्हें कुछ भी ज्ञात न हुआ।

मन ने कहा—बुद्धभिन्नु तुमको क्या हुआ ? तुम जीवन के आदर्श को इतना नीचे गिरा गये ? मैं समझता था अनुवर्त्तिनी के मोह-जाल में साधारण भिन्नु कुरंग की तरह हतचेत होकर फँस जायगा किंतु भदन्त बुद्धभिन्नु ?

किन्तु तभी कोई कह उठा—कमल को पाने के लिए कीचड़ में पाँव देना क्या कोई पाप है ?

संघस्थविर बैठ गये। लोभ गम्भीर भाव से हँसने लगा।

संघस्थविर फिसला है किन्तु यह सँभलेगा भी, क्योंकि गौतम का आशीर्वाद यही पुकार रहा है। किन्तु रोग तो साधारण नहीं है। मृत्यु ही एकमात्र उपाय है।

संघस्थविर मुस्करा उठे।

और जो यह समझते हैं कि आकर्षण पाप है वह अपने आपको धोखा देते हैं। लेकिन मैं नन्दिनी से प्रेम कर सकता हूँ ? संघस्थविर जोर से कह उठे। स्वर वर्षा की ध्वनि में गिड़गिड़ाने लगा। वह और उत्तेजित होकर कह उठे—मनुष्य करने को क्या नहीं कर सकता ? क्या नन्दिनी मेरी नहो हो सकती ? हो सकती है, हो सकती है !

पाप की विकराल छाया समस्त नदी पर छाकर बाद ले आयी और संघस्थविर उन्माद में भर कर प्रकृति की अभिसार-लीला में अट्टहास कर उठे। प्रकोष्ठ का अङ्ग-प्रत्यङ्ग गूँज उठा और प्रतिध्वनि करता अन्धकार भी हँसने लगा, अट्टहास करने लगा। कुछ देर को वह सब कुछ भूल गये। उन्होंने मौन होकर सुना, स्वर अब भी गूँज रहा था। उनकी आँखों के सामने से नन्दिनी का रूप चल उठा। वे विशाल नयन जिनके कोनों में लाजभरी अँगड़ाई लेती ललाई मांसल कमलों-सी पँखुड़ी खोलकर अलोक पैला देती थीं उन्हें अंधकार में मानों देखने लगे। वह मादक विह्वल अङ्गस्पर्श का सुख उन्हें विष से भर गया। बिजली कौंध उठी।

किन्तु, संघस्थविर ने कहा—‘बुद्धभिक्षु ने भी कभी प्रेम किया था ? काषाय में वैराग्य है प्रेम नहीं। प्रेम है किन्तु सूर्य के प्रकाश-सा। ऐसी अनुवर्त्तिनी के स्थान करोड़ों अनुवर्त्तियों को अपनाने का, पथ-प्रदर्शित करने का भार उन पर आर्यसंघ ने डाला है।’

संघस्थविर फिर हँस पड़े।

मैं अपने को धोखा दे रहा हूँ। चाहे मोह, चाहे वासना, चाहे पाप, अथवा कुछ भी हो बुद्धभिक्षु एक नारी के मांसल पयोधरों को देखकर व्याकुल हो उठा है। इस नश्वर अणुभाण्ड की एक मनोहर स्वर्गिक कल्पना !

संघस्थविर फिर उद्भ्रान्त से घूमने लगे। उन्होंने कहा—‘कब तक अपने को बहलाओगे भिक्षु ? तुम नन्दिनी के मोह में फँस गये हो, किन्तु

तुम्हारा दम्भ तुम्हें भीतर-ही-भीतर खा रहा है । सत्य सत्य ही है, और यदि सत्य को झुंठाया जा सकता है तब भी सत्य का एक रूप दूसरे रूप से ढँका नहीं जा सकता ।' संघस्थविर चुप हो गये । उन्होंने चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा । अंधकार ठण्ड से सिसक रहा था । बिना साँस लिये नभ से जलधर अविराम मूसलाधार वर्षा कर रहे थे । पृथ्वी पर से छींटें उछल रही थीं । कभी-कभी बिजली चमक जाती थी । प्रकोष्ठ में भी सीलन थी । ठंडी हवा के झोंके भीतर घुस-घुस आते थे । उनमें एक चिपकनापन था ।

एकाएक वासना ने अवगुण्ठन खींचकर कहा—'नन्दिनी का सौन्दर्य बुद्धभिन्नु को प्रिय नहीं, उसका वह मादक यौवन प्रिय नहीं । उसे चाहिए केवल नन्दिनी ।'

पुराने संयम ने मुँह फेरकर पूछा—'तब किसलिए भिन्नु ?'

क्योंकि मन उसे चाहता है ।

और किसी उपासिका को नहीं चाहता ? नारी के प्रति लोभ ? आलिङ्गन की मादक तृष्णा, पल-भर शरीर से शरीर सटाकर ऊष्मा में भूम जाना, त्याग के शव पर चुम्बन करना, यही सब तुम्हारी प्यास है भदन्त बुद्धभिन्नु ? माता के गर्भ से जन्म लिया था अनजाने । विद्या पढ़ी, विवाह किया । अनिच्छ सुन्दरी पत्नी के स्वर्गवास होने पर शारीरिक विश्व की मोहजड़ित नश्वरता देखकर तुम यौवन में अपने आप भिन्नु बने थे । उसके बाद आज तक तुम स्त्री को भूल रहे हो । फिर आज इतने वर्ष बाद यह आग क्यों धधक उठी जिसके कसैले धूम्र से संघ घुटकर मर जायगा ? आज तुम में यह प्यास क्यों जाग उठी ?

संघस्थविर ने देखा । सामने मार खड़ा था । पीछे गौतम का हाथ अभय दे रहा था ।

बिजजी कड़कने लगी । विष अमृत बनकर कण्ठ में उतर गया ।

प्रकाश सो रहा था, हलचल सो रही थी। संघस्थविर पुकार उठे—‘बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि’।

अन्धकार निर्मल हो गया। पाप की भीषण प्राचीर ढह गयी। संघस्थविर चौंक उठे। यह वह क्या सोच रहे थे? क्या कहते समस्त आर्यसंघ के भिन्नु कि बुद्धभिन्नु एक नारी के अङ्ग में घँस जाने के लिए मय कुछ भूल गया जैसे कीड़ा अंधकार में घुस जाती है। यह वह क्या कर रहे थे? इस वृद्धावस्था में यह किस जन्म का पाप अचेतन बनकर उन्हें पतन के महाखड्ग में लिये जा रहा था?

वे उठे और बुद्ध के मन्दिर की ओर चले। पानी में उनका शरीर बिल्कुल भीग गया। उन्होंने प्रतिमा के चरणों पर सिर टेक दिया और कहने लगे : भगवान्, मेरे पाप के कारण संघ पर कोई दोष नहीं आये। मैंने अनजाने ही यह पाप किया है। आपके आशीर्वाद से मैंने वृद्धावस्था को महाकलङ्क से बचा लिया है भगवान् ! एक दिन आपने यौवन में मारको पराजित किया था, आज उसी शक्ति, उसी सत्य का वरदान मुझे भी दो निर्विकार.....!

संघस्थविर रो उठे जैसे आज उनका हृदय पाषाणों को भेदकर बाहर आ जाने के लिए घोर संघर्ष कर रहा था।

आकाश में बादल गरजते रहे। सङ्घाराम निस्तब्ध-सा सो रहा था। हवा के तेज़ झोंकों में पानी छहर जाता था और अंधकार में तड़पने लगता था।

[६]

प्रभात की शीतल बेला में बादल फटने लगे और नीला आकाश बीच में से भाँकने लगा जैसे आज प्रकृति की उदासीनता को बढ़ाने के लिए ही भोर ने वस्त्र धारण किये थे। शीतल वायु बलहीन-सी चल रही थी। दूर क्षितिज पर प्रकाश फूट रहा था।

अंधा भिन्नु कौत्सुभ चैत्य में से निकल कर पुकार उठा—‘नन्दिनी !’

नित्य की भाँति उसे आज दूर ही से उत्तर नहीं मिला । नन्दिनी ने धीरे से पास आकर कहा—‘बाबा ?’

‘हाँ वत्से !’ स्नेह से अंधा वृद्ध उसके सिर को छूने के लिए टटोलने लगा । अनुवर्त्तिनी मुक गयी । कोई कुछ न बोला । वृद्ध ने ही कहा—‘अनुवर्त्तिनी, मुझे तड़ाग तक ले चलोगी ?’

‘क्यों नहाँ ले चर्लूंगी ?’ खिन्नता से नन्दिनी ने उत्तर दिया ।

अनुवर्त्तिनी आज कुछ अपने को भूली-सी थी । आज उसके हृदय में अज्ञात आशङ्का हो रही थी । हाँठ जुड़े थे, आँखों में उदासी भाँक रही थी ।

वृद्ध बोला—‘अनुवर्त्तिनी ?’

‘भिन्नु ?’ अनुवर्त्तिनी ने कहा ।

‘तू आज उदास-सी लगती है मुझे । क्या आज सूर्य नित्य की भाँति पूर्व से नहीं उग रहा ? नित्य तो इतनी बातें करती थी कि मैं सुनते-सुनते थककर तुझे चुप करने का पथ खोजता था और आज तू बिल्कुल मौन है । इसका कारण क्या है ?’

‘कुछ तो नहीं । क्या प्रत्येक वस्तु का कारण होना आवश्यक है ?’ अनुवर्त्तिनी ने कहा ।

‘प्रत्येक क्रिया के परिणाम का मूल हेतु कारण ही है नन्दिनी । अनेक कारणों से अनेक कार्य होना अथवा इसके विपरीत भी सापेक्ष संसर्ग का ही आवश्यकीय रूप है ।’

‘क्या होगा कहकर भी ?’ अनुवर्त्तिनी दबीहुई-सी कह उठी ।

‘कहो न ?’ वृद्ध ने आग्रह किया ।

‘बाबा । आनन्द भिन्नु ने कहा था कि संघ के ध्वंस के दिन निकट आ रहे हैं ।’

‘यदि आ ही रहे हैं तो कौन रोक सकता है पगली ? भविष्य तो अपने हाथों में नहीं है ।’

‘और मुझे ज्योतिषी के मुख पर एक भय की रेखा दिखायी दी थी।’

‘किसके ? भय ? क्यों ?’ वृद्ध चौंक कर कई प्रश्न एक साथ पूछ बैठ।

शांति से नन्दिनी ने कहा—‘आनन्द भिन्नु ने मुझे बताया था और कहा था अदृष्ट यही कहता है।’

‘किससे ?’ वृद्ध ने फिर पूछा।

‘यह तो उन्होंने नहीं बताया,’ अनभिज्ञ नन्दिनी ने उत्तर दिया। वृद्ध चुप हो गया मानों किसी गहरी चिंता में था। उसका ऐसा भाव देख कर अनुवर्त्तिनी बोल उठी—‘तुम ऐसे चुप क्यों हो गये ?’

‘मेरा हृदय किसी अज्ञात प्रेरणा से दहल रहा है। वृद्ध ने अपनी सफ़ेद पुतली घुमाते हुए कहा। अनुवर्त्तिनी उस स्थान की निर्जनता तथा वीभत्सता देखकर भयभीत हो गयी। उसने वृद्ध का हाथ पकड़कर कहा—‘चलो यहाँ से, मुझे डर लगता है।’

‘डर की क्या बात है ? सत्य और शांति हमारे साथ हैं। गौतम का वरदहस्त हमारे शीश पर है। मार अपना कुछ नहीं कर सकता। तुम्हारे हृदय में कोई मोह तो नहीं है ?’ वृद्ध बात करते-करते सहसा पूछ बैठ।

‘हाँ है,’ अनुवर्त्तिनी भँपती हुई बोली।

‘क्या है ?’ वृद्ध ने अविचल भाव से पूछा।

‘भिन्नु आनन्द ने कहा था कि मैं विधवा नहीं हूँ। तभी से मेरे हृदय में एक तृष्णा, एक स्वप्न की मादक छलना-सी जाग उठी है।’

‘अनुवर्त्तिनी !’ वृद्ध ने गम्भीर होकर कहा—‘तुमने मेरा उपदेश नहीं माना। तुम निर्मम नहीं हुई।’

अनुवर्त्तिनी चौंक पड़ी। यह वह क्या प्रकट कर गयी ! उससे कुछ भी नहीं बोला गया। वृद्ध ने फिर कहा—‘अनुवर्त्तिनी, गौतम को साक्षी करके कहो कि तुम उस कल्पित मनुष्य की मृग-मरीचिका में

नहीं भटकोगी । आनन्द भिक्षु की गणना मिथ्या नहीं हो सकती, किंतु क्या तुम वैधव्य के बल पर भिक्षुणी हो ? क्या पति प्राप्त होने पर तुम लौट जाओगी ? गौतम को समर्पित होकर तुम एक साधारण मनुष्य के पीछे भागोगी । कहो अनुवर्त्तिनी तुम इस चाञ्चल्य का प्रायश्चित्त करोगी ?

‘कलूँगी भिक्षु !’ मन्त्रमुग्ध अनुवर्त्तिनी ने उत्तर दिया । वह लाज से गड़ी जा रही थी ।

‘अनुवर्त्तिनी, आज मैं तुम्हें एक बात बताऊँ, सुनोगी ?’ वृद्ध ने पूछा ।

‘कहो न ?’ नन्दिनी नम्र होकर बोली ।

‘अनुवर्त्तिनी’, वृद्ध बोलने लगा, ‘तुमने संघ में एक हलचल मचा दी है । संघ का प्राण मानों माया में लिप्त हो चुका है । तथापि तुम भी फिसली हो ? फिर आर्य्यसंघ के मान की रक्षा क्या यह अंधा करेगा ?

वृद्ध अधिकाधिक चिन्तामग्न और गम्भीर होता जा रहा था । वह कहता गया—‘मानव के लिए राष्ट्र बदलेगा । अनुवर्त्तिनी, यह मेरी भविष्यवाणी है । तुमको अपना स्वार्थ त्यागना पड़ेगा । तुम्हारा सुहाग कुछ नहीं । तुम्हारे लिए पुरुष कुछ क्षण के लिए एक धिनौना भेड़िया है । तुम उस पर से अपनी असक्ति हटा लो । तुम महोत्सास के नीचे काषाय ग्रहण कर चुकी हो । फिर तुममें यह अहंकार क्यों ? तुममें यह मादकता कैसे बची रह गई ? तुम गौतम की पवित्र अनुवर्त्तिनी आज एक साधारण पुरुष की अनुवर्त्तिनी होने जा रही हो ? क्या यह संघ के लिए लजा-जनक बात नहीं ? क्या तुम अपने को सत्-चित्तन, सत् कर्म करनेवाला समझती हो ? अनुवर्त्तिनी, फिर कहो कि तुम चञ्चल नहीं हो । तुम भिक्षुणी हो । तुम्हें गौतम के आठों उपदेश जीवन में पालन करने के लिए याद हैं । तुम गिरतों को उबारोगी । तुम गौतम पर पूरा-पूरा विश्वास रखोगी और तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा का पूरा-पूरा ध्यान रहेगा ।’

वृद्ध चुप हो गया। हवा में वृद्धों के पत्ते खड़खड़ा उठे। अनुवर्त्तिनी अपराधिनी की भाँति देखनी रही। वह कुछ भी बोलने का साहस न कर सकी। वृद्ध ने कहा—‘अनुवर्त्तिनी एक बार गौतम की शरण में आओ।’

अनुवर्त्तिनी काँपते स्वर से साहस करके बोली—‘बुद्ध शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि।’

वृद्ध हँस पड़ा। बोला—‘आया न साहस? अच्छा जो मैंने कहा उसे भी स्वीकार करो। तब संघ पर यह भयानक आघात न होगा।’

अनुवर्त्तिनी ने साहस बटोरा। नीचे देखती हुई स्थिर स्वर से जो वृद्ध ने कहलाया धीरे-धीरे दोहरा गयी।

वृद्ध ने कहा—‘बस इतना ही काफी है।’ और वह चिल्ला पड़ा—‘तथागत! तुम्हारे अनुवर्त्ती और अनुयायी तुम्हें भूलते जा रहे हैं, उन्हें जगाओ भगवान्!’

और वृद्ध बड़ी भयङ्करता से चीख उठा—‘बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि!’ मानो आज वह अकेला ही आर्य्यसंघ का प्रतिनिधि बनकर बुद्धधर्म और संघ की शरण में जा रहा था। अनुवर्त्तिनी मुँह-फाड़े अवाक् और भयभीत-सी उसे देख रही थी। शब्द अभी भी गूँज रहे थे।

वृद्ध ने पहले-जैसे स्वर से कहा—‘चलो।’ अनुवर्त्तिनी ने उसका हाथ पकड़ लिया। प्रकृति में फिर भी नृत्य का-सा जीवन नहीं था। आज मानों अदृष्ट की ऊष्मा चारों ओर तीव्र वेग से फैल रही थी। एकाएक अनुवर्त्तिनी बड़बड़ा उठी—‘बुद्धं शरणं, धम्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि।’ वृद्ध हँस पड़ा। अनुवर्त्तिनी का हृदय मँज गया, उत्फुल्ल हो गया, पवित्र हो गया। उसने देखा—वृद्ध गम्भीर था।

उस समय भिक्षु जल्दी-जल्दी अपना काम समाप्त करके महाविहार की ओर जा रहे थे। अनुवर्त्तिनी और वृद्ध भी उधर ही चल दिये।

[७]

संघस्थविर ने सिर उठाकर पूछा—‘आनन्द भिन्नु, कहो क्या कहते हो ?’

आनन्द ने निष्प्रभ मुख से कहा—‘आर्य, मैं संघ का त्याग करने आया हूँ ?’

‘त्याग !’ संघस्थविर चौंककर उठ खड़े हो गये—‘तुम भिन्नु आनन्द संघ का त्याग करने आये हो ? तुम चीवर उतार कर फेंक दोगे । चौदह वर्ष से जिसे मैंने भिन्नु होकर भी पिता की ममता से पाला है वही तुम आज मुझसे कहने की धृष्टता कर रहे हो कि तुम वासनाओं से पराजित होकर यह चीवर फाड़कर फेंक दोगे । जिसको शांति से आज आर्यावर्त, दक्षिणात्य, चीन, यवद्वीप, सारा संसार एक सूत्र में बँध गये हैं; सहस्रों जीवन जिसकी पवित्रता की छाया में सार्थक हो गये हैं, उसी की गरिमा को टुकरा कर तुम मार के सामने हतभाग से रो रहे हो ?’

‘संघस्थविर !’ आनन्द का मुख सुन्दर हो उठा—‘मैं गृहस्थ का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ । मैं कोई पाप तो नहीं कर रहा । भिन्नु गृहस्थ हो सकता है, गृहस्थ से फिर भिन्नु हो सकता है ।’

‘नहीं आनन्द’, संघस्थविर ने फिर कहा—‘आज आर्यावर्त के प्रकाण्ड मेधावी विजयतीरा के संघाराम को सिर झुकाते हैं । आनन्द-भिन्नु एक साधारण व्यक्ति नहीं । वह बुद्धभिन्नु का शिष्य, अनेक विद्वानों को परास्त कर चुका है । उसके कठोर विवाद धर्मकीर्ति के से उज्ज्वल और अकाट्य प्रमाण हैं । आर्यसंघ के चारों ओर विपत्ति के बादल घिर रहे हैं । राजा अपना नहीं है । ब्राह्मणों का प्रहार दिन-पर-दिन प्रबल होता जा रहा है । सिद्धों का प्रजा पर प्रभाव बढ़ता जा रहा है । चारों ओर भयानक बातें सुनायी देती हैं । बर्बर यवनों का आक्रमण प्रायः होता रहता है । ब्राह्मणों ने जो विप फैलाया है वह धीरे-धीरे हमारी भक्त प्रजा में व्याप्त होता जा रहा है । बर्बर यवनों ने पुण्यपुर, तक्षशिला

और अनेक बौद्धविहारों को भस्मीभूत कर दिया है। आनन्दभिन्नु, तुम चले जाओगे तो आर्य्यसंघ की रक्षा क्या मैं अकेला करूँगा ? मैं जानना चाहता हूँ कि तुम स्त्री पर इतने आसक्त क्यों हो गये ?

आनन्द निर्विकार-सा खड़ा रहा। वह बोला—‘भदन्त, मैं जीवन में आज रूप और मोह से पराजित हो गया हूँ। मैंने कभी भी जो नहीं देखा उसे आज देखना चाहता हूँ प्रभो ! यदि आर्य्यसंघ एक व्यक्ति पर निर्भर है तो वह अधिक जीवित नहीं रह सकता।’

‘भिन्नु !’ संघस्थविर चीख उठे—‘तुम सङ्घ का अपमान कर रहे हो।’

‘नहीं भिन्नु !’

‘तुमने मुझे भिन्नु कहा है ?’

आनन्द हँस पड़ा—‘अभिमान को ठेस पहुँची है आर्य्य ! आज आप साधारण भिन्नु नहीं रहे न ? किन्तु मनुष्य सबसे ऊपर है। उसका सुख हम मठों और विहारों में बन्दी नहीं कर सकते।’

संघस्थविर ने आगे बढ़कर कहा—‘आनन्द, तुम स्त्री के आलिङ्गन को सुख कहते हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती ?’

‘लज्जा ?’ आनन्द ने निर्भीक स्वर से कहा—‘आर्य्य, क्या यशोधरा पाप है ? क्या राहुल का जन्महेतु पाप है ? मैं पूछता हूँ आज क्या मातृ-गौरव पाप है ? नहीं, संघस्थविर ! यौवन भिन्नु होकर रहने की आयु नहीं है।’

‘पापात्मा’, संघस्थविर ने कहा—‘तुम्हें नारी के स्तनों में आज जीवन का स्वर्ग दिख रहा है ? तुम्हें उन बड़ी-बड़ी आँखों में जो अमृत दिख रहा है वह वास्तव में विष है। यौवन समाप्त हो जायगा, बल क्षीण हो जायगा किन्तु आत्मा का ध्वंस होने पर तू कुत्तों की तरह तड़प कर मर जायगा।’

‘सङ्घस्थविर’, आनन्द ने गम्भीर होकर कहा—‘यदि यौवन पाप है

तो प्रकृति ने उसे बनाया ही क्यों ? व्यवहार और प्रकृति का सम्बन्ध अटूट है। यह एक क्षण अपना इतना कठोर सत्य लिये है कि कोई भी उसे झुठा नहीं सकता। मैं जाना चाहता हूँ।'

सङ्घस्थविर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने फूत्कार किया, 'तुम नहीं जा सकते।'

'क्यों ?' आनन्द का स्वर खिंच गया।

'श्रेष्ठि धनदत्त ने तुम्हें पालित पुत्र के रूप में संघ को अपने समस्त धन के साथ दान किया है। यदि तुम्हें मैं भी छोड़ दूँ तो भी श्रेष्ठि धनदत्त नहीं छोड़ेगा।' और वह कठोरता से हँस उठे।

आनन्द ने विद्वन्ध होकर कहा—'तब मैं एक असहाय दस वर्ष का बालक था। कुछ भी नहीं जानता था। श्रेष्ठि धनदत्त ने जिस हाथ से मेरे मुख में अन्न डाला था, उसी हाथ से मेरे जीवन का सारा सुख-हर्ष छीन लिया था। मेरी बलि पर निर्वाण की चाह करके क्या वह अपनी तृष्णा से मुक्त हो सकेगा ? संघस्थविर मैं मनुष्य हूँ बलि का बकरा नहीं जो किसी के दान को स्वीकार करके धन की तरह निर्जीव-सा अपना सिर झुका दूँ। मैं अस्वीकार करता हूँ। मैं किसी का पशु नहीं हूँ।'

'नराधम,' संघस्थविर चिल्ला उठा—'आर्य्यसङ्घ तुझे कभी भी क्षमा नहीं करेगा। राजा को विवश होकर न्याय की ओर झुकना पड़ेगा। तू संघ नहीं छोड़ सकता।'

'न्याय ?' आनन्द के होठों पर विद्रूप खेल उठा—'मनुष्य को पशु बना देना आपका न्याय है ! यदि यही आपकी गरिमा का यश है तो आर्य्यसङ्घ टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। गौतम के अंतिम पग-चिह्न तक पवित्र आर्य्य-भूमि से मिट जायेंगे।'

'चुप रहो !' सङ्घस्थविर हाँफ उठे।

'मैं निश्चय ही जाऊँगा बुद्धभिन्नु ! तुम मुझे कारागार में रखवा

सकते हो, तुम मुझे भागने से रोक सकते हो; किन्तु मुझे भिक्षु के रूप में नहीं रख सकते ।’

क्रोध से संघस्थविर उसकी ओर बढ़ने लगे । उनकी मुट्ठियाँ बँध गयीं । आनन्दभिक्षु कहता रहा—‘मैं चला जाऊँगा, मेरे साथ ही नन्दिनी जायगी ।

‘नन्दिनी !’ सङ्घस्थविर के मुँह से अकस्मात् निकल गया । उनके हाथ खुल गये । वह व्याकुल-से पूछ उठे—‘नन्दिनी जायगी ?’

आनन्द ठठाकर हँस पड़ा । वह कहने लगा—‘क्यों, सङ्घस्थविर ? नारी पाप है, आलिङ्गन विष है ? और नन्दिनी का नाम आते ही आप कैसे इतने व्याकुल हो उठे ! नन्दिनी जायगी । मैं जानता हूँ आप उस पर आसक्त हैं । आप अपना सारा छल लगा कर भी उसे नहीं रोक सकते ।’

सङ्घस्थविर लौट गये । प्रकोष्ठ की दीवार की ओर मुँह करके उन्होंने कहा—‘आनन्द, नन्दिनी एक आग है, वह सङ्घ को भस्म कर देगी । उसे जाना ही होगा ।’

आनन्द उत्फुल्ल-सा पुकार उठा—‘सङ्घस्थविर की जय हो ! उन्होंने आज एक सत्य कहा है क्योंकि उनके अभिमान के पङ्ख उस प्रखर ज्वाला में झुलस गये हैं ।’

सङ्घस्थविर ने कुछ नहीं कहा । वह वैसे ही उसकी ओर पीठ करके खड़े रहे । आनन्दभिक्षु ने देखा वह जैसे बिल्कुल थक गये थे । सङ्घस्थविर वहाँ भूमि पर पराजित-से बैठ गये । उनके चरणों के नीचे मेधा-वियों का ज्ञान तालपत्रों पर लिखा पड़ा था । किन्तु वे चुप थे । किसी विकराल छाया ने उनके स्वर को अवन्द कर दिया । भय और क्रोध से वह हाथों में मुँह छिपा कर लेट गये । आनन्द चला गया ।

[८]

अनुवर्तिनी विशाल स्तम्भ के सहारे खड़ी होकर आरती के बाद

इधर-उधर देखने लगी। भिन्नुगण अपने-अपने कार्य में मग्न थे। अगस्-धूम की गंध से वायुमंडल महक रहा था। उसी समय आनन्दभिन्नु ने उत्तेजित आवेश में प्रवेश किया और नन्दिनी से कहा—‘शुभे, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।’

नन्दिनी ने कहा—‘मुझसे?’

और वह विस्मित सी उसके साथ चल पड़ी। भग्न स्तूप के चारों ओर घास उग रही थी। दोनों वहीं बैठ गये। आनन्द का श्वास फूल रहा था। उसने एक बार चारों ओर देखा और कहा—‘नन्दिनी, आज जो कुछ मैं तुम से कह रहा हूँ तुम्हारा जीवन, यौवन और भवष्य सब कुछ उसी पर निर्भर है।’

नन्दिनी चकित हो गयी। उसने कहा—‘आर्य्य ऐसी क्या बात है मैं भी तो मुँह।’

आनन्दभिन्नु ने निर्भीक स्वर से कहा—‘देवी, मैं तुम्हारा पति हूँ।’

अनुवर्त्तिनी किकर्त्तव्यविमूढ़-सी बैठी रही। फिर एकाएक उसकी भृकुटि तन गयी। वह कठोर स्वर से बोली—‘भिन्नु, तुम एक विधवा का नहीं एक उपासिका का अपमान कर रहे हो।’

आनन्द फिर भी नहीं चौंका। उसने कहा—‘अकाल वैधव्य की यह छलना तुम्हारा एक घोर अज्ञान है जिसके कारण तुम पर्वत से उतरने का मार्ग न पाकर ऊपर से लुढ़कने के लिए तैयार हो गयी हो।’

अनुवर्त्तिनी क्रोध से चिल्ला उठी—‘तुम पागल हो गये हो भिन्नु!’

आनन्द ने धैर्य्य से कहा—‘आर्य्यसंघ की कोई स्त्री तब तक उपासिका नहीं हो सकती जब तक उसका पति उसे आज्ञा नहीं दे दे।’

‘और आप’, अनुवर्त्तिनी चिढ़कर कह उठी—‘धनदत्त के पालित पुत्र जो संघ को दान कर दिये गये हैं, आज्ञा देने योग्य कब से हो गये?’

‘अनुवर्त्तिनी, मैं विद्रोही हूँ।’ आनन्द ने व्याकुल होकर कहा।

अनुवर्त्तिनी पागल की तरह हँस उठी । उसने कहा—‘भिन्नु, तुम मुझे पागल बना रहे हो ? क्या मैं सचमुच इतनी सुन्दर हूँ कि आर्य्यसंघ का मेधावी आनन्दभिन्नु सब कुछ त्याग कर मुझे प्राप्त करने के लिए इतना बड़ा असत्य गढ़ रहा है ? मेरी माता का नाम तो बताओ भिन्नु ?’

आनन्द ने उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—‘तुम्हारी माता का नाम चंद्रभागा था, तुम्हारे पिता का अवलोकितेश्वर; और मेरे पिता का नाम चन्द्रसेन था, मेरी माता का विजनवती । दस वर्ष की आयु पर मुझे दस्यु पकड़ कर ले गये थे । उन्होंने मेरे माता-पिता की हत्या कर दी थी । श्रेष्ठि धनदत्त ने मुझे एक दिन जान्हवी के तट पर पाया था । और तुम्हारे माता-पिता का पुराना मित्र श्रेष्ठि सुदत्त मेरे पिता का भी पुराना मित्र था । और सुनना चाहती हो ?—कि तुम्हारे पिता जब उज्जयिनी से लौटकर मणिभद्र के यहाँ गये थे तभी उन्होंने मेरा तुमसे विवाह किया था, क्योंकि अवलोकितेश्वर चन्द्रसेन के साथ-साथ बाली द्वीप से व्यापार करना चाहते थे; तुम्हारी माता....’

‘भिन्नु’, अनुवर्त्तिनी सिर पकड़ कर रोने लगी—‘मैं नहीं जानती मैं क्या करूँ । भिन्नु, तुम, तुम मेरे.....? नहीं, नहीं ।’—फिर वह चुप हो ऊपर देख कर कह उठी—‘क्या तुमने गणना से ही तो सब नहीं जान लिया ?’

‘नहीं नन्दिनी’, स्नेह से आनन्द कह उठा—‘गणना से नाम नहीं निकलता । और यदि वह भी सुनना चाहती हो जो एक दस वर्ष तक का बालक याद रख सकता है तो वह भी सुनो ?’

अनुवर्त्तिनी थकित-सी बैठी रही । आनन्द कहने लगा—‘चलो नन्दिनी, संघ में हम साथ-साथ नहीं रह सकते । संघ कहता है यौवन पाप है, प्रेम पाप है; किंतु मैं इन सब का त्याग नहीं कर सकता । मेरा जीवन एक शुष्क नीरस मेढ़ का ढूँठ-मात्र बनकर नहीं रह सकता । आब जो घटा छाया है वह मेरी अपनी है । वर्षों से तुमने मेरी प्रतीक्षा की

है, दुःखों से पराजित होकर तुमने अपनी हार को भाग्य की जय बनाकर सिर झुका दिया है। देखो, यह भी एक दिन है कि तुम्हारा खोया हुआ कोष आज तुम्हारे सामने आया है नन्दिनी ! हम तुम, तुम हम, और किसी से कुछ नहीं। संसार का बड़े-से-बड़ा वैभव तुम्हारे चरणों पर न्यौछावर है। आओ चलें। जिस पति के लिए रो-रोकर तुमने तुम्हारी माता ने आँखें खोयी हैं आज वह अचानक ही तुम्हारे जीवन के सुख-स्वर्ग के द्वार खोलने को तुमसे भीख माँग रहा है।’

. अनुवर्त्तिनी ने देखा : आनन्द के मुख पर अद्भुत रूप आतुर हो उठा था। वह देखती रही। उसने कहा—‘तुम ? तुम मेरे देवता हो किंतु आर्यसंघ के लोग क्या कहेंगे ? क्या वे इस पर विश्वास करेंगे ? नहीं भिक्षु, जब इतनी बीत गयी तो अब कितना सुख है जिसके लिए यह रूप ढँक दिया जाय।’

‘रूप ?’ आनन्द ने कहा—‘यह परवशता का रूप चाहे कुछ हो मन का सौंदर्य नहीं है, क्योंकि इसमें सत्य के लिए संघर्ष करने की शक्ति नहीं रही है। क्या तुम कह सकती हो कि तुम पुरुष से घृणा करती हो ? क्या यह अथाह सौंदर्य लेकर तुम केवल पत्थरों से टकराकर हाहाकार-मात्र करने के लिए हो ?’

अनुवर्त्तिनी काँप उठी। उसने कहा —‘तथागत, मेरी रक्षा करो। मैं नारी हूँ कुछ भी नहीं समझती।’

आनन्द खिन्न-सा बोला—‘नन्दिनी, तुम पागल हो। तुम भय से जड़ हो गयी हो।’ वह खड़ा हो गया।

अनुवर्त्तिनी ने धीरे से कहा—‘नहीं भिक्षु, मैं गौतम की उपासिका हूँ। तुम रूप और यौवन के मद में जीवन के उच्च आदर्शों को भूल कर फिर से कीचड़ में पाँव देना चाहते हो। मैं पवित्र उपासिका तन और मन से गौतम की शपथ खाकर संघ के लिए अपना समर्पण कर चुकी हूँ। मैं कहीं नहीं जाऊँगी।’

आनन्द ने सुना । पाँव लड़खड़ा गये । वह मूर्छित होकर गिर गया । अनुवर्त्तिनी चीख उठी । गोद में आनन्द का सिर रखकर वह किसी भी स्त्री की भाँति व्यंजन करने लगी । जब उसने सिर उठाकर देखा, सामने संघस्थविर बुद्धभिन्नु खड़े क्रोध से काँप रहे थे । उनका मुख काला और विकृत हो रहा था ।

[६]

सन्ध्या बीत चली । बादलों के कारण गहन अंधकार छा गया । आज संघ में एक काटने वाली उदासी सब के हृदय में शङ्का उत्पन्न कर रही थी । हवा चल रही थी । संघ का सिंहद्वार बंद कर दिया गया । चर्चाकर पट मिल गये । अंधकार की छाया डरावनी होकर प्राङ्गण में फैल गयी । उस उत्कट नीरव में एक असह्यता थी जो मन मिचला रही थी ।

सब भिन्नु इकट्ठे हो रहे थे । संघस्थविर ने घोषणा की थी कि आज एक प्रमुख प्रश्न पर विचार करना है । सब गम्भीर और उत्सुक थे । एक ओर उपा सकाएँ बैठी थीं । अनुवर्त्तिनी चुपचाप एक ओर बैठी थी । आज वह डरी हुई, धैर्यहीन, भिन्नु-तेज से भ्रष्ट-सी दिखाई दे रही थी । आनन्दाभिन्नु निष्प्रभ-सा अनुवर्त्तिनी को एकटक देख रहा था ।

एकाएक अंधा वृद्ध कौत्सुभ बोला—‘संघस्थविर, आज इस समय इस मंत्रणा की क्या आवश्यकता है ? क्या कारण है उदासीनता का ?’

संघस्थविर गम्भीर होकर बोल पड़े—‘भिन्नु, इस पैशाचिक अन्धकार का कारण केवल नन्दिनी है ।’

नन्दिनी चौंक पड़ी । वह उठ खड़ी हुई और संघस्थविर की ओर उठ आयी । कौत्सुभ चुप हो गया । संघस्थविर ने देखा वह क्रोध से काँप रही थी । वे कहने लगे—‘आर्य्य भिन्नु-समुदाय सुने ! गौतम के सिद्धांतों को मानकर चलने वाले इन भिन्नुओं का जीवन सदा आदर्श रहा है । उसमें कोई कणुष की छाया भी नहीं । फिर क्या कारण है कि

संघ के भिक्षुओं के हृदय से वैराग्य हटता जा रहा है ? क्या कारण है कि मेधावी आज बुद्धिहीन, वीर्यहीन, तेजहीन, नर-कंकालों का भार उठाये मानव-जीवन के अभिशाप बनकर महापाप के विष को फैला रहे हैं ? इन सबका कारण एक है । वह है केवल नंदिनी का आगमन । क्या आज से पहले भी कभी सङ्घ में यह तामसी निर्जनता फैली थी ?

एकत्रित भिक्षु समुदाय चुपचाप बैठा रहा । वे लोग नंदिनी की ओर देख रहे थे । संघस्थविर गम्भीर थे । कभी-कभी उनके अधरों की कोर फड़कने लगती थीं, किंतु धूमिल दीपों के प्रकाश में कोई उसे नहीं देख पाया । अनुवर्त्तिनी जड़-सी खड़ी पृथ्वी की ओर देख रही थी । संघस्थविर ने एक बार भी उसकी ओर नहीं देखा ।

संघस्थविर ने फिर कहा—‘अमिताभ के चरणों की शपथ खाकर कहो क्या मैं झूठ कहता हूँ ?’

एकत्रित भिक्षु हिल उठे । फुसफुसाहट तीव्र होने लगी । शब्द सुनायी दे गया—‘नहीं, आप ठीक कहते हैं ।’

भिक्षु समुदाय फिर चुप हो गया । उत्तेजित आनंद ने उठकर आगे बढ़कर कहा—‘मानवीय भिक्षुगण ! आर्य उपासिकायें ! भदन्त सङ्घ-स्थविर ! मैं पूछता हूँ क्या मनुष्य के लिये अपने आपको धोखा देना आवश्यक है ?’

सब के सब चौंक पड़े । सङ्घस्थविर एक बार विचलित हो गये, किन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने को वश में करके कहा—‘भिक्षु आनन्द, तुम पर मार ने सरलता से विजय प्राप्त कर ली है ।’

‘नहीं आर्य’, आनन्द कड़क उठा—‘आप औरों को धोखा दे सकते हैं किन्तु आनन्द भिक्षु को कोई धोखा नहीं दे सकता । आप सोचकर बोलें । नन्दिनी यदि सङ्घ के अपवाद का कारण मान ली गयी है तब तथागत के अनुवर्त्ती जो इस सङ्घ में रहते हैं वे सब पशु हैं—नृशंस नहीं,

बलि पशु, कुत्ते जो पूँछ दबाये खड़े रहते हैं। क्या गौतम की अनुवर्त्तिनी, आर्य भिक्षुणी उपासिका का इस प्रकार अपमान करना सङ्घ की मूल शक्ति और तेज का अपमान करना नहीं है ? भगवान् तथागत.....'

संघस्थविर घृणा से अपने नीचे का होंठ दबाते हुए हँस पड़े। उन्होंने कहा—'भिक्षु आनन्द, तुम नारी के मोह में फँस गये हो विवेकहीन !'

समस्त समुदाय विवेकहीन शब्द का उच्चारण करता ठठाकर हँस पड़ा। उस हँसी में आनन्दभिक्षु की पुकार डूब गयी। अंधा वृद्ध कौत्सुभ चुप था। वह कुछ भी चेष्टा नहीं कर रहा था। समुदाय की हँसी गूँज-गूँजकर बढ़ रही थी।

अनुवर्त्तिनी ने देखा अंधकारमय श्मशान में कंकाल अट्टहास करके ताण्डव का आयोजन कर रहे थे। वह काँप गयी। भीरु नारी डर गई।

आनन्द साहस करके आगे बढ़ा—'संघस्थविर, आप अपना मोह मूर्ख पर क्यों मँढ़ रहे हैं ?'

'मैं ?' संघस्थविर ने हँसकर कहा—'गौतम के इस पवित्र सङ्घ की शपथ करके कहो कि तुम नन्दिनी पर आसक्त नहीं हुए हो ?'

आनन्दभिक्षु सकुच गया। बोला—'आर्य, यह सङ्घ पवित्र नहीं रहा।'

संघस्थविर ने गरजकर कहा—'आर्यभिक्षु समुदाय सुने ! आनन्द-भिक्षु संघ को अपवित्र कहते हैं।'

एक भिक्षु ने उठकर कहा—'आनन्दभिक्षु अपने पथ से गिर गये हैं।'

आनन्दभिक्षु ने सिर झुका लिया। समस्त समुदाय फिर जोर से हँस पड़ा।

संघस्थविर ने कहा—'भिक्षुआनन्द को दण्ड मिलेगा। किन्तु अनुवर्त्तिनी को सङ्घ से निकाल दिया जाय।'

नन्दिनी अब तक चुपचाप सब देख रही थी। अब वह आगे बढ़कर आँखों में आँसू भरे बड़ी सौम्यता से बोली—‘संघस्थविर !’

संघस्थविर ने कठोरता से कहा—‘नारी, यह लीला अभिशाप है। पवित्र गौतम के अनुवर्त्तियों को तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं। आग की चिनगारी को कोई घर में नहीं रखता।’

नन्दिनी ने तड़प कर कहा—‘तो क्या सङ्घ में मनुष्य नहीं तिनकों का ही ढेर है ?’

सङ्घस्थविर क्षण भर को चुप हो गये। उन्होंने कहा—‘तुम आग से भयानक, पाप से भी निर्भीकमना हो।’

अनुवर्त्तिनी चिल्ला उठी—‘संघस्थविर, आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है।’

‘मुझे तुम्हारे उपदेशों की कोई आवश्यकता नहीं है।’ संघस्थविर ने उत्तर दिया। ‘तो मैं’, नन्दिनी सारा बल लगा कर संघ को कँपाती हुई बोली—‘आर्यसंघ को पाप की आग में भस्म होता हुआ ही देखूँगी। एक उपासिका का अपमान करना खेल नहीं। बुद्ध, धर्म और संघ की समस्त शक्ति एक साथ महाध्वंस की इन बर्बर पीड़ाओं के विरुद्ध उठ खड़ी होंगी। आप गौतम के अनुयायी बनते हैं? आप बिना कारण ही मेरा अपमान कर रहे हैं।’

नन्दिनी का मुँह लाल हो गया था। उसका शरीर थर-थर काँप रहा था। भिज्जु क्रोध से विह्वल हो उठे थे। संघस्थविर कुटिलता से हँस पड़े। बोले—‘आर्य भिज्जु-समुदाय सुने ! यह नारी क्या कह रही है ? क्या हम इस बन्दरघुड़कियों से भयभीत होकर पराजित हो जायँ ?’

समस्त समुदाय अट्टहास कर उठा।

नन्दिनी काँपती हुई बोली—‘नीच संघस्थविर तुम.....’

‘संघस्थविर और नीच ?’ किसी ने कड़क कर कहा—‘निकलो नारी संघ से.....’

समस्त समुदाय नन्दिनी की ओर मुड़ गया। नन्दिनी दोनों हाथ खोलकर पुकार उठी—‘आनन्द, कहाँ हो तुम ? आनन्द ?’

किन्तु आनन्द के बढ़ने के पहले ही भिन्नुओं ने उसे संघस्थविर के इङ्कित से पकड़ लिया था। वहव्यर्थ ही छूटने के लिये बल करने लगा।

बादल गरजने लगे। घटाटोप अंधकार छाया हुआ था। राह नहीं सूझ रही थी। बिजली कड़क कर भयङ्करता बढ़ाती हुई आकाश में महान् विलोड़न कर रही थी। भिन्नु नन्दिनी को धकेल कर बाहर ले चले। आनन्द चिल्ला उठा—‘नन्दिनी ! प्रिये !’

भिन्नुओं ने दौतों से जीभ काट ली। वे बोल उठे, ‘आनन्दभिन्नु, शांतं पापं ! शांतं पापं !’

भिन्नुओं ने नन्दिनी को बाहर निकाल कर द्वार बन्द कर लिया। भीमकाय द्वार चर्च पड़ा।

इसी समय सङ्घ में से भिन्नुओं ने कहीं अश्वों की टापें जल्दी-जल्दी खट-खटकर बजती हुई सुनीं। बिजली चमक रही थी। आकाश हाहा-कार कर रहा था। और जब कुछ क्षण बाद अन्धे कौसुम ने कहा—‘नन्दिनी सचमुच गयी क्या ?’—तो कोई सङ्घ के सिंहद्वार पर तड़ातड़ लोहे के घनों का प्रहार कर रहा था। बाहर कोलाहल के ऊपर भिन्नुओं ने दग-दग-दग करके वृक्षों के काटने का भयङ्कर रोषित शब्द उन्मत्त होकर गूँजते हुए सुना। अश्वों की भ्रंश्रुति महाकालानल के प्रकाश-सी वहाँ व्याप्त हो गयी। भिन्नु काँप उठे। लौह-घनों का ख मानों वज्र पर वज्र का तुमुल प्रहार था। उस गम्भीर, विकट निर्घोष को सुनकर भिन्नुओं का हृदय दहल गया। वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे। बिजली आकाश से प्रलय के डमरू के समान कड़ककर कहीं दूर पर गिरी। बादल आपस में टकरा गये। गम्भीर मूसलाधार वर्षा होने लगी। अंध-कार दूना हो गया।

घोर शब्द करता सिंहद्वार अर्ध-वृत्त टूट गया। आक्रमणकारियों का

स्वर धोर कोलाहला करता दिग्दिगन्त को बधिर कर उठा । घोड़े दौड़ने लगे । बादल आकाश में गरजते हुए हाहाकार कर उठे ।

[१०]

अन्धकार में कुछ कराहें आसमान से टकरा रही हैं । संधाराम के बाहर के भाग में स्तूप के पास अनेक घोड़े हिनहिनाकर पृथ्वी रौंद रहे हैं । जगह-जगह से लपटें उठकर हाहा खा रही हैं । प्राङ्गण में स्थान-स्थान पर शव पड़े हैं जिनके रक्त से समस्त प्रस्तर भीग गये हैं । बुद्ध की प्रतिमा खण्डित होकर भूलुण्ठित पड़ी है । तालपत्रों के जलने की चिर्रांध व्याप्त हो रही है । शस्त्रों की खड़खड़ाहट से अब भी आकाश गूँज रहा है ।

कठोर सैनिकों के शरीरों पर ऊन के वस्त्र कभी-कभी उनके साथ चलती उल्काओं के प्रकाश में चमक उठते हैं जिसे देखकर संधाराम की प्राचीन दीवारें स्तब्ध-सी छाया बनकर काँप उठती हैं । यवन सैनिक कहीं-कहीं बैठकर एक साथ खा-पी रहे हैं जिन्हें देखकर उनके एक आध साथी भारतीय नाक सिकोड़ रहे हैं । तब कोई यवन सैनिक कहता है—
‘हमारे देश में भेद नहीं होता । हम सब मुसलमान भाई-भाई हैं । कोई ऊँच-नीच नहीं है ।’

भारतीय इसे समझ नहीं पाता । सैनिकों की बर्बरता में उनको एकता एक शक्ति-सी लगती है । तभी आते दिन ने बादलों के वस्त्रों को उजाले के हाथ से एक ओर हटा दिया । नीला आकाश भाँकने लगा । धीरे-धीरे भोर हो गयी । एक प्रकोष्ठ में बहुमूल्य कालीन पर एक यवन बैठा है जिसके चारों ओर अनेक सैनिक खड़े हैं । मदिरा की गंध उस प्रकोष्ठ से निकल-निकलकर बाहर अलिंद में भी फैल रही है ।

यवनराज ने उठते हुए अपने साथ के एक भारतीय क्षत्रिय से कहा—‘क्यों, उस अनिय सुन्दरी का क्या हुआ ? कल रात अंधेरे में वह व्यर्थ ही घायल हो गयी । बच तो जायगी ? बहुत सुन्दर है वह ।’

एक सैनिक यवन ने कहा—‘जी, वह पागल हो गयी है।’

यवनराज हँस पड़ा। उसने कहा—‘हिन्दू स्त्री तो बात-बात पर पागल हो जाती है। किन्तु, उसने मुड़कर क्षत्रिय से कहा—‘मेघराज, तुम स्त्रियों को गेरू पहनाकर साधू बना देते हो? तुम यौवन का रस नहीं लेते?’

हमारे देश में ऐसी स्त्रियाँ आँखों में पलती हैं। अद्भुत है तुम्हारा देश!’

मेघराज ने सिर झुका लिया। सब बाहर आ गये। प्राङ्गण में नन्दिनी के लिये दो यवन सैनिक खड़े थे। उन्होंने यवनराज को प्रणाम किया और जयध्वनि की।

हठात् नन्दिनी बल करके उनसे छूट गयी और रोती हुई सामने ही पड़े एक शव से लिपटकर रोने लगी।

यवनराज ने देखा वह एक भिक्षु का शव था। उसके सुन्दर मुख पर तलवारों के घाव थे। उसने इधर-उधर देखा। नन्दिनी रोते-रोते कहने लगी—‘तुम्हें छोड़कर चली गयी थी देव! तुम्हारा कहा मैंने नहीं माना स्वामी! मुझे क्षमा करो।’

यवनराज ने मुड़कर क्षत्रिय मेघराज से कहा—‘यह स्त्री क्या कह रही है?’

मेघराज ने कहा—‘सरदार! यह स्त्री कुलटा है, कोई वेश्या है अथवा अनाचारिणी है। यह इस संघ का कोई भिक्षु है। इस भिक्षुणी का इससे कुछ अनुचित सम्बन्ध रहा होगा, क्योंकि भिक्षुणी किसी भी पुरुष की पत्नी बनकर नहीं रहती।’

‘ओह!’ यवनराज ठठाकर हँस पड़े। हमारी शबनम से भी सुन्दर है यह! तुम्हारे देश में स्त्री पत्नीत्व भी त्याग देती है। यह सुन्दर युवक सिर मुँड़ाकर क्या करता था यहाँ? भगवान् का भजन? हमारे यहाँ तो ऐसा नहीं होता।’

नन्दिनी एकाएक चिल्ला उठी—‘स्वामी, मैं तुम्हारी ही पत्नी हूँ, मैं अब कहीं नहीं जाऊँगी तुम्हें छोड़कर, मुझे क्षमा करो आनन्द.....’

एक यवन ने प्रवेश करके कहा—‘सरदार, अपार रत्न-राशि इस मन्दिर में मिली है।’

‘अपार!’ यवनराज का मुख विस्फारित हो गया। उसने कहा—‘मेघराज, तुम्हारे देश में मंदिरों के आदमी बड़े लोभी होते हैं। हमारे देश में तो ऐसा नहीं होता। इतने धन का यहाँ ये लोग क्या करते हैं जब खाते भी नहीं, पीते भी नहीं?’

और वह फिर हँस पड़ा। अचानक उसकी दृष्टि फिरी। उसने देखा भिक्षु के शव पर स्त्री निष्प्राण-सी पड़ी थी, जैसे इस आलिगन से उन्हें संसार की कोई भी शक्ति अलग करने में असमर्थ थी। उसके मुँह से केवल इतना निकला—‘तुम्हारा देश तो केवल अद्भुत ही है मेघराज! यहाँ तो स्त्रियाँ बोलते-बोलते मर जाती हैं।’

मेघराज ने फिर सिर झुका लिया। उस समय बाहर जयध्वनि हो रही थी।

×

×

×

होश में आने पर उस ध्वंस और मुद्दों के ढेर में से एक अन्धा घायल वृद्ध आदत के मुताबिक चिल्ला उठा—‘अनुवर्त्तिनी, पानी.....’

किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। वृद्ध ने पहले से भी अधिक ज़ोर से गला सुखाते हुए चीख लगायी—‘अनुवर्त्तिनी ई ई ई.....!’

अंतिम अक्षर को खंडहर की ईंटें भी पुकार उठीं। टूटा ध्वस्त संधाराम चिल्ला उठा, किन्तु फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला।

वृद्ध कौत्सुभ वहीं तड़पने लगा। आस-पास के वातावरण से शब्द का अजस्र प्रवाह हो रहा था—‘अनुवर्त्तिनी ई ई ई ई ई ई.....’ मानों उस ‘ई’ का कहीं भी अन्त नहीं था।

कमीन

सीलनदार कोठरी में सुशील पड़ा-पड़ा सोचता रहा। आज चार वर्षों से उसने घर नहीं देखा, जैसे सारा जीवन एक बंजर हो गया है जिसमें कर्तव्य के संतोष का प्रसार ही ममता की घुटन है, स्नेह की पराजय है। हृदय का सूनापन उसकी दृष्टि में कार्यों के अभाव का लक्षण है। यदि मन का असंभाव्य उन्माद एक सुघर कार्य-कारण शक्ति से बद्ध है तो किसलिए बवंडर थक कर अपना शीश भुकाने की प्रतिक्रिया करे और क्षण-क्षण के इस नश्वर संकोच पर बैठने का प्रयत्न करे जैसे सौभाग्य के भिन्नकते अंधकार में पक्षी चिपककर बैठना चाहते हैं कि वृक्ष की नीरवता में उनका अस्तित्व निस्तब्ध-सा, निश्चल सा डूब जाये, खो जाये...

कितनी विवशता है इस छोटे से जीवन में...पचास रुपये मिलते हैं, महंगाई मिलाकर...

पड़ोस में अनेकानेक घर हैं। उनमें चमार रहते हैं। कहते हैं अपने आँगन को मीना राजपूत। सुशील मुस्कराया—आजकल सबको एक सर्ज है, जैसे मालिक के चले जाने पर नौकर कुछ देर सोफा पर बैठकर सोचता है कि वही मालिक है और भय से इधर-उधर देखता भी है कि कोई देख न ले...

करवट बदली। इन चमारों को उससे कहीं अधिक तनखाह मिलने लगी है इस युद्ध में, फिर भी कमबख्तों को रहने की जरा भी तमीज़ नहीं.....बाहर मजदूरों के घर हैं। वही चमार। उनके घर भी हैं, वही भोंपड़े हैं, क्योंकि इनके अतिरिक्त उनके पास और कोई भेद-कारक चिन्ह नहीं। उनके पुरुषों के मुखों पर युगों की उदासीनता

तह पर तह जमकर अधकार बन गयी है, जैसे चलते-चलते पाँव के तलवे में घट्टे पड़ जाते हैं ।

और फिर एक सिंहावलोकन में स्त्रियों का रूप याद आया । कोई-कोई तो वास्तव में सुन्दरी होती हैं । किन्तु रूप का अर्थ यौन-वासनाओं की अधकचरी तृष्णा की तृप्ति, असंतोष के अतिरिक्त और कुछ नहीं जैसे कच्चा मांस आग पर भूनकर कच्चा पक्का कैसा भी चबा लिया जाय और वह थोड़ी ही देर उबकाई के साथ उलट पड़े...

रविवार है आज । कितना धुंधुकार है । इस कमरे में...

और ये मजदूर समझते हैं कि मैं बाबू हूँ । सुशील हँसा । हाथ रे हिन्दुस्तान ! यहाँ तो साफ कपड़े पहनने मात्र से इंसान ऊँचा समझ लिया जाता है । भीषणता का साम्राज्य है...गंदगी...भूख...और धधकता अज्ञान.....

सुशील का ध्यान टूटा । बाहर कुछ कोलाहल हो रहा था । कुछ लोग शायद आपस में लड़ रहे थे । उनकी आवाज कभी-कभी कोलाहल के ऊपर घहर उठती थी और उस समय सुशील कुछ बहुत ही फोश गालियों को सुनता...इतनी फोश कि उनका फोशपन उनकी सार्थकता को भी पार कर जाता था ।

मन में आया मरने दो उन्हें । कमबख्तों का रोज का यही काम है । जब हाथ में पैरे आये तभी ताड़ी पीना और लड़ना, जुआ खेलना और फिर घर आकर औरतों को मारना, और इसी बीच में, इन लड़ाइयों के बीच में भी वे स्त्रियाँ माँ होने लगती हैं...

किन्तु जब कोलाहल बढ़ता ही गया तब विवश हो उसे बाहर आना ही पड़ा ।

(२)

साँभ के धुँधलके में चारों ओर धूलि उड़ रही थी । बाहर औरतों की भीड़ एकत्र थी । उनकी जीभ ऐसे चल रही थी जैसे उसमें कोई छंद

तोड़ने का व्याघात नहीं है। उस किच-किच से सुशील का मन एक नफरत से भीतर काँप गया जैसे कोई ईंट पर ईंट रगड़ रहा हो और सुनने वाले को लग रहा हो वह ईंट खा रहा हो, उसके मुख में धूलि की किसकिसाहट के अतिरिक्त कुछ न हो.....

सुशील को देखकर बुढ़िया ने आकर रोना प्रारम्भ कर दिया। उसके साथ ही उसके लड़के की बहू थी। बुढ़िया की आँखों में पानी नहीं, पारा है, क्योंकि आँसू गिरने के पहले डबडबा कर छलकता है—जैसे यही उसका आज यौवन के चले जाने पर एकमात्र नारीत्व है जिसे वह इस तरह बूँद-बूँद करके साधारण बातों पर नष्ट नहीं करना चाहती.....

सुशील ने विवृब्ध मन से कहा...“क्या है भगू की माँ ?” कुछ देर वृद्धा रोती रही। उस समय किसी स्त्री का बहुत ही दर्दनाक रोना उठ रहा था। पुरुषों का स्वर सुनाई दे रहा था—हैं हैं, क्या कर रहा है ? छोड़ उसे पाजी, क्या जान से मार कर आज फाँसी पर ही लटकोगा ?

‘रहने दे बे, मेरी बहू है...’

‘अबे भगड़ा तो तेरा भगू से हुआ था...’

फिर एक कोलाहल, जैसे अब आकाश से मूसलधार वर्षा हो रही है जिसमें कोई कितना चिल्लाकर स्वर ऊँचा करना चाहे, सब व्यर्थ है...

उस मौन से सुशील घबरा गया। उसने इधर-उधर देखा। केवल कुछ सहमी हुई स्त्रियाँ खड़ी थीं, जिन पर मौत की-सी दहशत छा रही थी, और वे इस चिन्ता में मग्न थीं कि अब क्या होगा...

सुशील ने एक-एक करके सबकी ओर देखा। बुढ़िया की आँखों में एक दयनीयता झलक उठी, और भगू की बहू ने धीरे से माथे पर अपनी ओढ़नी का पट्टा खींच लिया। सुशील मन ही मन हँसा। कौन से जीवन की लाज है जिसको बचाने की साधु अभी भी बाकी है। जिनका अज्ञान ही जिनकी मूर्खता का एकमात्र न्याय है, जिनकी चुसी

हुई हड्डियों को भी एक मांस की आवश्यकता है, क्यों न उसमें यह संकोच की अंतिम लपट भी अपने आप जलकर खत्म हो जाय ! उन आँखों में एक गर्व था अपने यौवन का; अपमान की झलक थी उसकी असफलता पर, और फिर अभि-परीक्षा की सी दहक से जो उसे घूर रही हैं—जिनमें एक याचना है, एक दयनीयता.....

सुशील ने कहा—क्या हुआ भगू की माँ ?

उस एक स्वर में जैसे संसार की सभ्यता ने सहानुभूति-सूचक स्वर में एक पशु से पूछा था—तू क्या चाहता है ? तेरे आर्त्तनाद के इतने कोलाहल में मन की वेदना को प्रकट करने वाली एक भी ऐसी ध्वनि नहीं हो सकती जो सार्थक हो, जिसे मनुष्य मनुष्य के रूप में पहचान सके ।

भगू की माँ ने रोते-रोते कहा—‘बाबू ?’ स्वर अटक गया । कितना दुःख है जो विद्वोभ के कँटीले तारों की जंजीर को लांघना चाहता है, लेकिन फंस जाता है.....

और सुशील ने बहू की ओर देखकर कहा—क्या बात है बहू, कह न ?

पास में ही कोलाहल बढ़ रहा है । अब भी कहीं कोई किसी स्त्री को मार रहा है, और जो रावण ने भी शत्रु की पत्नी पर करने का प्रयत्न नहीं किया, वही आज शायद एक पति अपनी ही स्त्री के प्रति कर रहा है ।

सुशील के मन में आता है कि जाकर उस मनुष्य की कलाई ककड़ी की तरह तोड़ दे और कहे कि मूर्ख, तू जिसको मार रहा है वह तेरे बच्चों की माँ है.....

किन्तु विचार टूट गया । बुढ़िया ने कहा—बाबू, सारे मस्ता रहे हैं । इनके मुँह में धर दें आग । दो पैसे मिलने लगे हैं तो यह तो नहीं कि भलमनसी से जोड़कर रखें कि बखत-बेवखत काम आयेंगे, बस मिले

कि दारू-शराब, और कुल्ल नहीं। अब उसे देखो कल्ला को, जोड़-जोड़ के कित्ते समान ले लिये और यह हरामी, बस फूँक-फूँक.....

सुशील सुन रहा था। बुढ़िया उँडेले जा रही थी—वह हैं न मुख्तार साहब, रात को अपने घर में जुआ खेलते हैं और सबेरे हारे हुआं से कहते हैं कि दो आने रुपये का रुक्का लिखो, नहीं चुकाओ, हम नहीं जानते.....

बुढ़िया का स्वर काँप उठा। बहू की आँखें एक अज्ञात भय से फैल गयीं। बुढ़िया कहती रही।...बहू के जेवर उतार ले गया। एक यह हँसुली रही है। अब इस पर भी टूटेगा बाबू, तुम धर लो इसे।

सुशील को काठ मार गया है यह भाव। परायी औरत की हँसुली कैसे रख ले वह? औरत जवान है, वह स्वयं कुंवारा है, अर्थात् समाज का दोनों से एक ही सम्बन्ध है...बदनामी। उसके आदमी को मालूम होगा तो? क्यों पड़े वह किसी के भगड़े में? उसी ने हँसुली बनवायी है, ले जाने दो, उसे फिर बनवा देगा.....यह है उसी की। रोटी देगा, रहेगी; न देगा, भाग जायेगी, मारेगा हर कोई.....

और बहू हँसुली पर हाथ रखे डरी सी खड़ी थी जैसे वह भी उसके शरीर का अंग थी। कोलाहल अब भी उठ रहा था। सुशील ने सुना। मन चाहता था भेड़िये की तरह आज भी उन सबका वक्षःस्थल फाड़ कर उनके हृदय का कनुषित पिंड देखे जिसने मनुष्य को पशु बनाने में अपनी सारी सार्थ्य लगा दी है और अपने राजसत्त्व पर गर्व किया है कि हम मानव हैं, हम देवत्व के लक्षण हैं।

युगों तक मनुष्य की बुद्धि छीनकर उसे कोल्हू के बैल की भाँति चलाया गया है और आज वह मनुष्य कह रहा है कि मैं मनुष्य नहीं हूँ, बैल हूँ.....तुम यदि मुझे फिर से मनुष्य बनाना चाहते हो तो निस्संदेह तुम्हारा भी कोई स्वार्थ होगा क्योंकि तुमने चाँदी का सिक्का हमें तब

दिया है जब हमारी स्त्रियों के रूप की काई पर तुम्हारा उन्मत्त चरण फिसला है.....

वह देखता रहा। कोलाहल अब भी उठ रहा था। और उधर वे लोग ताड़ी के नशे में चूर बावले होकर लड़ रहे थे, मन माना फोश बक रहे थे कि एक बार सुशील ने स्त्रियों के बीच में खड़े उन शब्दों को सुन कर लाज से सिर झुका लिया किन्तु वे स्त्रियाँ खड़ी रहीं, जैसे उनके लिये उसमें कोई नवीनता नहीं थी, उनके दैनिक जीवन का कोलाहल यदि हाहाकार ही है तो फिर लाज कैसी क्योंकि सबसे बड़ी लाज जीवन है... मृत्यु ही निर्लज्जता है.....

(३)

दूसरे दिन सुशील के सिर में दर्द था। वह कठोरी में पड़ा-पड़ा सोचता रहा। उसके माथे में धीरे-धीरे चपका चल रहा था जैसे यह भार उसके निरावरण आकाश में अपने आप कुछ उदासी का भारवाही अवकाश बनकर छा गया हो।

कितना एकांत है इस जीवन में। भविष्य की सुख-छलना के ऊपर सारा वर्तमान निकलता जा रहा है, जैसे कोई लोहे को पूरी सहिष्णुता से रेत रहा हो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे.....

सुबह से कुछ खाने को नहीं मिला कोई यह तक पूछने को नहीं कि तुमने भी कुछ खाया है? अच्छे हैं ये चमार ही, कम से कम खाने का तो इंतजाम है न मिले वह दूसरी बात है, जब है तब तो है ही.....

सुशील हँसा। उसमें और उनमें, कपड़ों का भेद है, साहस और निरपराधता का भेद है। एक-सा अनवरत। मजदूर अपने-अपने काम पर चले गये थे। अब सांझ को वे फिर लौट आएँगे। दिन भर वे जो मेहनत कर रहे हैं, दूसरे के लिए तेल निकाल रहे हैं...अच्छे हैं वे बैल जिनका पसीना तेल है...जिनकी चेतना का सबसे उच्च स्वरूप भी प्राकृतिक

ऐयाश मुर्दे

नियम से पशुत्व है, जिनकी गुलामी को रूप भी पेट भर भोजन पा लेने पर संतुष्ट है.....

सुशील ने सुना बाहर फिर सरौते चल रहे थे अर्थात् औरतें फिर चख-चख कर रही थीं। कभी-कभी किसी बुढ़िया के मुँह से कोई गंदी गाली निकल जाती थी। सुशील उस समय मन ही मन एक संकोच से लुब्ध हो जाता था। कैसी हैं ये स्त्रियाँ जो सब कुछ बकने में भी तनिक नहीं भेंपतीं—अपनी ही बहू बेटियों के सामने.....

बाहर कुछ समय कटेगा। यहाँ एक नीरवता का उपहास है। यहाँ भी तो नहीं है, जैसे एक सूखा पेड़ शीघ्र ही कटने के लिए लहलहाते खेत को देख रहा हो.....

हवा का हलका-सा भोंका आया। यह भी जीवन की अव्यवस्थित सी अर्द्ध-चेतना है.....

सुशील बाहर आ गया। नीम के पेड़ की छाया में कुछ घरों की स्त्रियाँ बैठी थीं। सुशील को देखकर दो-एक नवयुवतियों के होठों पर मुस्कान फैल गयी। निःसंकोच सुशील उनके पास पहुँच गया। औरतें आपस में कल की बात की चर्चा कर रही थीं, क्योंकि जो कल हुआ है वही शायद आज फिर हो.....

धन्ना की बहू को चोट आयी है। अपनी जान जब तक बस चला जेवर नहीं उतारने दिया, तब लोगों ने धन्ना को रोका.....बीच बचाव किया...समझाया...बहू...दे दे उसे तङ्ग न कर, तेरा आदमी है.....दे दिया उसने, हरामी ले गया। मुख्तार कुछ कम कमीन है बाबू? तुम तो बाबू हो, पुलिस में रपोट लिखवा दो कि मुख्तार यह सब करता है.....

एक बात नहीं, शब्दों के घबराहट पैदा करने वाले कीड़े चल रहे हैं, सब बुरे हैं, सब मिटने चाहिये, किन्तु डर है मुझे काट न खाएँ, मेरे आराम में बाधा न पड़े, क्योंकि मैं दूर रहना चाहता हूँ।

और सुशील को लगा जैसे इसका मन भीतर ही भीतर चिल्ला

उठा—सुशील तू कायर है, तू चोर को चोरी करते देख मुँह फेर कर खड़ा है, तू समझता है तू चोर नहीं है।

बुद्धि पर आवाज होती है शिक्षा का नन्हा, बौना मटक कर बाहर निकल आता है।

सुशील ने कहा—तुम्हारी गलती है। तुम लोगों में एका नहीं है तुम्हें अपनी ताकत मालूम नहीं।

स्त्रियों में एक उत्सुकता का उदय हुआ। सबने उसकी ओर अचरज से देखा। यह क्या कह रहा है आज बाबू? इसमें हम क्या कर सकती हैं?

सुशील को लगा जैसे बहुत सी पथराई आँखों पर पत्थर रगड़ कर अब वह एक ऐसी चिनगारी निकालेगा जिसकी आग से सारे संसार का अंधेरा जलकर भस्म हो जायगा और फिर इन्सान कहेगा—बताओ, मुझे उनको दिखाओ जिन लोगों ने मेरी इंसानियत को छीन लिया है, मैं उनका नाश करना चाहता हूँ.....

सुशील को लगा आज जीवन के प्रत्येक कोने में क्रांति की आवश्यकता है, आज राजनीति राजाओं का खेल मात्र नहीं वरन् जीवन को जड़ से साफ करना है। उसकी कीमत ही नहीं आँकना, बल्कि उसे अपने मूल्य का स्वयं ज्ञान कराके उसे किसी योग्य बनाना है।

उसने कहा—तुम उन्हें खाना पका-कर खिलाती हो, तुम उनके बच्चों की माँ हो, तुम उनकी माँ हो, क्या तुम्हारा उन पर भी हक नहीं है? क्या तुम उनकी नौकरानी हो?

युवतियों के होठों पर व्यंग की मुसकान खेल गयी, जैसे बेचारा बाबू! यह कह जाने?

वृद्धाओं की आँखें झुर्रियों को प्रकट करके और संकुचित हो गयीं। बालिकाओं के अबोध नयन विस्मय से फैल गये।

सुशील ने कहा—तुम सब एका करके कह दो कि जब तक शराब

पीकर दङ्गा करना नहीं छोड़ोगे तब तक हममें से कोई भी खाना नहीं बनायेगी और जब वे भूखे मरेंगे तब लाचार हो उन्हें तुम्हारी बात माननी पड़ेगी। बोलो, ठीक है ?

सबने एक दूसरी की ओर देखा। अन्त में धीरे से भग्गू की माँ ने कहा—बाबू ! आपका दिल बहुत अच्छा है। आपने जो कही सो तो अशराफ आदमियों की बात है...हम तो कमीन हैं बाबू, कमीन.....

तिक्त हो गया है सुशील का मन, जैसे कोढ़िन पद्मिनी पर अट्टहास कर उठी हो...

और वृद्धा कह रही थी—औरत तो मर्द के पाँव की जूती है बाबू, अभी ब्याह नहीं हुआ, जब हो जायगा तब तुम भी समझ जाओगे। अभी तो बच्चा हो, निरं बच्चा ..

पञ्च परमेश्वर

चन्दा ने दालान में खड़े होकर आवाज देने के लिये मुँह खोला पर एकाएक साहस नहीं हुआ। कोठे के भीतर खाँसने की आवाज आयी। अभी अंधेरा ही था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। गंधे भी भीतर की तरफ टाट बांधकर बनाई हुई छत के नीचे कान खड़े किए हुए बिल्कुल नीरव खड़े थे। खपरैल पर लाल-सी झलक थी, देखकर ही लगता था जैसे वे सब बहुत ठण्डी हो गयी थी, जैसे स्वयं बर्फ हो। गली की दूसरी तरफ मस्जिद में मुल्ला ने अजान की बाँग दी। चन्दा कुछ देर खड़ा रहा, फिर उसने धीरे से कहा—मैया !

बिस्तर में कन्हाई कुलुलाया, अपनी अच्छी वाली आँख को मीँड़ा। उसे क्या मालूम न था ? फिर भी भारी गले से पड़ा-पड़ा बोला—‘कौन है ?’ और कहने में वह स्वयं रुक गया। नहीं जानता तो क्या

राता को दरवाजे खुले छोड़कर सोता ? उसे खूब पता था कि कल सूरज-नारायण चढ़े न चढ़े मगर चन्दा लगी भोर आकर बिसूरेगा ।

दोनों भाई असमंजस में थे । इसी समय चौधरी मुरली की बूढ़ी खौसी सड़क पर सुनाई दी । चन्दा की जान में जान आयी । चौधरी को बहुत सुबह ही उठ जाने की टेव थी । वास्तव में टेव फेव कुछ नहीं । दिन में हुक्का गड़गड़ाने से रात को ठसका सताता था और फिर उल्लू की तरह रात को जाग कर वह सुबह ही बुलबुल की तरह जग जाते और लठिया ठनकाते सड़क से गली, गली से सड़क पर चक्कर मारते रहते ।

इतनी भोर को जो कन्हार का द्वार खुला देखा, और फिर एक आदमी भी, तो पुकार कर कहा—को है रे ?

चन्दा को डूबते में सहारा मिला । लपक कर पैर पकड़ लिये ।

‘क्यों ? रोता क्यों है ?’ चौधरी ने अचकचा कर पूछा, ‘रप्पी कैसी है ?’

‘कहाँ है, चौधरी दादा,’ चन्दा ने रोते-रोते हिचकी लेकर कहा — ‘रात को ही चल बसी ।’

‘और तू ने किसी को बुलाया भी नहीं ?’

चन्दा ने जवाब नहीं दिया । सिसकता रहा । गधे अपनी बेफिक्री से मस्ती के आलम में खड़े रहे । उनकी दृष्टि में आदमी ने ही अपना नाम उन पर थोप कर, उनका असली नाम अपने पर लागू कर लिया था ।

‘ओह ! कहाँ है रे कन्हार ?’ चौधरी पञ्च ने अधिकार से कहा—‘सुना तूने ? अब काहे की दुसमनी ? दुसमन तो चला गया । मट्टी से बैर करता सुहायेगा ?’

कन्हार ने जल्दी-जल्दी धोती पर अपना रुई का पजामा चढ़ाकर रुई का अंगरखा पहना और बिगड़ी आँख पर हाथ धर कर बाहर निकला आया । चौधरी ने फिर कहा—बिरादरी तो तब आयेगी जब

घर का अपना पहले लहास को छुएगा बाबले । चली गयी बेचारी । अब काहे का अलगाव है बेटा ? देख और क्या चाहिये ? तेरी माँ थी न ?'

कन्हाई ने दो पग पीछे हट कर कहा—दादा ! जे क्या कही एक ही ? किसकी माँ थी ? मेरी महतारी सब कुछ थी, छिनाल नहीं थी, समझे ? अब आया है ? देखा ? कैसा लाड़ला है ? नहीं आऊँगा समझे ? बीधों का छोरा हूँ तो नहीं आऊँगा ।

चौधरी ने शांति लाने के लिए कहा—हाँ-हाँ रे कन्हाई, तू तो बिरादरी की नाक बन गया । पञ्च मैं हूँ कि तू ?

कन्हाई दबका । उसने कहा—‘तो मैंने कुछ अगल बात कही हैं दादा ? उसने मेरे खिलाफ क्या नहीं किया ? मैंने हड्डी-हड्डी करके उसके चंदा को ज्वान बना दिया । ताऊ मरे थे तब मेरे बाप की आँख फूट गयी थी जो धरेजा किया तो भाभी से ही और अपनी ब्याहता को छोड़ दिया । रिसा-रिसा के मारा है मेरी माँ को । वह तो मैं कहूँ, मैंने फिर भी उसे अपनी माँ के बरोबर रखा । तुम सब अनजान बन गये ऐसे ! घर छोड़ दिया । अपनी मेहनत के बल पे यह घर नया बनाया है । अपना गधा है । जब सपूती का सुलच्छना बड़ा हुआ तो कैसी आँखें फेर गयी ? वह दिन क्या मैं भूल जाऊँगा ?

चौधरी निरुत्तर हो गये । फिर भी कहा—पर बेटा तेरे बाप की बहू थी, यह तेरे बाप का ही बेटा है, तेरा भइया है, दस आदमी नाम धरेंगे । गधा लाद के बाजार से दूकान के लिए सब्जी लाता है । आज वह न सही; अनजाना करके लगा दे कन्धा, तेरा जस तेरे हाथ है, कोई नहीं छूटता, अपनी-अपनी करनी सब भोगते हैं.....

कन्हाई निरुत्तर हो गया । चंदा ने उसके पैर पकड़ कर पाँवों पर सिर रख दिया । और रोने लगा ।

‘मेरी लाज तो तुम्हारे हाथ है मैया ! पार लगाओ, डुबा दो । घर

तोऽ तुम्हारा, मैं तोऽ तुम्हारा गधा । कान पकड़ के चाहे इधर कर दो चाहे उधर, पर वह तो बेचारी मर गयी•••

और उसकी आँखों का पानी कन्हाई के पैरों पर गर्म-गर्म टपक गया । कन्हाई का हृदय एक बार भीतर ही भीतर घुमड़ आया ।

दोनों ने बगल के घर में घुस कर देखा—रम्पी निर्जीव पड़ी थी । हल्की चादर से उसका शरीर ढँका हुआ था । न उसे टंड लग रही थी, न भूख, न प्यास । कन्हाई का हृदय एक बार रो उठा । इससे क्या बदला लेना ? एक दिन सबका यही हाल होना है, उस दिन न घर है, न बार, बस मिट्टी में मिट्टी है•••••

और वह उसके पैरों पर सिर रखकर रो उठा—अम्मां•••

रम्मी फुक गयी । कन्हाई ने अपने हाथ से आग दी । उसके पेट का जाया न सही, बाप का बड़ा बेटा तो वही था । बिरादरी के लोगों के मुँह से वाह-वाह की आवाज निकल गयी । कारज ऐसा किया कि कुम्हारों में काहे को होता होगा ! स्वयं चंदा को भेजकर फूल गझा में डलवा दिये । पाप कौन नहीं करता ? मगर हम तो उसकी गत सुधार दें । बारह बामन हो गये । और जब कन्हाई लौटकर तेरहवें दिन अपने घर आया तो ऐसा लगा जैसे अब कुछ नहीं रहा । चंदा गधा लेकर मिट्टी डालने गया था । यही आमदनी थी आज कल । कुछ बढ चढ़ कर ग्यारह आने रोज, सो मिट्टी के मोल पैसा आने पर मिट्टी के ही मोल चला जाता । गेहूँ की जगह बाजरा चना सस्ता था । सब वही खाते थे और यही सबसे अधिक सुलभ था । चंदा के पास वास्तव में कुछ नहीं था । रम्पी ने अपना पति मरने पर देवर किया, देवर की पुरानी गिरस्ती तोड़ दी क्योंकि वह चटोरी थी और जलन से सदा उसकी छाती फटती रहती । वह किसी के क्या काम आती ? छोड़ा तो है चंदा ! उसके पास बस दो साठ साठ रुपयों के गधे ही तो हैं ।

पुराना अपना घर गिरवी रखा है और अब शायद छूट भी नहीं सकता। किराये का मकान लेके रह रही थी छल्लो !

कन्हाई का हृदय विज्ञोभ से भर गया। भीतर कोठे में घुसकर एक आँख से हूँदकर आँखों पर हरा चश्मा लगा लिया, ताकि आँखों की खोट बाजार वाले न परख लें। पूछने पर कन्हाई कहता—‘दुख रही हैं, दुख,’ और जवानों से कहता—‘स्कूल की लॉडियाँ देखने को पर्दा डाला है, पर्दा। सब सुनते और हँसते। उसके बारे में कई कहानियाँ थीं कि वह एक प्रोफेसर के यहाँ नौकर था। जिसकी बीबी जवान थी और काम से जी चुराती थी। उसने कन्हाई से खाना पकाने को कहा तो कन्हाई ने अपनी नीची जाति का फायदा उठाने को धर्म की दुहाई दी। बीबी अंगरेजी पढ़ी लिखी थी। उसने एक नहीं मानी। तब वह नोकरी छोड़ आया। उसके बाद भटक-भटका कर सब्जी की दूकान की और वह चल निकली कि कन्हाई शौकिया ही एक दो गधे रखने लगा, बस्ती में लादने के लिए किराये पर चलाने लगा।

कन्हाई ऊबकर दूकान पर जा बैठा। दिन भर उसका जी नहीं लगा। आज उसे फिर से घर भरने की याद आने लगी। चंदा बाईस वर्ष का हो गया। अचानक ही उसे उस पर दया-भाव उत्पन्न होता हुआ दिखाई दिया। अब तो सचमुच बीच की फाँस हट गई थी। कन्हाई ने अपने पैसे से कारज किया था। हृदय की उद्वेलित अवस्था भीतर के संतोष पर तैर उठी। कन्हाई दूकान बंद करके घर लौट आया।

चंदा के ब्याह के लिये कन्हाई ने आकाश-पाताल एक कर दिया। दिल बल्लियों उछलता था। चौधरी पंच मुरली के घर जाकर जब उसने किस्सा सुनाया तो पंच उछल-उछल पड़े, खाँसी का ढेर लगा दिया। उनकी बहू ने बूढ़ी पलकें उठाकर देखा और गीत गाने के लिए तैयारी करने का वचन दे दिया ! आज जैसे घर भर में हर एक वस्तु में आनंद ही आनंद था। चंदा का घर साफ हो गया। एक ओर भटके

सजाकर रख दिये गये। अब चंदा के बच्चे होंगे, वे दिवाली पर दिये बेचेंगे, बड़े होंगे तो चंदा मिट्टी लादने का काम छोड़कर चाक सम्भालेगा और फिर हर फिरकन पर झटका खाकर कुल्हड़ पर कुल्हड़ उतर आएगा। चौधरी के पीछे जो बाड़ा है उसी में भट्ट लग जाएगा।.....

चंदा मस्त होकर गा रहा था। फागुन का सुलगता मास था। बरात बाहर गली में बैठकर जीम रही थी। भीतर औरतें गालियाँ गा रही थीं—

मेरौ गरमी कौ मारौ खसम देखिकै रह रह पलटा खाय....

नैकु लँहगा नीचो करलै....

कन्हाई ने रङ्गीन फेंटा बाँधा था। आज उसके पगों में स्फूर्ति थी दौड़ दौड़ कर इन्तजाम कर रहा था। चारों ओर कोलाहल पर प्रकाश की धुंधली किरनें तैर रही थीं। बरातियों के खच्चर जिन पर वे चढ़ कर आये थे एक ओर मुखों से चुपचाप खड़े थे, जैसे उन्हें मनुष्य की इस उन्मदिष्णु तृष्णा से कोई मतलब न था।

और इसी तरह एक दिन बहू ने आकर धूँधट की दो तहों में से देखते हुए कन्हाई के पैर छुए। चंदा की गिरस्ती बस गयी। और कन्हाई बगल में अपने घर में लौट गया।

चंदा की गाड़ी जब चलने से इनकार करने लगी तभी उसने घर से बाहर कदम रखा। पड़ोस की औरतें लुगाई के इस गुलाम को देख कर कांनाफूसी करतीं, राह चलते इशारे करके हँसतीं और जब मिलतीं तो यही चर्चा चलती। चंदा फूलों के सामने पराजित हो गया था। फूलों को देख कुम्हरिया कोई कह दे तो उसे आँखों में काजर लगाने की ज़रूरत है। वह तो पूरी जाटिनी है। ज्वानी का किला है, लचकती जीम है, फोरन तर हो जाये। चंदा की क्या भिसात? ऐसा बस्ती में बहुत कम हुआ। दिन में चंदा और फूलो जोर जोर से बोलते हैं, ठहाके और किलकारियाँ को सुनकर पड़ोस के लोग दाँतों तले उँगुली

दबाते हैं। कुन्जो जो प्रायः तीन ब्याहता छोकरियों की मैया है (और तीनों लड़कियाँ गालियाँ गाने में उसका लोहा मानती हैं), वह तक चौंक जाती है कि सरम हया का तो नामों निसान ही उठ गया।

इधर चंदा सुबह जाता, सरे सांभ लौटता तो थका मांदा और फूलो मुँह फुलाकर बैठ जाती। पति पत्नी में अक्सर पैसों के पीछे झगड़ा हो जाता। चंदा कहता—तो मैं राजा नहीं हूँ समझी? तू तो पाँय पसार कर बैठ और मैं दर दर मारा मारा फिरूँ?

कहते कहते बीड़ी सुलगा लेता। फूलो कभी-कभी रो देती। कहती—तो तुम मुझे ब्याह कर ही क्यों लाये थे? जमाने की औरतों के तन पर बस्तर हैं, गहने हैं, यहाँ खाने के लाले हैं.....

चंदा काट कर कहता—ओह हो। रानी बहू। बस्ती में सब ही ऐसे हैं। तू ही तो एक नहीं है? मैया की तरह सब ही तो नहीं। उनका पैसा धेली का हिसाब तो मिट्टी में गड़ता है, यहाँ पेट में गचकती है मेरी कमाई राड़!

फूलो कह उठती—चलो रहने दो। भाँजी भाँग के परबीन गाहक तुम ही तो हो। जग के नाम धरे, अपना भी देखा? ब्याह तो मुफ्त हुआ था, नहीं तो तुम्हें कौन देता छोरी? सैत का चंदन, लाला तू लगा ले, और घर वालों के लगा दे।

चंदा विलुब्ध होकर बोला—तो जा बैठ मैया के घर ही। रोकता हूँ। जमाने के मरद पड़े हैं। चली जा जहाँ जाना हो।

फूलो लजाकर कहती—अरे धीरे बोलो, धीरे, तुम्हें तो हया-सरम कुछ भी नहीं। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा?

चन्दा हँस देता। और रोज-रोज की बात या तो रोने में समाप्त होती या हँसने में और दोनों काफ़ी देर तक एक दूसरे से बात नहीं करते लेकिन बारह बजे रात को अपने आप फिर दोस्ती हो जाती। चन्दा द्विविधा में पड़ा रहा। किन्तु कन्हाई से एक भी बात नहीं कही।

मन ही मन उसके वैभव को देख कर ईर्ष्या करता । कन्हाई ने एक और गधा खरीद लिया ।

उस दिन जब वह सुबह चन्दा को घर पर समझ कर खबर देने आया, चन्दा तो था नहीं, आँगन के कोने में पसीने से लथपथ अस्त-व्यस्त कपड़ों में प्रायः खुली फूलो नाज पीस रही थी । कन्हाई ने देखा और देखता रह गया । फूलो ने मुड़ कर देखा और अपना घूँघट काढ़ लिया । वक्षस्थल फिर भी जल्दी में अच्छी तरह नहीं ढँक सकी ।

कन्हाई पौरी में आ गया । और फिर पूछ कर लौट आया । चन्दा ने गधा खरीदने की बात सुनी और अपनी परवशता के अवरोध में फूलो से फिर लड़ बैठा । फूलो देर तक रोती रही ।

प्रायः एक सप्ताह बीत गया । चन्दा का मकानदार उस दिन किराया वसूल करने आया था । चन्दा ने उसे लाकर आँगन में खाट पर बिठाकर उसकी खुशामद में काफी समय लगा दिया । फूलो कुछ देर प्रतीक्षा करती रही । फिर ऊब कर बाहर सड़क के नल से डोल भर कर कन्हाई के घर में घुस गयी । मातूम ही था कि कन्हाई उस समय दूकान पर रहता है घर पर नहीं ।

गरीबों के घर में गुसलखाने नहीं रहते । ऊपर छत पर नहाने से बाबू लोगों के लड़के छिप कर अपने ऊँचे-ऊँचे घरों से देख लेते थे, अतः वह आँगन के एक कोने में बैठ कर नहाने लगी । जूँए तो फिर भी बीन लेगी । जब तक जेठ बाहर हैं तब तक जल्दी-जल्दी नहा ले । इसी समय न जाने कहाँ से कन्हाई आ घुसा । देखा और आँखों के सामने से बिजली कौंध गयी । फूलो घुटनों में सिर छिपा कर बैठ गयी । जब वह कपड़े पहन कर निकली कन्हाई बाहर पौरी में प्रतीक्षा कर रहा था । फूलो ने देखा और बरबस हो उसके होठों पर एक तरल मुस्कराहट फैल गयी । पौरी में उजाला अविक न था, तिस पर कन्हाई की आँखों

पर चश्मा चढ़ा हुआ था। वह थोड़ा ही देख सका किन्तु पुराना आदमी था। समझ काफ़ी दूर ले गयी। कहा—बहू! चन्दा कहाँ है?

उसके स्वर में बड़प्पन था, अधिकार था; डरने का कोई कारण शेष नहीं रहा। उसने सिर झुका कर घूँघट खींच लिया और पाँव के अँगूठे से भूमि कुरेदते हुए कहा—घर बैठे हैं।

कन्हाई ने फिर कहा—तो ले। लिए जा। बना लेना।

दो ककड़ी भीतर से लाकर दे दी हाथ में। फूलो ने घूँघट पकड़ कर उठाने वाली उँगलियों के बीच से देखा और मुस्कराती हुई ककड़ियों को डोल में रख कर चली गयी।

कन्हाई कुछ सोचता सा खड़ा रहा। चन्दा ने देखा और पूछा—यह कहाँ से ले आयी?

कन्हाई ने भी अपने आँगन से वह सन्देह भरा स्वर सुना। वह साँस रोक कर प्रतीक्षा में खड़ा रहा, देखें क्या कहती है? फूलो ने तिनक कर कहा—परसों दो आने दिये थे? तुम्हारी तरह मैं क्या चाट उड़ाती हूँ? दारू पीती हूँ? बच रहे थे सो कभी कभाद खाने को जी चाह ही आता है। सो ही ले आई।

‘कहाँ? भैया की दूकान से?’ चन्दा ने फिर उपेक्षा से पूछा।

‘हाँ! नहीं तो?’ फूलो ने धीरे से उत्तर दिया।

‘राम राम’ चन्दा का स्वर सुनाई दिया। ‘भइया हैं ये? अकेले का खरच ही क्या है? इसलिए जोड़-जोड़ कर रखते हैं? कौन है इनका? न आगे हंसने को, न पीछे रोने को। दो ककड़ी तक नहीं दे सके जो फूटी आँख से देख कर दाम ले लिये?’

फूलो ने उत्तर नहीं दिया। कुछ बुरबुराई अवश्य जिसे कन्हाई नहीं सुन सका। उसके दाँतों ने क्रोध से भीतर पड़ी जीभ को काट लिया। कैसी है यह दुनियाँ? मतलब के साथी हैं सब। इनका पेट तो नरक की

आग है। बराबर डाले जाओ कभी नहीं बुझेगी। हाथ फैलाना सीखे हैं। कभी हाथ उल्टा करना नहीं आया।

फिर मन एक अजीब उलझन में पड़ गया। व्याह हुए अभी तीन महीने भी नहीं हुए, बहू ने यह क्या रंग कर दिये। ठीक ही तो है। भूखा मारेगा तो क्यों मरेगी सो? उसके तन बदन में जोस है तो दस जगह खायेगी, ऐसी कौन बात है लाला में जो सती हो जाये। जैसे पैरा, वैसा धरेजना। बैयर तो राखे से रहेगी।

एक कुटिलता उसके होठों पर झटका खा गयी।

बरसात की ऊदी घटाओं ने आकाश घेर लिया। आँगन की कीच से पाँव बचाता हुआ कन्हाई भीतर आकर बैठ गया। आज रोटी बनाने का मन नहीं कर रहा था। उठ कर दिया जला दिया और फिर चुपचाप उसे देखता रहा। दिया भी अपनी एक आँख से ही चारों ओर के अँवकार को देख कर काँप रहा था जैसे बार-बार उसकी पलकें झपक जाती हों। बाहर अँधेरा छा चुका था। दूर पर सड़क भी नीरव थी। कीचड़ के कारण बहुत कम लोग इधर से उधर आ जा रहे थे।

एकाएक दालान में खड़-खड़ की कुछ आवाज हुई। कन्हाई ने शंका से पुकार कर कहा—को है रे?

एक मर्द यज्ञ कुत्ता लकड़ियों के पीछे से निकल कर चला गया। कन्हाई भँप गया। उठ कर बाहर चला। निन्हू हलवाई की दूकान पर जाकर दूध मिया और लौट आया। अब कौन खाने के पीछे हाय हाय करता? अपना क्या है? जो खा लिया, सो ही ठीक है। गिरस्ती के चक्कर हैं।

कन्हाई बिस्तर पर लेट गया। कुछ ही देर बाद उसकी आँध कितनी के खिलखिला कर हँसने की आवाज से टूट गई। इस व्याघात से उसका मन असंतोष से भर गया। निश्चय ही फूलो ही हँसी थी। और फिर उसने देखा, वह रात थी, घटाओं वाली रात, सनसनाती, आकाश से

पृथ्वी तक फन फुफकारती रह-रहकर लरजती । आँखों के सामने अप्रस्तुत का चित्र आया । चंदा ! फूलो ! रात ! बिस्तर और.....

कन्हाई पशु की तरह एक बार आर्त स्वर से कराह उठा । बगल के घर की ध्वनियों ने उसे बेचैन कर दिया । अभी कुछ ही देर पहले पड़ोस की औरतों ने गा कर बंद किया था—

रंडुआ तो रोवै आधी राति—

सुपने में देखी कामिनी.....

अपमान से कन्हाई का पुरुषत्व क्षण भर को विषधर साँप की तरह बदला लेने की स्पर्धा से भर गया । क्यों है वह आज ऐसा कि बिरादरी में लोग उसके पास पैसा रहने पर भी उसकी इज्जत नहीं करते ? सब उसे देख कर हँसते हैं । और यह चंदा ! जो कुल दस बारह आने लाता है, उसी में गिरस्ती चलाता है, उसको न्यौता भी है, बुलावा भी है, उसके गीत भी हैं...

क्योंकि वह बिजार नहीं है । उसके घर है, उसकी बात है, एक गिरस्त की बात । जिसमें दुनियादारी की समझ है । उसका कोई था ही नहीं जो उसका व्याह करता । जैसे वह तो आदमी ही न था । तभी भी सब अपने-अपने में लगे थे, आज भी वही । कन्हाई व्याकुल-सा बिस्तर पर बैठ गया । आकाश में बादल गरज रहे थे । अभी उसकी आयु ही क्या थी ? पैंतीसवाँ 'ही तो था । तब शहर में प्लेग फैला था, कन्हाई घुटनों चलता था । आज वह अकेला रह गया है । जैसे उसका कहीं कोई नहीं । उसके द्वार पर न सौना सरबन कुमार है न आँगन कोई लिपा पुता ही । खुद ही जब ऊब जाता है सोचता है घर साफ़ करे, किंतु वह औरत नहीं है । लुगाई का एक काम करते-करते ही आँखें फूट चलीं । चूल्हा फूँकना लोग का काम नहीं ।

क्या नहीं किया उसने चंदा के लिए ? क्या था उसके घर ? आज

तो लाला छैला बन गये हैं ? कैसी माँग पट्टी काढ़ के फेंटा बाँधना आ गया है । बेटा के पास अघेली भी नहीं । बड़ा सतूना बाँधा है ।

उपेक्षा से उसके होंठ टेढ़े हो गये । कन्हारि को याद आया । उसके पास पैसा है । वह भी ब्याह करेगा । चंदा तो उसे लूटे जा रहा है । उसके गधों की लीद तक उसकी अपनी नहीं । क्या करे वह उसका ? आती है वह हरम्पा फूलो और ले जाती है बटोर कर । लेकिन कौन धन जमा कर लेगी ? उसके चंदा की रोजी ही क्या है ? वह तो इज्जतदार है । परसों उसने बिन्नू की जमानत दी है । दूकान है दूकान । कैसी लड़ती है चंदा से दिन भर और रात को.....

कन्हारि का ध्यान फूलो पर केन्द्रित हो गया । कांसे के हैं सब । बोरला तो, कड़े तो, खँगवारी तक । वह चाँदी के मँदवा सकता है । फिर उसे वह दृश्य याद आया कि कैसे वह भीतर बिना खांसे घुस रहा था चंदा के घर में और फूलो बैठी चक्की पीस रही थी । यौवन का वह गदराया स्वरूप याद आते ही कन्हारि हार कर लेट गया । किंतु वह क्यों अकेला रहे ? चंदा को ही ऐसे सुख से रहने का ऐसा क्या हक है ? जन्म हुआ तब से उसे कभी सुख चैन नहीं मिला । वह दूसरों के लिए कर करके मरता गया और लोग बाग अपना-अपना घर भरते गये । किसी ने यह भी पूछा कि भइया कन्हारि ! तेरे भी कुछ सुख-दुख हैं ? कोई नहीं । सब अपने-अपने मतलब के ।

कन्हारि का चंदा के प्रति विद्वेष सुखर हो गया । अनजाने ही विरोध जाग उठा । कल उसके बच्चे होंगे, तो क्या मेरा नाम चलेगा ? बूढ़ा हो जाऊंगा तो खाट की अजमान तक कसने कोई नहीं आयेगा । अपने फिर भी अपने हैं, पराया तो पराया ही रहेगा...

बादल आपस में टकरा गये । घोर वर्षा होने लगी । कन्हारि तड़पता सा करवटें बदलता रहा । सामने अंधकार में फूलो आकर खड़ी हो गई । पुरानी घृणा ने फिर आघात किया । वह स्वयं ऐसी है

नागिन । जेठ से आँख भिला के बात करना क्या खेल है ? कैसी आती है बात बात पर बड़ी रुठल्लो बाप के घर में उसके कुछ है नहीं, नहीं तो पीहर भाग-भाग जाती । बहू रखना भी आसान काम नहीं है । कहीं गधे ढो के आराम नही किये जाते । मैं ऐसे कब तक दोनों के समझौते करता फिर्लूँ । चंदा भी कोई आदमी में आदमी है ?

फिर वह मुस्करा उठा ।

कौन नहीं जानता चंदा लुगपिटा है । लुगार्ई की ठसक देखो, मालक तो गधा है । वह चमक चौदिस वाली, डबल बचा नहीं कि फौरन खोम्चावाला बुलाया और चाट उड़ा गयी ।

मुझे क्या मालूम नहीं कि वह चंदा से बचा-बचा के खाती है, चोरी करती है ।

फिर वही चञ्चल आँखें आँधरे में चमक उठीं । कन्हार्ई के सीने पर किसी ने कटारों की जोड़ी भोंक दी । आस्मान में जोर से बिजली कड़क उठी । अरे काम तो कांकर माटी के खाने वालों को सताता है, फिर दूध मलाई वालों की तो बात ही और है । चंदा वेटा का गरूर तो देखो ! अरे तुझे ही देखूँगा । तेरी मैया ने मेरा घर तवाह किया था ।

कही दूर बिजली बड़ी जोर से कड़क कर गिरी । कन्हार्ई जागता रहा ।

भोर हो गयी लेकिन आकाश में बादल छाये रहे । एक सन्नाटा समस्त बस्ती में समान रूप से घहर रहा था । कभी-कभी सड़क पर भूँकते कुत्तों के शोर से वह हल्की मगर घनी तह टूट जाती थी और जैसे-जैसे स्वर पीछे खिचने लगते थे वही निस्तब्धता अपना दबाव डालने लगती थी । हवा ठण्डी थी हल्की-हल्की बूँदावादी हो रही थी । समय काफी हो गया था । दफ्तरों और नौकरियों पर जानेवाले सवेरे ही आँधरे में से ही अपनी तकदीर को कोसते जा चुके थे । सड़क पर भी गाँवों की-सी हल्की तन्त्रा छा रही थी । गली में चारों तरफ कीच ही कीच

हो गयी थी। कन्हवाई की आँख खुल गयी। उसने मुना आँगन में कोई औरत चल रही थी। बिछिया की हल्की आवाज उसके कानों में उतर कर दिल में समा गयी। वह एक दम उठ बैठा। बाहर निकल कर देखा फूलो चुपचाप उसके गंधों की लीद जमा कर रही थी। उसको देख कर उसके शरीर में नशा सा फैल गया। पास जाकर कहा—यह चोरी कर रही है बहू ?

फूलों ने घूँघट नहीं खींचा। मुँह उठा दिया। गेहुँए रङ्ग में दो मांसल आँखें थीं जिनमें से रात का खुमार अभी भी बिल्कुल मिटा नहीं था। देखा, और धीरे से बोली—चोरी कहे की जेठजी। वे तो अधेरे ही लदाई लिए गधा लेकर चले गये। अब बरसात भी तो लग गयी है। जो हाथ लगे उसी को बटोर लूँ। कंड़े बना लूँगी, कुछ तो काम निकलेगा ही।

कन्हवाई प्रसन्न हुआ किन्तु प्रकट नहीं होने दी उसने वह चंचलता। निरातुर स्वर से कहा—क्यों ? चंदा गिरस्ती नहो चला पाता ?

‘अपना-अपना भाग है जेठजी। इसमें कोई क्या करे ? मरद जिसका जोग होगा लुगाई उसकी पाँय पै पाँय धरके बैठेगी।’

‘तुझे बड़ा दुःख है बहू !’ यह प्रश्न न होकर एक वक्तव्य के रूप में इतनी निश्चयात्मक ध्वनि से कन्हवाई के मुख से निकला जैसे उसे स्वयं इस पर पूरा विश्वास हो और वह अपनी बात को अब पीछे नहीं लेगा। फूलो की आँखों में पानी भर आया। उसने मुँह फेर कर आँखें पोंछ लीं। कन्हवाई ने उससे कहा—जो चाहे माग लिया कर मुझसे। लाज न करियो। अपना ही घर समझ। चंदा तो निखटू है, निरा बुद्धू ; समझी ? तेरा ही है सब कुछ, खा, पी, मेरा और कौन है ?

‘ब्याह क्यों नहीं कर लेते ? फूलो ने टोंक कर पूछा।

‘ब्याह ?’ कन्हवाई ने ऊपर देखकर कहा—ब्याह करके क्या होगा मेरे तो परमात्मा ने सब दिया। तू फिकर न कर। मेरे रहते कोई तेरा

बाल भी बाँका नहीं कर सकता । यहीं रह तो भी डर नहीं । कन्हाई का नाम बिरादरी में एक है । तेरे लिए उसका सब कुछ हाजिर है ।

फूलों ने आँख टेढ़ी करके कहा—बिरादरी क्या कहेगी ? जात भाई क्या कहेंगे ? मेरा बाप क्या कहेगा ? और तुम्हारे भैया की कौन सुनेगा ? जैसे फूलों ने सात पेड़ एक ही बार ही बाण से बेधने की कड़ी शर्त सामने उपस्थित कर दी थी ।

कन्हाई ने निडर होकर कहा—बिरादरी कुछ नहीं कर सकती । हुक्का पानी बंद करेंगे तो जात भाई देखेंगे कि कन्हाई बीड़ी सिगरेट पियेगा । तेरे बाप को क्या मतलब ? वह तो एक बार पैर पूज चुका । और चंदा की हैसियत ही क्या कि मेरे सामने खड़ा हो ? तुझमें हिम्मत होनी चाहिये ।

फूलों ने अविश्वास से पूछा —दगा तो नहीं दोगे ? मैं कहीं की भी नहीं रहूँगी ?

कन्हाई ने हाथ पकड़कर कहा—सौगंध है गङ्गाजली की । परजा-पती का बेटा हूँ तो धोखा नहीं दूँगा । आज से तू मेरी है । यह घर अब तेरा है । उस भिलारी से तेरा कोई नाता नहीं रहा । रह, हुक्मत कर । मैं चंदा नहीं हूँ जो मिट्टी डालते में बात बात पर बाबू लोगों के जूते खाऊँ और हँस के चुप रह जाऊँ । लौट के तो नहीं भागेगी ?

‘सौगंध है, मेरे एक बालिक न हो जो तुम्हें छोड़कर जाऊँ ।’

कन्हाई ने आनन्द के आवेश में उसका हाथ जोर से दाब दिया और कोठे में घुसकर द्वार बंद कर लिया । बूँदें फिर पड़ने लगी थीं । आसमान साफ होने का नाम ही न लेता था जैसे पृथ्वी चारों ओर से घनी उसासों पर उसासों छोड़ रही थी ।

बिजली की तरह बात बस्ती के वातावरण पर कौंध गयी । चंदा ने जब लौटकर घर खाली देखा और देखा कि चूल्हा बिल्कुल ठण्डा पड़ा है तब उसका माथा ठनका । सोचा शायद पीहर चली गयी है ।

बिना किसी से कहे अपनी सुसराल चल पड़ा। दो दिन बाद जब वहाँ से लौटा तो पग भारी थे, हृदय में घृणा और क्रोध की भीषण आग लग रही थी। इधर कुंजो ने आते ही खबर दी—लाला ! कहाँ चले गये थे रुठकर ? बहू बिचारी किसके जिम्मे छोड़ गये थे ? लाचार कन्हाई ने दयाकी और बिचारी के दो टूक खाने का तो सिलसिला लगा !

चंदा के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गयी। सीधे जाकर कन्हाई के आँगन में जा बैठा। फूलो ने भीतर से देखकर कहा—क्यों आये हो ?

‘क्यों आया हूँ ?’ चंदा ने तड़प कर कहा—हरामजादी ! यहाँ आ गयी तू और मैं तेरे पीछे जहान ढूँढ़ता फिरा ?

कन्हाई घर पर था नहीं। दूकान गया था, फूलो ने भीतर से ही कहा—फिर आना, जब वे आ जायें, और नहीं लोग कहेंगे दिन दहाड़े पराये मरद घर में बैठे हैं।

चंदा के मुँह की आवाज मुँह में ही रह गई। क्षण-भर वह वज्रा-हत सा किकर्तव्यविमूढ़ कुछ भी नहीं समझ सका। फिर स्वस्थ होकर कहा—अब चल, यहाँ क्या कर रही है ? रोटी सेंक दे।

फूलो निर्लज्जता से हँसी, कहा—अब मैं तुम्हारी नहीं हूँ, समझे ? जब तुम्हारे भैया लौट आयें तो उनसे बात करना।

चंदा नहीं उठा। कन्हाई के घुसते ही फिर लड़ाई शुरू हो गयी। जब जूता पैजार तक हो गयी तब और कोई चारा न समझकर फूलो घूँघट काढ़ के दोनों के बीच में आकर खड़ी हो गयी। उस समय काफी शोर-गुल सुनकर कितने ही बस्ती के बड़े-छोटे एकत्रित हो गये। बच्चों ने व्यर्थ ही युद्ध का वातावरण लाने को खूब हल्ला किया। कन्हाई और चंदा दोनों छूट-छूटकर एक दूसरे पर झपटते थे। चंदा जवान था इसी से लोग भय से उसे पकड़ लेते थे और स्वाभाविक ही था उसका अधिक क्रोधित होना। इसी बीच में कन्हाई दो एक मार जाता था। इस बीच-बचाव की हरकत में चंदा काफी पिट गया, क्योंकि एक चोट

भी दम के बीच में बीस चोटों के बराबर है। अपमान में विह्वल होकर चंदा रोने लगा। आँसू देखकर यद्यपि लोगों के हृदय में दया-भाव उत्पन्न हुआ किन्तु स्त्रियों ने ठिठोली कर दी। कैसा बालिक है जो जार-जार रो रहा है ?

चंदा लोट आकर बड़ी देर तक घर पर रोता रहा। सब जानते थे। किसी ने कन्हाई से कुल्ल नहीं कहा। क्या सब की आँखें फूट गयी है ? बिरादरी के कान फूट गये हैं ? उठा और चौधरी पञ्च मुरली के घर की चौखट पर जा बैठा। चौधरी कही से सफेदी करके लौटे थे। हाथ पैरों और गालों पर सफेद-सफेद छीटे दिखाई दे रहे थे। मुन तो चुके ही थे। फिर भी कहा—कह चंदा कैसे आया है ?

चंदा का गला रुँध गया। लाज ने जैसे उँगलियाँ गड़ा दीं। कैसे कहे कि उसके जीते-जागते लुगाई दूसरे के जा बैठी ? वह मरद ही क्या जिसमें इतना भी जोर नहीं कि औरत उसके कहने पर चले ? मरद तो वह कि निगाहों पर बैयर के पाँव उठें। पलकें थम जायें तो उठा कदम थम जाये। किन्तु अवरोध अत्रिक नहीं टिका। दौड़कर चौधरी के पाँव पकड़ लिये। चौधरी ने मंदग्ध दृष्टि से देखकर गम्भीरता से पीढ़े पर बैठते हुए हुक्का सम्भाला और पूछा—तो कुल्ल कहेगा भी कि रोये ही जायेगा ? क्या आफत टूट पड़ी ऐसी ?

चंदा ने कहा—दादा, नाक कट गयी। इजत धूल में मिल गयी।

चौधरी ने विस्मय से कहा—अरे ! मो कैसे ?

‘बहू तो भैया के जा बैठी।’

चौधरी को भटका लगा। पूछा—‘सच ? यह कैसे ?’

‘क्या बताऊँ ? गरीब आदमी हूँ। सुबह ही निकल जाता हूँ। संभा को आता हूँ। दिन भर वह घर में रहती है, भैया रहते हैं, फुसला लिया बिचारी को। मिठाई बिठाई खिलाते रहे। अब, दादा, गिरस्ती संभालने वाले का ही हाथ तंग होता है। अकेले बिजार तो सड़क पर ही

खाने को पा जाते हैं। सो चटाने को पैसे की क्या कमी ? गरीबी तो तब है जब रोज का बोझ है ?

चौधरी ने मुना। सिर हिलाया। कहा कुछ नहीं। चंदा ने फिर कहा—दादा, पंच परमेश्वर के रहते प्रजापतियों में ये अधरम होगा ?

‘पञ्चायत बुलायेगा ?’ चौधरी ने शंका से पूछा। ‘बड़ा खरचा होगा और हारने पर दण्ड भुगतान करनी पड़ेगी।’

‘हालूंगा कैसे चौधरी ? मैं क्या गलत कह रहा हूँ ? मेरी लुगई है, ब्याहता है, मैं तो उल्टे रुपये लूँगा। मेरे जीते जी दूसरे के पास जा बैठी है। और छोटे की बड़े भाई के घर बैठने की कोई रीति नहीं बड़े की छोटे के यहाँ बैठने की तो रीति भी है। कोई दिल्लगी है ?’ चंदा ने सिर उठा कर कहा। चौधरी ने फिर भी उत्तर नहीं दिया। उन्होंने गम्भीरता से कहा—‘तेरी मर्जी।’

चंदा उठ चला। राह में याद आया। खरचे को पैसा कहाँ है। दो महीने का तो घर का ही किराया चड़ा हुआ है। अब तक तो कैसे भी खुशामद से काम चल गया, लेकिन अब के कैसे भी मकानदार राजी नहीं होगा। कहेगा दिल्लगी हो गयी। खैर, तब ब्याह की बात थी, धेली-पैसे की बात, हाथ रहा न रहा, अब उसके पास तो कुछ था नहीं। वही मजूरी के दस बारह आने आये जो, सो उन्हीं में चार आने खायेगा बाकी बचायेगा, लेकिन उससे भी कितने दिन काम चलेगा ? ऐसा क्या बच जायेगा ? फिर विचार आया अभी रुपया लगा दूँगा। एक गधा बेच दूँ। पञ्चायत भी हो जावेगी। किराया भी चुक जायगा और फिर तो कन्हाई को रुपये भरने ही पड़ेंगे। फिर फूलो भी नहीं रहेगी। अपने मस्ती का खरच चलेगा। और जो फूलो लौटी तो कन्हाई दण्ड भुगतान देगा और अब के फूलो से भी नौकरी करवा लूँगा। तब घर ठीक से चत्त पड़ेगा। अबके तो हरामजाशी को जूते की नौक के

नीचे रखूंगा, ऐसा कि याद करे। मैंने ही दुलार कर करके बिगाड़ दिया उसे।

उधर कुञ्जी और अनेक स्त्रियों में ठिठोली हो रही थी। लजमन्ती ने कहा—ऐ भैना, एक आँख का कर बैठी। दो आँखों से ऐसी क्या दुश्मनी निकली ?

‘कलदार की ठसक है बेटी, कलदार की’, चम्पी ने कहा और हाथ मटकाये। कुञ्जी अपने ग्यारवें बच्चे को बैठी दूध पिला रही थी जो अपने सबसे बड़े भाई से लगभग सत्ताईस वर्ष छोटा था। बैठे ही बैठे मुस्कराई और गा उठी—

जैसे देवरिया मलूक तैसे होते बालमाउ—हँसी-दिल्लगी के इस व्यापार में एक कौतूहल था, एक ईर्ष्या की अभिव्यञ्जना थी। सब जानते थे फूलो बदमाश थी, लेकिन चंदा के गरीब होने के कारण किसी बात पर पक्का निर्णय नहीं ठहरता था।

शाम हो चुकी थी। अँधेरा गहरा हो गया था। बस्ती अँधेरे में डूब गयी थी। किसी-किसी के ओसारे में दिया जल रहा था। औरत और मरद आँगनों में बैठे बात कर रहे थे, हुक्का पी रहे थे। औरतें रोटी बना चुकी थीं। मरद खा चुके थे। अब रात हो गयी। दुनिया की रोशनी सूरज है। वही चला गया तो फिर रात से होड़ किसलिए ? कैसे हुआ यह ? रासन, फलाने के ब्याह, फलाने का दहेज आदि अनेक बातें हैं जिन पर वे बहस करते हैं और कच्चे मकानों में चुपचाप सो जाते हैं। उनके गधे चुप खड़े रहते हैं, कभी सोते हैं, कभी जागते हैं; उनके सोने जागने का भेद भी अधिक स्पष्ट नहीं।

चौधरी पञ्च ने कन्हाई के घर में प्रवेश किया। उस समय कन्हाई कोठे से बाहर निकल रहा था। फौरन आगे बढ़कर कहा—आओ दादा, आओ।

पीढ़ा डाल दिया। हुक्का भर कर फूलो पास में ही घूँघट काढ़

कर धर गयी। चौधरी ने टेढ़ी आँख से उसका वह गदराया आकार देखा और हुक्के में कश मारते हुए वे सब समझ गये। कन्हाई ने इधर-उधर की बातें कीं। फिर उठाकर भीतर से एक चीज़ लाया। चौधरी ने देखा। हँसकर कहा—अरे इसका क्या होगा ?

किन्तु कन्हाई ने कहा—तो बात ही क्या है दादा ? कौन पराये हो ? और खोल दी ठर्रे की बोतल। ‘अब तो,’ चौधरी ने कुल्हड़ में मुँह लगाते हुए कहा—मँहगी हो गयी है। हो गयी है न ?

‘दादा, लड़ाई है जे। कौन मँहगा नहीं हो गया है ? मैं नहीं हुआ, कि तुम नहीं हुए ? अब तो मौत का इतना खरचा नहीं जितना जिन्दगी का।’

दोनों हँसे। हल्का नशा चढ़ चुका था और अब खोपड़ी में घोड़े की-सी टाप लगने ही वाली थी। ठर्रे की महक में कन्हाई ने पूछा—दादा, तुम्हारा ही भरोसा है ?

चौधरी ने झूमते हुए कहा—‘अरे, काहे की फिकर है तुम्हें ? कन्हाई ने हर्ष से कुल्हड़ फिर भर लिया और चौधरी के ‘हाँ हाँ’ करते भी उनके कुल्हड़ में आधी बोतल खाली कर दी। और उसके बाद चेतना के सत् पर वही अन्धकार छा गया जो बाहर एकाग्रचित होकर तड़प रहा था।

पंचायत बड़े जोर शोर से जुड़ी। चारों तरफ वही एक चर्चा थी। बस्ती के सारे मरद कुम्हार आकर इकट्ठे हो गये। चौधरी चौतरे पर आ बैठे। हुक्का हाथों हाथ घूमने लगा। चौधरी ने पहले कश लगाये और हुक्का सरका दिया। एक ओर कन्हाई खड़ा हुआ था। उसके शरीर पर सफेद आँगरखा, साफ धोती थी और साँझ होने पर भी आँखों का खोट छिपाने को हरा चश्मा लगा हुआ था। फूलो घूँघट काढ़े बैठी थी। दूसरी ओर चन्दा था। मैली धोती, मैली फितूही और मैली ही हल्की सी नखदार टोपी मशीन से कटे बालों पर चिपक रही थी।

चौधरी ने गम्भीरता से पूछा—तुमने क्या किया ?

चन्दा ने कहा—पंच परमेसुर सुनें । चौधरी महाराज ने पूछा है—मैंने क्या किया ? सो कहता हूँ । बड़े भैया ने छोटे की बहू घर डाल ली है । वह उसकी बेटी के बराबर है ।

चौधरी ने रोक कर कहा—सो हम में भेद नहीं है चन्दा ! बड़ी जातों में बड़े की बहू माँ समान है । हमारे तो यह कायदा नहीं । यह बामन-छत्री जात की बात है । हम तो नीचे कहे गये हैं । और सुना ?

चन्दा का पहला बाण पत्थर से टकराया, फलक टूट गया । शिकारी विह्वल हो गया । उसने फिर धनुष पर बाण निकाल कर चढ़ाया । कहा—मेरे जीते जी दूसरी ठौर जा बैठी है, मुझे हरजरना मिल जाना चाहिए ।

चन्दा बैठ गया । पंचों के सिर हिले, कानाफूसी हुई कि कोलाहल से जगह भर गयी । चौधरी ने फिर कहा—कन्हाई, बोलो तुमने लड़की को घर कैसे डाल लिया ?

कन्हाई ने नम्रता से कहा—‘चौधरी महाराज न्याय करें । घर में भूखी नार आयी । मालिक रोटी तक नहीं जुटा सका । तब मैंने देखा घर की बैयर डगर डगर ठोकर खायेगी । सो कहा—रह, तेरा घर है । मुझे कौन छाती पर बाँध के ले जाना है ?

चौधरी ने कहा—पंच सुनें । फूलो कहे कि कन्हाई ने ठीक कहा । क्या चन्दा के घर तुम्हें खाना नहीं मिलता था ?

फूलो ने स्वीकार किया । चौधरी ने कहा—पंच बतायें । लुगाई तब तक ही रहेगी जब तक मरद खाना देगा भूखी मरने को तो नहीं ?

‘नहीं, पंचों ने एक स्वर उत्तर दिया ।

कन्हाई ने फिर कहा—चन्दा के फूलो के बाप ने जब ठौर कर दी, तो चन्दा ने वादे के जेवर नहीं दिये ।

चन्दा गरज कर बोला—यह झूठ है। मैंने कोई वादा खिलाफी नहीं की।

चौधरी ने रोक कर कहा—फूलो, बता कि किसने ठीक कहा ?

फूलो ने फिर इंगित से कन्हाइ की बात को ठीक साबित किया।

चन्दा घृणा से विवृण्व हो गया। चौधरी ने कहा—और तो बात साफ हो गयी। जैसे बड़े की छोटे ने की तैसे छोटे की बड़े ने की। जेवर नहीं दिये, वादाखिलाफी की। रोटी नहीं दी सो वह क्यों रहती ? पंच बतायें किसका कसूर है।

पंच फिर परामर्श करने लगे।

चन्दा ने उठ कर कहा—पंच परमेश्वर की दुहाई। चौधरी भगमान के औतार हैं। मैं गरीब हूँ; जैसी रूखी सूखी मैंने खायी, तैसी उसे खिलायी। घर गिरस्ती में मरद के पीछे लुगाई चलती है। बतायें मैंने क्या दोष किया ?

फिर पंच विचार में पड़ गये। चौधरी ने सब शांत होने पर फिर कहा—चन्दा रुपये माँगता है कि उसके जीते जी बहू ने दूसरी ठौर कर ली। अगर उसने दूसरा ब्याह करके फूलो को छोड़ा होता तो जब तक फूलो दूसरी ठौर नहीं कर लेती तब तक उसका महीना उसे बाँधना पड़ता। सदा की रीत है कि चन्दा को रुपया मिलना चाहिए। पंचों का न्याय हो। भूखी मारी या न मारी, वह खुद गरीब है। बेटी बाप ने देते वखत क्यों नहीं सोचा। जैसा खुद खाया तैसा उसे खिलाया। लेकिन ब्याहता है उसकी फूलो। फूलो रजामन्द नहीं कि ब्याह करके जनम भर भूखी मरे। वह ठौर छोड़ गयी। जो खाने को दे, जो पालन करे, वही भरतार। पंच कहें। रुपया लेने का चन्दा का हक है या नहीं ?

फिर कोलाहल मच उठा। चौधरी ने तो जैसे हाथ धो लिये। उन्हें अब निर्णय को सिर्फ दुहरा कर सुना देना था। फूलो अभी तक चुप खड़ी थी। बाजी कमजोर पड़ रही थी। उसे यह असह्य था। इससे तो

वह कुलटा साबित हो जायगी । बैठ गयी सो बुरा नहीं, पर यह रुपय देना तो भुगतान है । उसने भरी पञ्चायत में आगे बढ़ कर कहा — चौधरी भगवान् हैं । पञ्च परमेसुर हैं । लुगाई मरद की है मगर जो मरद ही न हो, उसकी कोई लुगाई नहीं है ।

सबने विस्मय से सुना । सच ठीक कहा था । ब्याह हो जाने से ही क्या ? पुरुषार्थहीन पुरुष को कोई अधिकार नहीं कि वह स्त्री को दासी बना कर रखे ।

पञ्चायत उठ गयी । चन्दा पर पच्चीस रुपये दंड लगाये गये जो रोष से उसने वहीं फेंक दिये और हार कर लौट आया । आज उसे कहीं मुँह तक दिखाने की जगह न थी । अब उसका कहीं ब्याह नहीं हो सकता । भरी पञ्चायत में फूलो ने उसकी टोपी उछाल कर पैरों तले कुचल दी थी । यह ऐसी बात थी जिसमें फूलो की बात अंतिम निर्णय थी ।

कन्हाई फूलो को लेकर लौट आया और रात को कन्हाई और चौधरी ने फिर से ठर्रे की बोटल खोली और दोनों मस्त होकर पीने लगे । जब बहुत रात हो गयी तब चौधरी लड़खड़ाते हुए चले गये । फूलो चुपचाप बैठी थी । वह न जाने क्या-क्या सोच रही थी । और कन्हाई नशे में आँगन में औंधा पड़ा था ।

दूसरे दिन शाम को मकानदार ने चन्दा का किवाड़ खटखटाया । चन्दा ने चुपचाप उसके हाथ पर किराया रख दिया । वह भूम रहा था । उसके मुँह से दारू की बू आ रही थी । मकानदार चुपचाप लौट गया ।

चन्दा लौट कर फिर पीने लगा और बकने लगा—बेटा कन्हाई, छिनाल तो छिनाल ही रहेगी । कुत्ते की पूँछ क्या सीधी हुई है ? तेरी बहार भी कै दिन की है ? बेटा अब गिरस्ती पड़ी है, अब दो दिन बाद तेरे भी खरचे देखूँगा । हाथ पाँव ढीले हो जाएँगे, पर मैं करूँगा मजे

बेटा ! चटाने को तो मेरे पास भी पैसे हो जाएँगे, समझा ? भगवान् समझेगा तुमसे, पापी !

और वह देर तक बकता रहा, जोर-जोर से सुना कर बकता रहा । कन्हाई ने सुना और संदिग्ध दृष्टि से फूलों की ओर देखा । उसका हृदय भीतर ही भीतर काँप उठा । फूलों समझ गयी चूनर के कोने में बँधे बीस रुपये खोल लिये । पाँच पञ्चायत में लग गये । बीसों रुपये आँगन में खड़े होकर चन्दा के आँगन में बीच की जैर पर से फेंक दिये और कहा—भूखा मत मर । तेरे धन से सुरग नहीं जाऊँगी । समझा ? ऐसे चटाने को बड़ा मक्खी का छत्ता लगा रखा है न ?

कन्हाई ने सुना, रुपये चन्दा के आँगन में खन्न करके गिरे और बिखर गये, किंतु चंदा उस समय नशे में बेहोश पड़ा था । उसे कुछ भी मालूम नहीं पड़ा ।

फूलों आगे बढ़ आयी, गर्व से कन्हाई की ओर देखा और एक चञ्चल हँसी बरबस ही अंग-अंग को गुदगुदाती उसके होठों पर काँप गयी । कन्हाई ने सिर झुका दिया । उसने मन ही मन अनुभव किया फूलों बहुत जवान थी और वह भाटे पर था ।

काई

पति का चुनाव करने के लिए दुनिया की आम बातों को जानने की जरूरत होती है । डॉक्टर लक्ष्मण का यह कहना सुधा को बहुत जँचा । डॉक्टर लक्ष्मण अभी अपनी प्रैक्टिस जमाने की ही कोशिश कर रहे थे । उनको अक्सर शिकायत रहती कि वे इङ्गलैण्ड नहीं जा सके । लड़ाई ने उनके सब अरमानों को एक धाँय से, एक गरज से बिल्कुल नेस्तनाबूद कर दिया था । और अब वह कहते समाज का सुधार करना

पुरुषों के हाथ में उतना नहीं है जितना स्त्रियों के। स्त्रियों की अङ्गरेज़ी अच्छी होनी चाहिये। जैसे हँसने की बजाय मुस्कराने से औरतों की खूबसूरती में चार चाँद लग जाते हैं, हिन्दी की बजाय अङ्गरेज़ी से वही काम निकलता है।

वे कहा करते—‘आज हिन्दुस्तान में जो ज्वार आया है उसमें नारी ने भी अपनी चूड़ियों में बेड़ियों की झनकार सुनी है। यह समझना भूल है कि वह आदम और हव्वा की तरह ईश्वर की पहली रचना है, वह भी क्रमागत विकास का एक स्वरूप है।’ फिर वे जोश में आकर कहते, ‘नारी को एक देवी समझता है एक राजसी। ठाकुर ने उसे अर्द्धनारी-अर्द्धस्वर्गीय माना है। नारी के मुँह पर एक हँसी रहती है लेकिन भीतर एक अंधड़ और रहस्य। वह आज तक नहीं समझी जा सकी।’

और नतीजा निकाल कर वे कहते थे—‘आदमी बेवकूफ है, औरत पागल।’

इसको सुनकर सब अचरज से देखते थे और सब हँसते थे, लेकिन डॉक्टर अपने विचारों पर दृढ़ थे।

सुधा ने डॉक्टर को परले तिर के पहुँचा हुआ माना और अङ्गरेज़ी का अखबार पढ़ने लगी। एक से शुरू किया और नौबत यहाँ तक पहुँची कि लायब्रेरी में जाकर वक्त को पूरा करने के लिए दर्जनों पर नज़र गिरने लगी।

पब्लिक पार्क के बाँये तरफ के अर्द्धचन्द्राकार पेड़ों के पीछे पीले रङ्ग के उस पुराने ज़माने के गिरजे-जैसे पुस्तकालय में उसके आने-जाने से पहले के मुक़ाबिले में रौनक बढ़ गयी।

सुधा पढ़ती, और फिर शब्दों से लड़ती। पहले ही दिन चलते वक्त लायब्रेरियन ने नम्र शब्दों में निवेदन किया—‘कृपया अखबारों में निशान न लगाया कीजिए। आपको अपनी पसंद दूसरों पर जताने की

इच्छा हो तो मुझे मुँह ज़बानी बता दिया करें। हो सकता है जो ख़बर या बात आप बहुत महत्त्वपूर्ण समझें वह वास्तव में ऐसी न हों।’

सुधा ने आँखों को संकुचित करके घूरा और ‘माफ़ कीजिए, मुझे मालूम नहीं था’ कहकर अपना चमड़े का बेग उठा लिया और बाहर चली आयी।

किन्तु अव्वारों का पढ़ना जारी रहा। डॉक्टर लक्ष्मण अपनी राय बताते हुए कहते कि रूमानिया का तेल ही इस लड़ाई का असली कारण है। न रूमानिया में तेल होता न हिटलर ऑस्ट्रिया पर हमला करता, न अंगरेज़ों से निकल जाने पर रूस ज़ोर देता।

‘तेल!’ वह गम्भीर होकर कहते—‘तेल दुनिया की एक नायाब चीज़ है। जो चीज़ चिकनी हो या आग पकड़ ले वही तेल है। तेल कई तरह का होता है, मगर तेल नहीं तो कुछ भी नहीं। तेल से ही दुनिया चलती है, तेल ही से आपका बदन काम करता है…………’

तब इन्टर की विद्यार्थिनी सुधा मन में विस्मय करती कि डॉक्टर कहाँ से बात शुरू करता है और कहाँ उसका अन्त होगा यह कोई नहीं समझ पाता, लेकिन ऊपर से कहती—‘डॉक्टर तेल न कहिए सत् कहिए तो कुछ हर्ज होगा?’

‘नहीं; लेकिन,’ डॉक्टर ने बात काटकर कहा—‘सत् को स्वयं कोई वस्तु नहीं, तुम असल में शक्ति और चालन में सुविधा देने वाली वस्तु में भेद कर रही हो…………’

‘नहीं, डॉक्टर!’ वह कह उठी, ‘मैं आपका मतलब समझ गयी। आपने ठीक कहा है। मैं तो उसी बात को सरल शब्दों में समझने की कोशिश कर रही थी।’

तब डॉक्टर सन्तुष्ट-से कह उठे—‘तब तो तुम ठीक कहती हो। तुम बिल्कुल ठीक हो।’

और लम्बे चेहरे का हरिश्चन्द्र, जो अपने को सबसे ज़्यादा अक्लमन्द समझता, दोनों की बातें सुन-सुनकर मुस्कराता। वह कम बोलता और वास्तव में इस मौन ने उसे समाज में काफ़ी स्थिरता दे दी थी। वह दिल में सवाल-जवाब करता था और सोच लेता कि इस बात का यह सबसे अच्छा उत्तर है लेकिन 'यह' बात हमेशा उसे बाद में सूझती और गाड़ी छूटने के बाद कौन नहीं चाहता कि वह भी मदरास चला जाए, खास तौर पर अगर वहाँ तक का टिकट भी हो।

हरिश्चन्द्र गोरा और सजीला युवक था। उसे सदा ही बिल्कुल नपेटुले क़ैशन से लैस देखकर लोग उसे एक धनी नवयुवक समझते थे। वह कौन था, क्या था, यह बहुत कम को ज्ञात था। जिस दिन सुधा उसके बँगले पर गयी थी उस दिन केवल उसकी माँ ने उसका स्वागत किया था। एक बड़ी बहिन थी, लड़ाई में 'वैक आई' बन गयी थी और हरिश्चन्द्र उसकी बात कहकर हँस उठा था। सुधा कुछ भी नहीं समझी थी। उसने विस्मय से देखकर कुछ सोचा था किन्तु फिर डूबते सूरज की सुनहली किरनों में जब पेड़ों की लम्बी-लम्बी छायाओं से घिरे वे चाय पी रहे थे क्षण भर को सुधा ठिठक गयी थी। उसने पहली बार देखा था कि हरिश्चन्द्र देखने में आकर्षक था। इससे अधिक उसने कुछ नहीं सोचा। रात को जब वह बहुत देर तक पढ़ती उसने देखा अवश्य था कि कैसे उसके घर के सामने जो स्कूल की अविवाहिता मास्टरनी रहती थी बत्ती बुझाकर अँधेरे में टहला करती थी अकेली-अकेली-सी और कभी-कभी कोई उसके पास रात के एक बजे आ जाता था। सुधा सोचती एक बजे तक प्रतीक्षा! और जैसे उसके जीवन में वह पहलू नहीं था, वह झट खिड़की से हट जाती और उसकी निगाह अखबार पर जा पड़ती। दुनिया का हर एक देश अपनी स्वतन्त्रता के लिए युद्ध कर रहा है और हिन्दुस्तान में अभी तक ये मास्टरनी? तभी उसे डॉक्टर की बात याद आती कि कोई भी देश तभी तक गुलाम रहता है

जब तक उसके रहने वाले स्वयं पूरी तरह से आज़ाद होने के योग्य नहीं हो जाते। बात उसके दिमाग़ में गूँजती और फिर डॉक्टर का अकेला जीवन उसके सामने चलने लगता। डॉक्टर का छोटा-सा मकान जिसका वह पन्द्रह रुपया किराया देता था ! मकानदार की चौबीसों घंटे की—लड़ाई-लड़ाई तक की—ईश्वर से केवल एक प्रार्थना थी कि डाक्टर कूँच कर जायें और वह मँहगायी और जगह की कमी का फ़ायदा उठाकर मकान को कम-से-कम चालीस रुपये में उठा दें, जो अपनी तरफ़ से वह करने में असमर्थ था—चूँकि सरकार के भारत-रक्षा-क़ानून में वही बात जनता के लिए फ़ायदेमन्द साबित हो सकी थी। सुधा घृणा से नाक सिकोड़ लेती। कैसे हैं ये लोग जो अपनी नीचता को अच्छे शब्दों में सजाकर कहने से बाज़ नहीं आते ! और घड़ी में दो घंटे बजते, उनकी प्रतिध्वनि बनकर जेल का घंटा बजता, जिसकी गूँज के समाप्त होने के पहले कहीं और से ढन-ढन की आवाज़ आती और क्षण भर शहर में जैसे घंटे ही घंटे बजते और सुधा पैरों पर से लिहाफ़ गले तक खींचकर आँखें बन्द कर लेती। तारे रात में ठंड से सिकुड़ कर काँपने लगते, ठंडी ठंडी हवा बहती रहती और थोड़ी देर बाद ज़मीन और आत्मान दोनों पलकों की तरह मिलकर अन्धकार, महाअन्धकार में लय हो जाते।

(२)

‘दुनिया कभी सत्य को नहीं पहचान सकती, क्योंकि अपने-अपने स्वार्थों में पड़े मनुष्य कभी भी अपने दायरों के बाहर की बात नहीं सोच सकते।’ डॉक्टर ने धूप में कुर्सी खींचकर बैठते हुए कहा।

हरिश्चन्द्र सिगरेट का धूँआ उगलते-उगलते कह उठा—‘क्या मत-लब ? ज़रा स्पष्ट करियेगा डॉक्टर !’

डॉक्टर की आँखों के नीचे गड्ढे पड़ गये थे। उनका सुनहरी फ़्रेम का चश्मा जो अर्द्धगालों की एक नुमाइश थी उनकी खाकी आँखों के

ऊपर एक अपने ही ढेंग की चीज़ थी। उन्होंने शाल अच्छी तरह ओढ़कर उतर दिया—‘मनुष्य संकुचित है क्योंकि वह अपनी सत्ता को बनाये रखने के काम में अच्छा-पुरा छोड़कर लगा रहता है।’

सुधा चुप बैठी रही। आज इतवार था। वह कुर्त में थी। लॉन पर ओस झलक रही थी। फूटती किरनें पेड़ों के बीच में ओस को पकड़ने के लिए झुकी आ रही थीं। दूर क्षितिज पर अब भी कोहरा जमा हुआ था, नीला-सा, ऊदा-ऊदा-सा। हरिश्चन्द्र के बंगले का यह बराम्दा सड़क की तरफ था।

डॉक्टर कहता रहा—‘जानते हो न इस पञ्जाबी होमियोपैथ डॉक्टर को? हजारों में खेलता है। श्विनीन को होमियोपैथिक दवा बताकर बाँटता है। M. B. 693 का पाउडर बनाकर उसे अपना चूरन बता-बताकर देता है और लोग उसके पीछे भागते हैं। जब मेडीकल स्कूल कॉलेज हो गया है डॉक्टर मरीज़ों की, लोगों की बिल्कुल परवाह नहीं करते और फिर भी लोग उन्हीं के पीछे दौड़ते हैं। हम लोगों के पास कोई नहीं आता।’

डॉक्टर एक शुष्क व्यंग की हँसी हँसा। सुधा ओवरकोट के जेब में हाथ डाले बैठी रही। हरिश्चन्द्र ने कहा—‘लेकिन डॉक्टर, आपके पास आना न आना सत्य से क्या सम्बन्ध रखता है?’

डॉक्टर चिहुँककर बोले—‘ठीक पूछा है तुमने हरिश्चन्द्र, ठीक पूछा है। क्या जरूरत है लोगों को उन लोगों के पीछे भागने की जो रुपये के सामने आदमी की परवाह नहीं करते?’

हरिश्चन्द्र कह उठा—‘बच्चे जरूर सवालों को लेकर अभ्यास किया करते हैं, लेकिन जान का, जान-जैसी चीज़ पर लोग अभ्यास करना ज़रा कम पसन्द करते हैं।’

डॉक्टर को लगा जैसे हरिश्चन्द्र के मुँह से बड़ा कड़वा धूँआ निकल कर फैल गया। वह सुधा की ओर देखकर कहने लगा—‘देख सुधा,

हरिश्चन्द्र हर चीज को खेल समझते हैं। एक बात बताऊँ किसी से कहोगे तो नहीं ?'

दोनों ने आश्वासन-भरे नयनों से देखा। डॉक्टर ने कहा—'कल शाम मेरे पास सुधा के घर के सामने रहने वाली मास्टरनी आयी थी। वह दवा चाहती है कि समाज उसे ठीक समझता रहे। उसके कार्य पाप न होते हुए भी समाज को ज्ञात हो जाने पर जो पाप हो जायेंगे, इसी-लिए वह उनको मिटा देना चाहती है।

'क्या बात ?'—सुधा ने नासमझी से पूछा—'क्या हुआ उसको ?'

डॉक्टर ज़ोर से हँसकर बोले—'अभी तुम नहीं समझोगी। क्योंकि तुमने अभी दुनिया नहीं देखी। मास्टरनी गर्भवती हो गयी है और गर्भ से छुटकारा पाने के लिए मुझसे दवा चाहती है, जैसे मैंने गर्भ गिराने की ही दवाएँ सीखी हैं और कोई भला काम मैं नहीं कर सकता। इसके लिए उसके प्रेमी एक सेठ के लड़के ने पाँच सौ रुपया मुझे देने को क़बूल किया है, क्योंकि मास्टरनी के पास लड़के के प्रेम-पत्र हैं जिनके बल पर वह उससे शादी कर सकती है। किन्तु वह सेठ के लड़के से अपना सच्चा प्रेम बताती है और कहती है कि सेठ के लड़के में उतना साहस नहीं है कि मुझसे शादी कर ले। यदि मैं ज़ोर दूँगी तो उसकी कमजोरी का नाजायज़ फ़ायदा उठाना होगा, इसलिए मौजूदा हालात में भ्रूण हत्या सबसे ज़्यादा ठीक रहेगी।

डॉक्टर एक जंगली तरीके से हँस उठा। सुधा ने पूछा—'और डॉक्टर, आप उसे मदद देंगे ?'

डॉक्टर हठात् गम्भीर होकर बोले—'मैं नहीं जानता मैं क्या करूँगा। हरिश्चन्द्र तुम्हारी इस विषय में क्या राय है ?'

हरिश्चन्द्र चुप बैठा था। उसने एक बार लॉन की ओर देखा, सड़क की ओर देखा, राह चलतों पर नजर डाली, जैसे वह सबकी राय ले

रहा हो, और फिर खाँसकर उसने कहा—‘डाक्टर, मैं नहीं जानता कि आप मेरे उत्तर से मुझे कैसा आदमी समझेंगे।’

डाक्टर ने उसे ऐसे देखा जैसे उससे क्या, तुम्हें जो कहना हो कहो।

हरिश्चन्द्र ने ऊपर देखते हुए कहा—‘वात असल में एक है, और वह है मास्टरनी का भविष्य। बच्चे समाज में इतने होते हैं कि हिन्दु-स्तान उनमें से बहुतों को नहीं चाहता। ऐसी दशा में सन्तान का प्रश्न बेकार है। अगर भ्रूणहत्या नहीं होती तो मास्टरनी या तो ठ पर जोर डालकर शादी करती है और सदा के लिए जीवन की कोमलता खो जाती है या फिर वह बदनाम होती है, नौकरी से निकाल दी जाकर भिखारिन हो जाती है। एक पाप करने से अनेक विषमताओं का अंत होता है, अतः वह काम भी बुरा नहीं रहता। अगर आप मेरी बात मानें तो आप जरूर उसे कोई दवा देकर इस परेशानी से उबार दें।’

डाक्टर के दिमाग में सौ-सौ करके पाँच चोटें पड़ीं और सुधा फट पड़ी—‘तो उसके इस काम के लिए क्या सजा है?’

हरिश्चन्द्र अविचलित स्वर में बोला—‘क्या यह काम सचमुच सजा देने लायक है? आप कहेंगी, यह दुराचार है। मैं मानता हूँ; लेकिन भूखा और पिंजरे में बंद क्या नहीं करता? ज़रा-सा दरवाज़ा खुला नहीं कि उड़ने के लिए भागटा। और नतीजे में खटका गिरने पर टाँग के बल घंटों लटकता है। मेरे विचार में एक औरत के लिए सबसे बड़ी सजा है कि वह जब मां बनने वाली हो उसे स्वयं अपने ही बच्चे का खून करना पड़े।’

उसने तीखे नयनों से सुधा की ओर दृष्टि फेंकी। सुधा ने पढ़ा जैसे वह कह रहा हो कि यदि तुम उस जगह होतीं तो क्या करतीं? और क्षण भर में ही परिस्थिति की गम्भीरता समझ कर चुप हो गयी।

डाक्टर सोचते रहे। फिर बोले—‘लेकिन यह करने के बाद भी

तुम लोग यह न सोचना कि मैंने अपनी परेशानियों से तङ्ग आकर पाँच सौ रुपयों के लिए ऐसे ही एक मनुष्य को मार डाला ।’

हरिश्चन्द्र बोल उठा—‘आप भी कैसी बातें करते हैं, डाक्टर ! सज़ा वही देता है जो अपने को अपराधी से अच्छा समझता हो । जिस समाज में ज़िन्दे आदमी भूख से मार डाले जायें वहाँ एक अनजाने मांस के लोंदों को मिटा डालना कोई बड़ी बात नहीं है । अगर पता चल जाने पर समाज माँ और बालक दोनों को ही सज़ा के अतिरिक्त कुछ नहीं देख सका तो क्यों न एक की ही जिन्दगी सुधारने का प्रयत्न किया जाय । मैं आपसे अपने दिल की कसम खाकर कहता हूँ कि आपकी इज्जत मेरे दिल में फिर भी बनी रहेगी । और आप ही बताइये कौन-सा है वह इज्जतदार डाक्टर जिसने इन्हीं कामों के बूते पर शुरू में अपनी प्रैक्टिस स्थापित नहीं की ? एक बार नस पकड़ ली, फौरन वहाँ ‘फैमिली डाक्टर’ बन गये और फिर चलती का नाम गाड़ी है ।’

हरिश्चन्द्र ने दूसरी सिगरेट जला ली । सुधा खोई-सी बैठी रही । डाक्टर सोचते रहे और सूखी डाल पर काली चिड़िया गर्दन मटका कर गाती रही । एक उत्तरहीन अभावपूर्ण सन्नाटा घहरा कर धूप में सुबकने लगा ।

(३)

जब शाम को सुधा इतवार को पुस्तकालय बंद होने के कारण घर पर ही बैठकर जी बहलाने लगी उसके दिमाग में तरह-तरह के विचार दौड़ने लगे । धीरे-धीरे एक धूँआ-सा कोहरा साँस के साथ भीतर-बाहर छा गया और चारों ओर अंधकार ही अंधकार का बहरापन आकाश से एक कशमकश करता बरसने लगा । वह चुपचाप बैठी खिड़की से देखती रही । दूर दो तल्ले पर बिजली के प्रकाश में कुछ दर्जी लड़ाई की बर्दियाँ सी रहे थे । वह प्रायः चौबीसों घंटे काम करते और सुधा, यही अचरज करती कि आदमी कैसे स्वयं एक मशीन हो जाता है । अब जो

खैर जाड़े हैं मगर गर्मी, बरसात सब में वे उस ही कमरे में बंद रह कर काम करते और करते.....

सुधा ने देखा दूर और दूर बिजली के खम्भे के नीचे कुछ भिखारी टाट में लिपटे बैठे थे और उसे मालूम था रात होने पर वे वहीं टाट में लिपटे लुढ़क जायेंगे, सो जायेंगे; सुबह उठकर फिर गंदे मुँह, गंदे बदन से भीख माँगेंगे और रात-दिन की ठण्ड खाकर भी उनका शरीर नहीं अकड़ता। जैसे कुत्ता बहुत ठण्ड होने पर कूँ-कूँ करके फिर मिट्टी में सिमटकर सो रहता है और एक बार चाँद को देखकर जब अपनी छाया से उसे डर लगता है तो जोर से रो उठता है।

सुधा उन्मन होकर आसमान की तरफ देखने लगी। कुछ नहीं केवल कुछ तारे निकल आये थे। पृथ्वी घूमती है, वे राह पर आते हैं, दीखते हैं फिर ऐसे ही नहीं दीखते और सुधा ने दृष्टि नीची कर ली। लालटैन की लौ तेज़ करके पास के सामने वाली दूकान के हलवाई ने कुछ आवाज़ लगायी और सुधा ने देखा वही बूढ़ा भिखारी और वही औरत खड़े थे, चुपचाप; जैसे कोई मतलब नहीं। सुधा अक्सर उन्हें देखती और उसे उनमें कुछ कौतूहल होता था। औरत बिल्कुल पागल-सी थी बूढ़ा कभी-कभी किसी से बात कर लेता था और एक सुबह उसने देखा था बूढ़े की गोद में सर रख कर सड़क के किनारे ही औरत सोती रही। बूढ़ा कभी उसके शरीर पर झुककर भयङ्करता से खसित और कभी ऊँघने लगता। औरत फिर भी न जागी, बूढ़ा फिर भी न हटा और आसमान से चिल्ला गिरता रहा, किन्तु सुबह भी मरे नहीं थे, उनका ध्वंस नहीं हो सका था। बूढ़ा उसे लेकर चल पड़ा था। ऊँचे उठे कंधे और लटकी गर्दन, छोटा-सा कद, और स्त्री जो बगराती, सतराती और कदम-कदम पर ठोकर खाती।

सुधा ने व्यथा से भर कर एक लम्बी साँस ली और आँखों को ढँक कर हाथों से मसल दिया और अंधकार में कमरे में कुछ देखने

लगी। क्या हक़ है हमें इस तरह ठण्ड से बच कर रहने का जब इतने आदमी न सो पाते हैं, न जिनका जागना है, न जिनका सोना है; जिनका जागना एक हाहाकार है, जिनकी नोंद एक मूर्छा है.....

वह सोचने लगी। मन में अपने आप भावना उठी कि क्या यह जीवित रहना एक पाप है? क्या हमें भी सब कुछ खोकर वैसी ही हो जाना है? जब सुख है तभी दुख है। लेकिन यदि दुःख ही दुःख है तो न कोई ईर्ष्या करने वाला है, न कोई दूसरों के लिए व्यथित होने वाला। यह जो स्वयं पीड़ित हैं, ये किसी और की चिन्ता नहीं करते, केवल इन्हें अपना ही ध्यान, अपने पेट का भयानक ध्यान-भर रहता है।

किसी के सीढ़ी चढ़ने की आवाज़ हुई और सुधा प्राकृतिक रूप से ही पुकार उठी—‘कौन? भइया?’

‘अरे, अँधेरे में क्यों बैठी है?’ कहते हुए एक युवक ने स्विच दबा दिया। एकाएक उजाला हो जाने से सुधा की आँखें पल भर को बंद हो गयीं और जब उसने आँख खोलकर देखा तो भइया बिछे हुए बिस्तर पर बैठे पैर हिलाते हुये सिगरेट जला रहे थे। दोनों एक दूसरे को देखकर व्यर्थ मुस्कुराये और भइया ने एक बार धूँआ छोड़कर कहा—‘तूने सुना सुधा, मैंने नौकरी छोड़ दी?’

‘छोड़ दी? क्यों? कैसे? कब?’ सुधा ने घबरा कर सवालियों की बाढ़ मचा दी। उसके दिमाग में एक उथल-पुथल मच उठी।

भइया ने नीची दृष्टि करके कहा—‘कल सुभे तुझसे कहने का वक्त ही न मिला। सेठ हरनारायण के लड़के ने कल साढ़े-छः सौ की नौकरी से इस्तीफा दे दिया क्योंकि वे मेरे पीछे लड़ गये थे। एक अज़रेज़ ने सुभे बहुत बुरी गालियाँ दी थीं और जब रिपोर्ट की गयी तो सब बड़े अज़रेज़ अफसर उस ही की तरफ़ बोलने लगे। उनके छोड़ने के कारण मैंने भी छोड़ दी।’

बात खत्म हो गयी, किन्तु फिर भी इसलिये खत्म नहीं हुई, क्योंकि

बात का समाप्त हो जाना आगे के जीवन का हल किसी तरह भी नहीं निकाल सकता था। सुधा ने धीरे से कहा—‘अङ्गरेजों का बर्ताव तुम्हीं से बुरा था या सबसे?’

‘सबसे। किन्तु मैं इसे सह नहीं सका।’ आज भइया के आदर्श त्याग का महत्त्व सुधा की समझ में नहीं आया। वह स्त्री थी और उसे अपनेपन का कहीं अधिक ख्याल था। अँगरेज कौन-सी ऐसी बात कर रहे हैं जिसमें हिन्दुस्तानियों की इज्जत बढ़ रही थी? जब आदमी नौकरी करने जाता है पेट के लिये तब इज्जत तो वह पहले ही छोड़ आता है। या तो खुलकर बगावत करे, या करे ही नहीं। सब एक-दूसरे को हुजूर कहते हैं क्योंकि कहना पड़ता है।

और उसने भाइया की ओर देखा जो ऐसे बैठे थे जैसे मैंने जो किया है उसके लिये बिल्कुल खिन्न नहीं हूँ। मैं कुत्ता नहीं हूँ जो टुकड़ों के लिये ठोकर खाता फिरूँ। दोनों ने एक-दूसरे को देखा और दोनों ने एक दूसरे के विचारों को आँखों से ही पढ़ लिया।

सुधा को उस पर दया-सी हो आयी और भइया को एक उलझी-सी भुँभलाहट। सुधा ने कहा—‘मुझे कल दो महीने की फीस दाखिल करनी है।’

भइया ने हँसकर कहा—‘अरी कल तक मैं हँसता था कि घर में अखबार लेकर तू पुस्तकालय जाती है, मगर शायद जल्द ही अब तुझे पुस्तकालय में ही अखबार पढ़ने पर मजबूर होना पड़ेगा।’

सुधा थोड़ी देर चुप रही। उसने कहा—‘अब?’

भइया बोले, ‘अब के अमरीकनों में कोशिश करूँगा। जल्दी ही मिलेगी। सौ न सही, पचास ही सही—दो सौ तो अब क्या मिलेंगे—मगर मिलेंगे तो! सुनते हैं अमरीकन अङ्गरेजों के मुकाबिले में अच्छे हैं।’

सुधा को विश्वास नहीं हुआ। होंगे भी तो मुकाबिले में ही हो सकते

हैं। वैसे तो जो नौकरी देगा वह जरूर दावना चाहेगा, तब तक जब तक नौकर मालिक का फर्क न मिट जाय।

भइया हँस पड़े। बोल उठे, 'अरी तू क्यों घबराती है पगली। सोचती होगी सेठजी के लड़के ने ठोकर मारी तो उनका दूसरा पैर भी मज़बूत था, यहाँ तो झनझनाहट से ही गिर गये। तेरा तो ब्याह मैं कर ही दूँगा कहीं अच्छी-सी जगह और फिर-की-फिर देखी जायगी। अकेले की क्या है? मगर तू न कहेगी, अपनी पसन्द से करूँगी मैं तो..... पढ़ी-लिखी जो है न?' और भइया ठठाकर हँस पड़े। सुधा लाज से मुस्करा उठी। मज़बूरियों में भावी सुख की यह कल्पनायें जो कभी पास नहीं आतीं, और जीवन सरकता चला जाता है! कैसी मृग तृष्णा! कैसी मरीचिका! अनन्त अन्धकार, आकाश में धू-धू जलता निर्धूम उन्माद, या पागलपन.....

(४)

डाक्टर ने सुधा की दो महीने की, तथा इम्तहान की फ़ीस शीघ्र वापिस मिल जाने के वायदे पर तकल्लुफ़ दिखाते हुये दे दी और उस दिन सुधा ने पत्थरों के नीचे दबे दिल में पहली बार एक कचोट महसूस की जिसमें बंधनों की पीड़ा का वेग होता है। वह थोड़ी देर देखती रही और डाक्टर ने उसकी ओर न देखते हुये अपनी सिगरेट जला कर चुपचाप एक लम्बी साँस ली।

सुधा ने अपने होठों पर जीभ फेरी और एकाएक पूछ बैठी—
'डाक्टर मनुष्य सुखी कब होता है?'

डाक्टर जैसे तैयार नहीं थे। उन्होंने चौंकर उसकी ओर देखा और वे धीरे से कह उठे—'जब मनुष्य कुछ नहीं चाहता, जब उसे कोई चिन्ता नहीं रहती।'।

'यानी जब आदमी मर जाता है।'।

डाक्टर फिर चौंके । उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया । वह उसे घूरते रहे, जैसे क्या मतलब ?

सुधा ने उनका मतलब समझकर भिन्नकते-भिन्नकते कहा—‘डाक्टर, मनुष्य सदा चिंतित रहता है । आप मनुष्य के शरीर की सारी बनावट जानते हैं, इसी से आपसे पूछती हूँ । आदमी कभी चैन-से नहीं रहता । वह क्यों कुछ करना चाहता है ?’

‘क्योंकि वह रहना चाहता है ?’

‘लेकिन क्यों ?’

‘क्यों ? क्योंकि वह पैदा होता है ।’ जैसे डाक्टर ने सारी समस्या सुलझा दी ।

‘यही तो पूछती हूँ डाक्टर,’ सुधा ने दृढ़ता से कहा—‘वह पैदा क्यों होता है ?’

‘क्यों होता है ?’ डाक्टर हँस पड़े । उन्होंने कहा—‘यह तो मैं नहीं बता सकता कि क्यों होता है । डाक्टर होने की हैसियत से यह ज़रूर बता सकता हूँ कि कैसे होता है और यह ‘कैसे’ ही वास्तव में ‘क्यों’ का पहलू अपने में छिपाये है । यह ‘कैसे’ ही ‘क्यों’ का असली उत्तर है । बिना ‘कैसे’ के ‘क्यों’, कभी सामने नहीं आता, क्योंकि केवल ‘क्यों’ एक दुःस्वप्न की घुटती पुकार है जिसका जवाब आइन्स्टाइन जैसे वैज्ञानिक भी नहीं निकाल सके और वह अब भी ‘कैसे’ में ही उलझ रहे हैं । ‘क्यों’ का उत्तर बहुतों ने दिया है, किन्तु आगे आने वाले ने उन्हें ही काट दिया और ‘क्यों’ का उत्तर सारहीन हाहाकार-मात्र रह सका ।’

सुधा देखती रही । डाक्टर का जादू आज उस पर असर करने में असफल हो गया । उसके मन को तृप्ति नहीं हुई । मनुष्य जो चाहता है वही नहीं हो पाता, जहाँ वह समझकर पैर रखता है वहीं कीचड़ निकलती है और उसका पैर आगे बढ़ने की बजाय धँसा रह जाता है ।

डाक्टर ने सिगरेट फेंककर यूरोपियन ढङ्ग से कुछ अशराफ़

जम्माइयाँ लीं और दोनों हाथों को सीधा किया और उद्विग्न-से कमरे में टहलने लगे। कभी-कभी वह सुधा को देखते थे और जैसे कुछ कहना चाहते थे किन्तु शब्द न मिलने के कारण परेशान थे।

सुधा ने ही मौन तोड़ा। उसने पूछा—‘डाक्टर, मास्टरनी का क्या हुआ?’

‘होता क्या?’ उन्होंने मेज़ पर टिककर कहा—‘जो होना था वही हुआ।’

‘यानी?’ घड़ी के अलारम की तरह सुधा की बात टनटना उठी।

‘यानी दवा ने उसके पाप को धो दिया, लेकिन आज ही सुबह ऑपरेशन करके मुझे एक और काम करना पड़ा। वह दवाएँ गलत तौर पर पी गयी और ज़हर ने गर्भाशय में प्रवेश कर लिया। इसलिए मुझे उसकी चीरा-फाड़ी करनी पड़ी और अब वह कभी भी मां नहीं बन सकेगी, चाहे तो भी नहीं। इसके लिए सेठ के लड़के ने मुझे पाँच-सौ की जगह कुल तीन-सौ रुपया दिया है। ज्योंही उसे मालूम पड़ा कि बच्चा नहीं रहा उसने मास्टरनी से कुछ कहा। ऑपरेशन के बाद जब कोई भी डाक्टर उसकी देख-रेख कर सकता था उसने मुझे कुल तीन-सौ रुपया दिया और वह मास्टरनी एकदम चुप हो गयी। दोनों ने मुझ पर जुर्म लगाया और मास्टरनी ने कहा कि मेरी ही गलती की वजह से वह अब औरत नहीं रही।’

डाक्टर पराजित-से हँस पड़े। फिर कह उठे—‘रुपया मैं जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य नहीं समझता। मैंने उनके भले के लिए किया था वह सब, लेकिन.....’

सुधा ने बात काटकर कहा—‘तो भला तो आप कर चुके न? फिर कैसा अफ़सोस? कर्म करना ही तो आपके अधिकार में था। फल न मिला, न सही।’

डाक्टर तिलमिला उठा। इस समय वह चाहता था कि कोई

उसकी प्रशंसा करे और उसी की एक शिष्या के समान लड़की ने उसके मर्म पर ऐसी चोट की थी। उसने आहत स्वर में कहा—‘यह रुपया नहीं था, मेरी मेहनत का फल और उनकी ईमानदारी की परख थी।’

मुधा निराश हो गयी। उसका व्याकुल हृदय भीतर-ही-भीतर चिल्ला उठा—‘यह सब झूठ है। यह सब झूठ है।’ किन्तु कॉलेज की फ्रीम जेब में पुकार उठी—चुप ! चुप !

(५)

भइया की नौकरी सचमुच लग गयी। वे सुबह साढ़े छः बजे के कड़कते जाड़े में घर से चल देते और शाम के पाँच-साढ़े पाँच बजे तक लौटते। एक सौ बीस रुपये की तनख्वाह बुरी नहीं होती। तीन ही दिन में यह कहीं से रुपये ले आये और डाक्टर को मुधा ने बड़े-बड़े धन्यवाद देते हुए लौटा दिये। मुधा ने अपना एक पुरानी जरसी उधेड़कर उनके लिए दस्ताने बना दिये ताकि साइकिल पर जाते वक्त हाथ न ठिठुर जाय और रात के पराँवठे लेकर वह गये-गये कि फिर शाम तक को गयी। मगर हालत बदस्तूर गिरी रही। पूरा महीना बिना पैसे के चलाना था। घर में आटा था, मगर इधर सब्जी के बड़े दामों पर पैसा डालना कठिन था, कि दूध-दही सुपना हो रहे थे। दरिद्रता की यह छाया मुधा के मन पर बैसी ही चढ़ी जैसे चूल्हे पर चढ़े बर्तन के तले पर कालिमा। अखबार बन्द कर दिया गया। पहले जो दो-सौ आते थे उनमें पाई-भर भी बचाना हराम था। रसोई करने वाली निकाल दी गयी और वह भार मुधा पर ही आ पड़ा। घर और बाहर के बोझ की कशमकश में उसकी आत्मा अवरुद्ध-सी छुटपटा उठी। शाम को वह भइया को खाना खिलाकर पुस्तकालय जाने लगी और इस कारण लौटते में कभी-कभी अंधेरा भी हो जाता किन्तु अब अखबार

पढ़ते में उसे सान्त्वना-सी मिलती जैसे यह सब एक महान् संग्राम था जिसका परिणाम मुक्ति है, मनुष्य की मुक्ति।

किन्तु हरिश्चन्द्र धीरे-से मुस्करा उठा। उसने कहा—‘तुम समझती हो सोवियट में सब सुखी हैं?’

‘मैं नहीं जानती, मगर तुम सुख कहते किसे हो?’ उसने पूछा।

‘मैं?’ हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया। ‘सुख और दुख को केवल संसर्ग से उठने वाली प्रतिक्रिया समझता हूँ। साथ-साथ हैं तो यह है, वह है; दूर-दूर हैं तो न यह है, न वह है; और यह वह कुछ स्वार्थ की सिद्धि सफल है तो सुख है, नहीं है तो दुख है।’

सुधा को यह उत्तर अच्छा लगा। एक बार मन में आया अपने घरेलू कष्टों का उससे बखान करके जी हल्का कर ले। किन्तु फिर सहसा ही हिम्मत नहीं हुई कि कहीं इसमें कोई अपना अपमान न हो, कहीं हरिश्चन्द्र उसे गरीब न समझ ले। हरिश्चन्द्र बकता रहा—‘संसर्ग ही सब कष्टों की जड़ है। मैं एक जमींदार हूँ, छोटा-मोटा। कभी अपनी जमीन देखने तक नहीं जाता। जो आज गरीब किसान है उसे कभी यह मालूम नहीं होता कि एक मिस्टर हरिश्चन्द्र भी हांगे जो मेरी मेहनत के बूते पर सिगरेट पी रहे हांगे। मगर जो है सो तो है ही। वह सब भी ठीक है। पैसा है तो सब कुछ है, नहीं तो कुछ भी नहीं।’

सुधा ने उसकी ओर देखा। अनजान में ही उसकी दृष्टि में एक स्नेह छलछला उठा था। नारी के मन की अनजानी वेदना को निदांष रूप में प्रकट कर देने वाला पुरुष कम-से-कम एक प्यार-भरी दृष्टि का उत्तराधिकारी अवश्य होता है। हरिश्चन्द्र ने निर्भय स्वर में कहा—‘मेरे मना करने पर भी मेरी बहिन ‘वैकआई’ है और मैं जानता हूँ उसकी टाँभियों से दोस्ती है, लेकिन क्या कर सकता हूँ मैं? वह मुझसे पैसा नहीं चाहती, कुछ नहीं माँगती, किस तरह दबा सकता हूँ उसे?’

इतनी बड़ी बात कहकर भी उसे संकोच नहीं था। उसने बात को

समाप्त करते हुए कहा—‘मैं उसका भाई अवश्य हूँ, किन्तु उससे घृणा करता हूँ क्योंकि वह मुझसे घृणा करती है। वह पुरुषों से घृणा करती है और फिर भी पुरुषों की ओर खिंचती है। जिस आदमी से वह प्रेम करती थी वह एक अङ्गरेज था जिसने उसे एक ठोकर मार दी थी और एक बच्चे की माँ बनने के लिए छोड़ गया था। वह माँ नहीं हुई, लेकिन पुरुषों पर उसने कभी विश्वास नहीं किया और मैं कोशिश करके भी उसे चाह नहीं सका।

सुधा निस्तब्ध बैठी सुनती रही। कैसे हैं ये लोग? कोई एक-दूसरे से प्यार नहीं करता! केवल अविश्वास, केवल घृणा! और परस्पर का व्यवहार केवल एक धोखा, या फिर अत्याचार! पार्क में उस दिन चाँदनी फैली हुई थी। दोनों बेंच पर बैठे बातें कर रहे थे। मादक हवा चल रही थी। बात करते-करते हरिश्चन्द्र ने सुधा का हाथ पकड़कर कहा—‘एक बात बतलाओ सुधा! क्या तुम बहुत सुखी हो? मैंने तुम्हें सदा एक जिज्ञासु के रूप में देखा है। तुम हो, तुम्हारे भइया हैं। मैं धन को बहुत बड़ी चीज़ मानता हूँ। आज जो अविद्या, गँवारपन, कमीनापन और जाने क्या-क्या है यह सब धनहीनता के कारण हैं, सब धन के भेद हैं। मैं नहीं जानता मैं कहाँ तक सही हूँ; किन्तु तुम सदा मुझे सुखी दीखती हो।’

सुधा एकाएक हँस पड़ी। कैसा भोला है यह युवक? जो हाँ ना का फ़रक सुनकर नहीं पहचान सकता। उसने अपने सामने एक बालक देखा। अनजाने ही उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोल उठी—‘अरे हम लोग असल में ग़रीब आदमी हैं, ग़रीब आदमी। सुखी हम कहाँ? सुख की बातें तो तुम लोगों को करनी चाहिए, जो जमींदार हैं। बड़े लोग हैं। हम तो ज़िन्दे हैं, ज़िन्दे!’

‘मैं ज़मींदार?’ और हरिश्चन्द्र ठठाकर हँस पड़ा। ‘बड़ा आदमी? शायद कपड़े देखकर लोग ऐसे ही ग़लत ख़यालों में पड़े रहते हैं? बङ्गले

में रहता हूँ जो ! और सब, सब कर्जे से लदा है, गले तक कर्जा है, कर्जा, कमीने सेठों ने छोड़ा ही क्या है.....’

और वह जोर से हँस पड़ा । उसकी भराई हँसी में उसका आहत अभिमान टुकड़े-टुकड़े होकर शीशे की तरह चाँदनी में चमक उठा था । वह फिर कह उठा—‘सोचती होगी जान-जानकर और क्यों फँसते हो ! मगर जिसके मुँह में खून लग चुका हो वह घास नहीं खा सकता । यह रोगी तपेदिक से मर कर ही चैन ले सकता है, इसका इलाज असम्भव है । बिल्ली दूध पी नहीं पाती तो लुढ़काये बिना उसे चैन कब मिलता है ? एक खानदान की इज्जत भी तो होती है न ? माँ तो अभी भी अपनी ऐंठन उसी पर कायम रख सकी हैं ।’

और वह फिर वही ज़हरीली हँसी उगल उठा । सुधा निस्पंद सुनती रही । किला धप से मिट्टी में बैठ गया था । चारों ओर धूल ही धूल उड़ रही थी । वैभव को अन्धकार ने डस लिया था ।

(६)

दूसरे दिन सुबह ही सुधा डाक्टर के घर की तरफ़ चल पड़ी । डाक्टर बैठे कुछ सोच रहे थे । इतनी सुबह सुधा को देखकर उन्हें कुछ भी अचरज नहीं हुआ । सुधा को रात भर नींद ठीक न आ सकने के कारण उसकी पलकें भारी हो रही थीं और डाक्टर के सन्देह की इस बात ने पुष्टि कर दी । वह अप्रसन्न-सा मुख लिये बैठ रहा । सुधा अपने आग्रह कुर्सी खींचकर बैठ रही ।

डाक्टर ने देखा—कैसी सीधी बनकर बैठी है । लेकिन कल शाम को सीधी न थी जब पार्क में चाँदनी में हरिश्चन्द्र के साथ हाथ में हाथ डाले बैठी थी । अनजाने ही डाक्टर की इस नारी के प्रति दबी वासनाएँ इस अचानक पराजय पर भड़क कर ठोस विद्रोह और प्रति-हिंसा बनकर खड़ी हो गयीं जैसे आज वह कुछ सुनने को तैयार न था ।

सुधा चुपचाप बाहर देखती रही। उसने कहा—‘डाक्टर जीवन कितना कठिन है?’

डाक्टर के मुँह पर व्यंग्य से एक मुस्कान खेल गयी। उन्होंने कहा—‘परिस्थितियों की उलझन को सुलझन बना देना ही मनुष्य का सुख होता है सुधा देवी! ठीक है न?’

सुधा ने चौंककर डाक्टर की ओर घूरा। किन्तु डाक्टर बेताब होकर उठ खड़ा हुआ। मेज़ की दूसरी ओर धीरे-धीरे जाकर हाथ बाँधकर वह खड़ा हो गया। सुधा ने सुना—वह कह रहा था—‘जान-जानकर गलती करनेवाले को कोई क्षमा नहीं कर सकता मैं सब जानता हूँ, सब देख चुका हूँ। दवा लेने आयी हो सुधा? मैं नहीं दे सकता। तुम भले ही मुझे कुछ कह लो। मेरे लिए एक बार की भूल काफ़ी है, बहुत काफ़ी है। मैं बार-बार वैसी गलती नहीं दुहरा सकता। मुझे तुमसे कोई हमदर्दी नहीं है। यदि तुम पाप करते हुए नहीं हिचक सकती तो समाज को तुम्हें दण्ड देने का पूरा अधिकार है।’

सुधा कुछ नहीं समझी। वह बोल उठी—‘कैसा दण्ड? कैसी दवा? क्या जानते हैं आप, डाक्टर?’

‘तुम मेरी आँखों को नहीं झुठा सकती सुधा देवी! मैंने आँखों से तुम्हें हरिश्चन्द्र के साथ पार्क में कल रात देर तक बैठा देखा है। अगर चाँदनी का दोष है तो मैं कोई दवा कैसे दे सकता हूँ? है तुम्हारे पास पाँच सौ रुपया? डाक्टर लक्ष्मण तुम्हारे कृपा-कटाक्षों का न भिखारी था, न है, न रहेगा। जाओ, मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता।’

‘ओह, समझी। तो आप मेरी कोई मदद नहीं कर सकते?’ सुधा एकदम ठठाकर हँस पड़ी। निर्दोष कभी किसी से नहीं दबता। ‘तब तो आप बड़े समझदार हैं। डाक्टर तुम्हारा भेजा सड़ गया है और तुम उसकी बदबू से परेशान होकर समझते हो कि सारा संसार सड़ गया है। बेवकूफ़, तुम्हारे समाज में हर एक पाप का न्याय देने की ठौर है और

इसीलिए आज सत्ता के लिए विपमताओं के इस काग़ाज़ में पाप ही पुण्य हो गया है। इतिहास इसके लिए तुम्हें कभी भी क्षमा नहीं कर सकेगा।’

वह अपने अपमान से विनून्ध-सी फुझार उठी थी। डाक्टर हत-बुद्धि-सा देखता रहा। सुधा तेज़ी से उसके घर से निकल गयी।

बाहर हवा ठण्डी थी, तेज़ थी। राह के लोग कपड़ों की कमी के कारण सिसकारी भरते-से चल रहे थे। ढाल के किनारे के ताल पर कुछ बच्चे ढेले फेंक रहे थे। ढेला गिरते ही काई फट जाती थी, फिर उसके डूबने पर जुड़ जाती थी। बच्चों के ढेले कभी उस ताल की काई नहीं फाड़ सके। और ताल की काई पर मच्छर रहते हैं, भनभनाते हैं—जुहर के छोटे-छोटे कातिल टुकड़े, लेकिन दूर से ताल कितना सुंदर लगता है, कितना मोहक.....जो भीतर-ही-भीतर सड़ चुका है..... गल चुका है.....दुर्गन्ध और घृणा की एक दलदल-सा, जीवन की कजुषित पराजय-सा.....निर्वीर्य.....निर्जीव.....

नारी का विक्षोभ

‘अभी चार-पाँच साल की ही बात है,’ कल्ला ने अपने चश्मे को उतार कर साफ करते हुए कहा—‘मैं तब लखनऊ यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। आप तो जानते ही हैं कि लखनऊ में कैसी बहार है।’

बीच ही में सिड़ी बोल पड़ा—‘ओह, बला की टंड है। चंदू, जरा, यार, ढङ्ग से बैठो ! कोई खुदगर्ज की हद है कि सारा कम्बल अपने चारों तरफ लपेट बैठे हो + भाई, वाह ?’

‘अम्मा, तो बिगड़ते क्यों हो ? आखिर कोई बात भी हो :), फिर मुड़कर चंदू ने कहा—‘हाँ, भाई कल्लाजी, फिर !’

कल्ला ने अपने दुशाले को ओर अच्छी तरह लपेट लिया। फिर कहा—‘लखनऊ की जिंदगी के तीन पहलू हैं, एक नवाबों का, दूसरा टुटपूँजिये का, और तीसरा गरीबों का। क्या बतायें, यार, हमारा समाज ही कुछ...’

‘खबरदार!’ सिद्दी ने जोर से डांट कर कहा—‘कह दिया है, बको मत!’

और चंदू ने अपने मटरगश्ती वाले लहजे से कहा—‘हाँ, भइ कल्ला जी, फिर?’

कल्ला फिर कहने लगा—‘देखो, यार, यह बोलने नहीं देता!’

चंदू ने सिद्दी की ओर देखकर कहा—‘खामोश!’

कल्ला ने कहना शुरू किया—‘जवानी किस पर नहीं आती, मगर जो उस पर आई, वैसी शायद हमने कभी नहीं देखी। मेरे साथ एक लड़का सूरज पढ़ता था। जात का वह कायस्थ था, पर था एक लफंगा। लफंगा से तुम लोग कुछ का कुछ न समझ लेंना। भाई, वक्त ऐसा है कि कालेज के लड़के चाहते हैं कि उनकी गिनती उस्तादों में हो। नेक-टाई, सूट, चमचमाते जूते, कालेज में कोई कुछ पहन लें पर बातें करने तक का जिसे सलीका नहीं, वह किसी काम का नहीं।’

‘सूरज की आँखें सदा लड़कियों को ही खोज में रहती थीं।’

‘संयोग की बात है,’ कल्ला ने आगे कहा—‘एक लड़की सविता को देखकर सूरज पागल हो गया।’

‘सूरज के बाप नहीं थे, माँ नहीं थी। हाँ, गाँव में उसके चाचा थे, चाची थीं। उनके बाल-बच्चे थे। और सबसे बड़ी एक और बात थी। चाचा जमींदारी का इंतजाम करते थे। सूरज उनका कहना मानने वाला लड़का था। लेकिन कानून की नजर से चाचा सूरज के चाचा हों, या सिकन्दर के चाचा हों, जायदाद का वह कुछ नहीं कर सकते थे; क्योंकि वही जायदाद का मालिक था।’

‘इस गारंटी के होते हुये सूरज को किस बात की चिन्ता होती !’

‘सविता देखने में जितनी सुंदर थी, उतनी ही चतुर भी थी। सबसे बड़ी बात उसमें यह थी कि वह कालेज के डिबेटों में खूब हिस्सा लिया करती थी। जब वह बोलना शुरू करती, तो कोई कहता, ‘इसका बाप भी ऐसी बातें नहीं सोच सकता ! जरूर कोई उस्ताद है। इसके पीछे, जो प्रेम के कारण अपने आपको छिपा कर इसे आगे बढ़ा रहा है; लेकिन इन बातों से होता जाता कुछ नहीं। अगर मान लिया जाय कि वह स्ट कर ही आती थी, तो रटने की भी एक हद हुआ करती है। आज तक हमने नहीं देखा कि ‘चंद्रकान्ता सन्तति’ के चौबीसों हिस्से किसी की जवान पर रखे हों। वह बोलने में एक भी भूल नहीं करती।’

‘उसके खयाल एकदम आजाद थे। विधवा विवाह, तलाक, सह-शिक्षा, स्त्री का नौकरी करना, गोया जिन्दगी के जिस पहलू में नारी की जो बात है, वह सविता की ही थी। हर बात पर उसके अपने अलग विचार थे।’

‘नये विचारों की वह लड़की शाम को लड़कों के साथ घूमने निकलती, पार्टियों में जाती, कविता लिखती। कविता का मजाक शायद आप लोगों को मालूम नहीं। कोई आपकी तरफ आँखें उठा कर देखता तक नहीं तो बस, कविता लिखिये !’

‘सूरज ने जब सुना कि वह कविता करती है, तब दौड़े-दौड़े उस्ताद हाशिम के पास गया। उस्ताद ने उसे देखा, तो सब कुछ समझ गये। उनके लिये क्या बड़ी बात थी ? कालेज का लड़का चटकदार कपड़े पहने उनके पास आया है। चेहरा गुन्ना नून है, मतलब आँखों में वह खुशी नहीं, वह उत्साह नहीं, जो जवानी का अपना लक्षण है, तो आखिर इसका क्या कारण है ? उस्ताद बिना पूछे ही भाँप गये। उस्ताद ने मुस्करा कर पीठ ठोकी। कहा—‘बेटा, शाबास ! मगर मैं एक गजल के बारह आने से कम नहीं लेता। हुलिया बताओ, जो टूटा-फूटा खयाल हो,

उगल जाओ, आला जवान में तरतीब से सजी हुई वह चीज दे दूँगा कि जिसके लिये वह होगी, वह तो रीभेगा ही, इधर-उधर बैठे हुये भी दो चार अपने आप रीभ जायेंगे।’

‘एक पाँच रुपये का नोट काफी था। सूरज लौटे, तो गुनगुनाते हुये। मुझे खुद ताज्जुब हुआ चार बजे गया था, तब एक शरीफ आदमी था। अब सिर्फ छः बजे हैं, मगर शायर हो गये हैं।’

‘आप शायद पूछेंगे कि सविता तो करती है कविता हिन्दी में और सूरज साहब करते हैं शायरी उर्दू में, ऐसा क्यों? तो सुन लीजिये कि कायस्थों में अधिकतर मर्द हिन्दी नहीं पढ़ते, औरतें पढ़ती हैं।’

‘सविता भी कायस्थ थी। उसके एक छोटी बहन, एक छोटा भाई और एक बड़े भाई थे। बड़े भाई ला में पढ़ते थे। इरादा था छूटते ही वकालत शुरू करने का।’

‘सविता अंधी न थी। उसे सूरज की बातें मालूम हो गईं लेकिन न जाने क्यों वह उसे एकदम टाले रही।’

‘सूरज सविता को गुजरते देखता, तो गजल पढ़ता। जब उसका कोई नतीजा नहीं निकलता, तो कहता, ‘खुदा समझे उस कमबख्त हाशिम से! ऐसे हँसकर चली जाती है, जैसे हम सिर्फ गजल पढ़ रहे हों।’

किन्तु प्रेम की कोई बात स्थिर नहीं है। उसके अनजाने के बन्धन किसी भी वक्त जंग बन कर कठोर से कठोर लोहे को भी चाट जा सकते हैं। दोनों ओर एक-सी परिस्थिति है। दोनों ओर एक ही सूनापन है। आप कहें यह बेवकूफी की ईतहा है। मैं कहूँगा असली प्रेम वही है, जिसे दुनिया बेवकूफी समझे, क्योंकि बेवकूफ वही है!’

चंदू ने टोककर कहा—‘हम समझ रहे हैं!’

कल्ला ने एक बार सिर हिलाकर कहा—‘समझ रहे हैं, तो बताइये क्या हुआ?’

सिद्दी ने कहा—‘नहीं, आप ही बताइये !’

कल्ला मुस्कराया । कहने लगा—‘तो हुआ वही जो होना था ।’

‘यानी ?’ सिद्दी ने चौंककर पूछा ।

‘एक दिन,’ कल्ला ने कहा—‘सविता के बड़े भाई मेरे पास आये ।’
कहा, ‘आप सूरज के गहरे दोस्तों में से हैं न ?’

मैंने कहा—‘जी हाँ, फर्माइये ।’

वह कुछ सोचते हुये बोले—‘कैसा लड़का है ?’

‘इसके बाद सोरों के पंडों की तरह मुझे सूरज के सात पुत्रों के नाम गिनाने पड़े । घर की हालत बतानी पड़ी ।’

‘भाई साहब ने बताया कि उन्होंने कुछ उड़ती हुई उनके प्रेम की कहानियाँ सुनी हैं ।’ मैंने कहा—‘जी वह सिर्फ कहानियाँ ही नहीं हैं ।’

‘मेरी तरफ गौर से देख कर भाई साहब मुस्कराये ।’ कहा—
‘सैर ! मैं औरतों की पूरी आजादी का कायल हूँ । मेरी बहन ही सही,
मगर जब मैं खुद चाहता हूँ कि कोई पसन्द की शादी करूँ, तो मेरा फज्र
है कि उन्हें पूरी मदद दूँ ।’

‘अब मेरी भी सविता से जान-पहचान हो गई । हमारी जो मामी हैं,
उनके भाई की बहन सविता की भाभी होने वाली थी । मगर अचानक
उसके गुजर जाने की वजह से वह शादी न हो सकी ।’

सिद्दी ने जम्हाई लेकर कहा—‘बड़ा लम्बा किस्सा है !’

‘लीजिये, साहब,’ कल्ला ने चिढ़ कर कहा—‘शादी हो गई सूरज
और सविता की । छोटा हो गया अब ?’

‘भाई तुम्हारे मुँह में धी-शक्कर !’ चन्दू ने सिगरेट पेश करते हुए
कहा—‘सिनेमा का-सा लुत्फ आ रहा है ।’

सिद्दी ने कहा—‘फिर ?’

कल्ला ने एक लम्बा कश खींचा, और धुआँ छूत की तरफ छोड़ कर
फिर कहना शुरू किया—‘उसके बाद एक दिन की बात है । सूरज, मैं

और मेरा एक और दोस्त, चंद्रकान्त, कालेज में घूम रहे थे। सविता की कालेज की पढ़ाई जारी थी। अब भी वह अपने भाई के यहाँ ही रहती थी, सूरज के यहाँ नहीं। शादी के तीन चार महीने बीत चुके थे।

‘शादी हो जाने से तमीज आ जाती है, यह हमने जरा कम देखा है। सूरज को आदतें बदस्तूर कायम रहीं। किंतु इस बीच में यह जरूर हुआ कि मेरा सविता के यहाँ आना-जाना काफी बढ़ गया।’

‘चंद्रकान्त मुँह का बक्की था, लेकिन दिल का बिलकुल पक्का। सौ लड़कियों को देख कर दो-सौ तरह की बोलियाँ निकाल सकता था, मगर वह जहर उसके दिल में नहीं था। सिर्फ गले के ऊपरी हिस्से में ही था।’

‘उस दिन चंद्रकान्त ने लड़कियों की एक भीड़ देख मुस्करा कर कहा—‘देख, यार, कल्ला ! कभी-कभी तो देख लिया कर !’

‘लेकिन हम चूँकि जरा ऊँचे खयालों के आदमी हैं, इन बदतमीजियों में हमारा दिल, आपकी कसम, बिलकुल नहीं लगता।’

‘जिस लड़की की नीली साड़ी थी, वह चंद्रकान्त की पुरानी जान-पहचान की थी। चंद्रकान्त ने हाथ से इशारा करते हुए मुझसे कहा—‘देखा ?’

‘मैंने देखा, और बिलकुल चुप। लड़की की पीठ मेरी ओर थी। भट से लाइब्रेरी में घुस गई। सूरज अपने ध्यान में मग्न पहचान नहीं पाया उसे। भट से चंद्रकान्त का हाथ पकड़ कर बोल उठा—‘चलो, जरा देखें तो हातिमताई की हिरोइन बनने लायक है या नहीं !’

‘पहचान तो मैं गया था, कि वह कौन है, फिर भी चाहता था कि सूरज को आज एक ऐसी नसीहत मिल जाय, जिसे वह ज़िन्दगी भर याद करे।’

‘लड़की की पीठ ही फिर नजर आई। सूरज ने दबी आवाज से कहा—‘काश, हमें भी दीदार हो जाता !’

‘लड़की ने मुड़ कर देखा। सूरज के काटो तो खून नहीं। वह सविता थी। उसकी थ्योरियाँ पहले तो चढ़ीं, लेकिन जब सूरज को पहचान लिया, तब न जाने क्यों उसे हँसी आ गई। भला बताइये, कोई स्त्री अपने ही पति को इस हालत में देखे, तो उसे कोफ्त तो होगी ही, लेकिन हँसी न आ जाय उसे, यह नामुमकिन है। रेल में कोई आपकी जेब काटे और आप जेबकट को पकड़ कर देखें कि वह तो आप ही का छोटा भाई है, तो हँस कर ही डाँटियेगा, या पुलिस के हवाले कर दीजियेगा।

‘हम तीनों लौट आये। चंद्रकान्त को मालूम नहीं था कि सूरज सविता का पति है। उसने कहा—देखा आपने? है मुझमें कुछ अक्ल? पूरी भीड़ में ले जाकर किसके आगे खड़ा कर दिया आपको? जनाब जेब में पैसा चाहिये, बस फतह है!’

‘सूरज मेरी तरफ देख रहा था। मैं अब चन्द्रकान्त को चुप होने का इशारा भी नहीं कर सकता था। वह बकता गया, ‘सारा कालेज जानता है कि आज से दो साल पहले जब यह लड़की आई० टी० में थी तब इसका एक मास्टर से दोस्ताना था। मास्टर आदमी काबिल था। पढ़ाई में तेज, हाकी खेलने में नम्बर वन और हिन्दुस्तान में चुनाव और प्रेम में कमाल कर दिखाने वाली चीज भी उसके पास थी, मेरा मतलब मोटर से है। यह दिन-रात उसके साथ मोटर में घूमा करती थी। भाई हैं इसके अपने अलग मस्त।’

‘कमबख्त बके जा रहा था। सूरज का सिर झुक गया। मैंने धीरे से इशारा किया कि चुप रह। मगर उसने समझा कि सूरज पर उस लड़की का प्रेम भूत बन कर सवार होने लगा है।’ उसने कहा—‘अर्माँ, छोड़ो भी ऐसी लड़कियों से तो दूर ही रहा जाय, तो अच्छा। यह हिन्दुस्तान है हिन्दुस्तान! जब अपनी देसी सरकार बनेगी, तो इन अधगोरों का क्या हाल होगा, यह पंडित नेहरू भी नहीं बता सकते। जाने दो,

वार ! समझदार आदमी हो । क्यों तुम पेम-वेम के चक्कर में फँसना चाहते हो ?

‘रात आ गई थी । सूरज बैठा सिगरेट फूँके जा रहा था । उसके चेहरे पर उदासी छाई थी । वह किसी घोर चिन्ता में पड़ गया था ।’
देर के बाद उसने कहा—‘कल्ला, चाचा को मालूम होगा यह सब, तो क्या कहेंगे ?’

‘मैंने सुना, और सोचकर कहा—‘क्यों, क्या चन्द्रकान्त को तुम्हारे चाचा का पता मालूम है ?’

‘नहीं, तो ।’

‘तो फिर उन्हें कैसे मालूम होगा ? मैं तो कहने से रहा और सविता भी क्यों कहने लगी । अब आप ही अगर इतने अक्लमन्द हों, तो मैं लाचार हूँ । कम-से-कम, भई, मैं तो इसमें कुछ नहीं कर सकता ।’

सूरज ने कहा—‘और तो कुछ नहीं, लेकिन मुझे एक बात कचोट उठती है । जाते वक्त चन्द्रकान्त ने कहा था कि जिस आदमी से इस लड़की की शादी होगी, वह भी एक ही काठ का उल्लू होगा ।’

‘गनीमत है, मैंने दिल में कहा ।’

‘एक काम करोगे ?’ सूरज ने कहा ।

मैंने पूछा—‘क्या ?’

‘सविता से मैं एकान्त में मिलना चाहता हूँ उसे कल यहाँ ले आओगे ?’

मैंने कहा—‘चेखुश ! यह क्या मुश्किल है ?’

‘सूरज ने एक लम्बी साँस को जैसे लाल किले से रिहा किया ।’ मैंने कहा—‘कल शाम को जाऊँगा । उसके यहाँ ।’

‘सूरज खुशनजर आता था । दूसरे दिन जब शाम को मैं उसके कमरे में घुसा, तो उसने हर्ष से मेरे कंधों को पकड़ कर कहा—‘क्या कहा सविता ने ?’

‘मुझे मन-ही-मन बड़ी हँसी आई। कानून की निगाह से, धर्म की रूह से, समाज के नियम से वही उस औरत का देवता है। मगर बात ऐसी करता है, जैसे शादी के पहले का प्रेम हो रहा है।’

मैंने कहा—‘बात जरा गौर करने की है। बैठ जाओ, तब कहूँगा।’

‘सूरज ने बैठ कर सिगरेट सुलगा ली।’

मैंने कहा—‘मैं गया था उसके पास।’ उसने कहा—‘ऐसे कैसे मिल सकती हूँ? अभी तो हमारा गौना भी नहीं हुआ।’

सूरज ने तड़प कर कहा—‘मुझसे मिलने के लिये गौने की जरूरत है? मास्टर से मिलने की तो किसी की जरूरत नहीं थी? कैसे-कैसे आदमी हैं, इस दुनिया में?’

मैंने कहा—‘मास्टर से सिर्फ मिलना-जुलना था। तुम्हारे यहाँ आने का मतलब स्पष्ट है। जमाना हँसेगा।’

‘और तब न हँसता था?’ सूरज ने मुझे घूरते हुये पूछा।

मैंने कहा—‘खूब हो, यार, तुम भी! हकीकत से दुनिया डरती है। अपना ही मन साफ न हो, तो तिनका भी पहाड़ नजर आता है।’

‘लेकिन सूरज की समझ में न आना था न आया।’ उसने मेज पर मुट्ठी मार कर कहा—‘तो एक महीने के अन्दर देख लेना!’

‘मुझे फिर हँसी आई, जैसे वह कोई कमाल कर रहा हो।’

‘लिख दिया सूरज ने अपने चाचा को। इजाजत लेना तो क्या एक तरह से इत्तला देनी थी। काम हो गया।’

‘महीने भर बाद गौना हो गया। सविता उसके घर में आ गई। अब सूरज कभी-कभी मुझे भी घूरने लगा, क्योंकि मैं बार-बार सविता की तरफदारी करता था। कहा कुछ नहीं। थोड़े दिन तक जिन्दगी ऐसे चली, जैसे चाय और दूध। लेकिन मैं आखिर कब तक चीनी बनकर स्वाद कायम रखता?’

‘एक दिन दबी जवान से सूरज ने सविता से उसके पहले जीवन के बारे में प्रश्न किया ।’

सविता ने कहा—‘आप ऐसी बातें करते हैं ? मुझे सचमुच बड़ा ताज़ुब होता है । आप लोग जो कुछ करते हैं, हम लोग तो उसका पाँच फी सदी भी नहीं कर पाते ।’

‘सूरज मन-ही-मन कुद गया । उसके हृदय में पुरुषत्व की वह जाय-दाद की मिलकियत वाली बात, जो उसमें कूट-कूट कर सदियों से भरी हुई थी, भीतर-ही-भीतर चोट खाये, साँप की तरह फुँकार उठी । स्त्री और पुरुष की क्या बराबरी ? वेद में जिक्र है, यज्ञ के खम्भे में अनेक रस्सियाँ बाँधी जा सकती हैं । हाँ, एक रस्सी से दो खम्भे नहीं बाँधे जा सकते । सूरज चुप हो रहा । मास्टर से सविता का क्या सम्बन्ध था, इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला । वह जो अँधेरा था, उसमें भीतर का अविश्वास नफरत का भयानक भेड़िया बनकर इधर-उधर घूमने लगा, कि कब शिकार की आँखें जरा झपकें, और कब वह झपट कर अपने दाँतों की नोकों को उसके गले में गड़ा दे और उसके शरीर को नोंच-नोंच कर तीखे नाखूनों से फाड़ डाले ।’

‘सीधी-सादी बात थी । अगर सूरज पूछ लेता, तो बात वहीँ की वहीँ साफ हो सकती थी । लेकिन अपना पाप ही तो समस्त निर्बलता की जड़ है ।’

सविता ने कहा—‘आप मुझ पर अगर शुरू से ही भरोसा नहीं करेंगे, और बाहर वालों की बातों का ही यकीन करेंगे, तो न जाने आगे क्या हाल होगा । माना कि आप मुझे अपनी बात पूरी तरह कहने का अवसर देंगे, तो भी क्या यह जरूरी है कि जो मैं कहूँ, आप उसे सच ही मानेंगे ? जाहिर ही है कि कोई अपने मुँह से अपनी बुराई नहीं करता । तो स्त्री होने के नाते जब आप मुझ पर किसी तरह भी विश्वास नहीं कर सकते, तो मैं अपने आप चुप हो रहूँ, यही बेहतर है ।’ फिर

तनिक रुक कर कहा—‘आपने तो कहा था कि आप मुझे किसी तरह भी अपना गुलाम नहीं बनायेंगे। पर मैं देखती हूँ, शादी के पहले जो आपने अपने खयालों को आजादी दिखाई थी, वह सब भूठ थी।’

सूरज उस समय तो हँस कर टाल गया। उसी शाम को उसके लिये एक नई रेशमी साड़ी भी लाया। सविता ने पहले तो प्रसन्नता दिखाई, फिर उसने कहा—‘इस महँगी में इसकी क्या जरूरत थी?’

‘तो क्या हो गया?’ सूरज ने प्रसन्न होकर कहा—‘पच्चीस जगह उठना-बैठना होता है।’

सविता ने उदास होकर पूछा—‘आप मेरी दिन की बातों का बुरा तो नहीं मान गये?’

सूरज ने आँखें झुका लीं। तीर मर्म पर जा कर गड़ गया था।

सविता ने कहा—‘आप मेरी बातों का बुरा न माना कीजिये। मुझे बचपन से ही ऐसे बक-बक करने की आदत पड़ गई है, क्योंकि माँ-बाप तो रहे नहीं, जो तमीज सिखाते। लेकिन एक बात का मैंने पक्का इरादा कर लिया है अब। काम वही करूँगी, जिसमें आप खुश हों। स्त्री के विचार वही होने चाहिये, जो उसके पति के होते हैं। आप मुझे माफ कीजिये!’ कह कर वह रो पड़ी।

सूरज ने स्नेह से उसके आँसू पोंछ कर कहा—‘तो रोती क्यों हो? छिः!’

‘वह चुप हो गई।’

सूरज ने मुझे जब ये बातें कहीं, तो मैंने कहा—‘यह है हिंदुस्तानी! इसे कहते हैं हार!’

‘क्या मतलब?’ सूरज ने कहा—‘कैसी हार?’

‘एक जंगल का आजाद परिंदा पिंजरे में पड़कर सोच रहा है कि पिंजरा ही जीवन का सबसे बड़ा स्वर्ग है!’

‘हूँ ?’ सूरज ने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और कहा—‘अभी अकेले हो न ! जब तुम्हारी बारी आयेगी, तब देखेंगे !’

‘मैंने कोई उत्तर नहीं दिया । बेकार बहस करने से फायदा ? मैं चुप हो रहा । पर मुझे ऐसा लगा, जैसे अँधेरे चलते-चलते किसी को एक-एक यह खयाल हो जाय कि उसका कोई पीछा कर रहा है, और धोखे से वार करके उसे मार देने की राह देख रहा है ।’

सिद्दी ने चंदू की ओर देखा । दोनों इस समय गम्भीर थे । कल्ला ने नई सिगरेट जला कर फिर कहना शुरू किया—‘अना-जाना पहले की तरह जारी रहा । तुम जानते हो, आदमी का दिल एक चट्टान की तरह है, जिसकी जड़ को शक की लहरें एक बार काटने में कुछ भी सफल हो जाती हैं तो एक-न-एक दिन ऐसा आता है, जब पूरी-की-पूरी चट्टान लुढ़क जाती है ।’

कालेज में सूरज ने मुझसे कहा—‘यार, आज तो शाम को गोमती में बोटिंग को चलेंगे । वहाँ से फिर सिनेमा । साढ़े चार बजे हमारे घर ही आ जाना ।’

‘जब मैं उसके घर पहुँचा, तो सूरज नहीं लौटा था । सविता ने गोल कमरे में ले जा कर मुझे बैठाया, और जा कर स्टोव पर चाय के लिये पानी चढ़ा दिया ।’

आकर पूछा—‘क्या खाते हैं आप ?’

मैंने कहा—‘सब-कुछ खाता हूँ, बशर्ते कि कोई खिलाये !’

‘हँस पड़ी वह ।’ बोली—‘खाने की तो ऐसी पड़ी नहीं, पर उनका इंतजार तो करेंगे न ?’

‘मैंने कुछ नहीं कहा ।’

‘आते ही होंगे,’ उसने मुस्करा कर कहा—‘बल्कि तो हो गया है । क्यों आज क्या कोई प्रोग्राम है ?’

मैंने कहा—‘जी नहीं बस शाम को नदी की सैर करने का विचार है। फिर सिनेमा.....’

उसने काटकर कहा—‘तो और क्या रात भर घूमना चाहते हैं?’ कह कर वह हँस पड़ी। कहा—‘आप जानते हैं, मैंने कालेज छोड़ दिया है।’

‘जी, ऐसा क्यों? मुझे सचमुच मालूम नहीं था।’

उसने मुस्कराते हुये उत्तर दिया—‘उनको मेरा कालेज जाना पसंद नहीं। कहते थे, बी० ए० तो कर चुकी हो, एम० ए० करके क्या तुम्हें नौकरी करनी है?’

‘उसके स्वर में एक तीव्र वेदना थी, जो उसके मुस्कराने के प्रयत्न से और भी कठोर प्रतीत हुई, मुझे ऐसा लगा, जैसे खिलौने सामने पैला कर कोई बच्चे से कह रहा हो, ‘खबरदार, जो हाथ लगाया!’

मैंने विवक्षित होकर कहा—‘आपने सूरज से यह नहीं पूछा कि उनको बी० ए० तक पढ़ने की क्या जरूरत थी?’

अब यह तो आप ही पूछिये! मुझमें तो इतनी ताब नहीं कि बार-बार उलटी-सीधी बातें सुनूँ।’

‘मैंने सुना। किन्तु मन का कौतूहल फिर भी जागा ही रहा। मैंने पूछा—‘अच्छा, एक बात पूछता हूँ, माफ कीजियेगा, बात जरा कड़ी है। आप कालेज में न होतीं, तो सूरज बाबू क्या आपको कभी देख सकते थे? और जब यही नतीजा निकलना था, तो चाचा से कह कर किसी बिलकुल ही पुराने ढंग की लड़की से उन्होंने क्यों नहीं शादी की!’

‘मन तो बहुत कुछ बकने का था, लेकिन हठात् चुप हो गया, क्योंकि उसी समय सूरज कमरे में आ दाखिल हुआ। उसका प्रवेश इतना आकस्मिक था कि एक बार हम दोनों ही चौंक उठे। सूरज की तेज आँखों ने इसे देख लिया।’

‘दूसरे दिन जब मैं सरब के यहाँ गया, तो बाहर बरामदे में ही

ठेठक गया।' अंदर से सूरज की आवाज आ रही थी, 'मेरी गैरहाजिरी में अगर कोई भी आये, तो दरवाजा खोलने की तो क्या, जवाब तक देने की जरूरत नहीं है।'।

फिर सविता की आवाज सुनाई पड़ी, 'बहुत अच्छा ! आपके चाचा जी आयें, तब भी !'

'उन्हें तो दूर करने की कोशिश करोगी ही ! अजी, बाहरी लोगों के लिये कहा है।'।

'तो मैंने किस-किसको बुलाया है ?'

'कल वह कौन आया था ?'

'मैंने बुलाया था कि आपने ? मैंने तो उल्टे आप पर एहसान किया कि आपके एक दोस्त की नजर में आपको गिरने नहीं दिया !'

'मुझे इन एहसानों की जरूरत नहीं !' सूरज का स्वर दृढ़ था, कठोर भी ।'

'आपकी जैसी मर्जी । मुझे किसी से क्या मतलब है ?'

'मैंने सुना । क्रोध से मेरी आत्मा छुटपटा उठी । बाहर ही से लौट लाया ।'

'इसके बाद मैंने उसके घर पर आना-जाता बहुत कम कर दिया । इम्तहान आ गये ।' कह कर कल्ला चुप हो गया ।'

'चुप क्यों हो गये ?' चंदू ने चौंककर पूछा ।'

'सिगरेट !' माथे पर बल डाल कर पूरी आँखें फाड़ते हुये कल्ला ने कहा—'जरा थक गया हूँ ।'

'तो, हुजूर, मालिश ?'

'नो, थैंक्स !'

सिगरेट जलाकर कल्ला ने कहा—'मुझे अपनी साइकिल वापिस मिल गई । जो लड़का मेरी साइकिल पहुँचाने आया.....'

सिद्दी ने काटकर पूछा—'इसी बीच में साइकिल कहाँ से आ गई ?'

‘यार, कोई मैं गढ़-गढ़ कर तो सुना नहीं रहा । अब जैसे जैसे याद आता जायगा, मैं तुम्हें सुनाता जाऊँगा । कोई सबक तो मैं आपको सुना नहीं रहा हूँ ।’—कल्ला बिगड़ कर बोल उठा ।

‘अच्छा, अच्छा !’ चन्दू ने बीच में पड़ते हुए कहा—‘तो साइकिल वाला लड़का ?’

‘हाँ,’ कल्ला ने कहा—‘उसके हाथ में एक खत था । खोल कर पढ़ा’—

‘प्रिय भाई,

अब हम गाँव जा रहे हैं । आपकी साइकिल वापिस भेज रही हूँ ।
धन्यवाद !

आपको,

सविता ।’

‘साइकिल उठाकर धर ली । मुझे मालूम हुआ कि साइकिल ही इस विद्रोह की जड़ थी ।’

‘मेरे एक दोस्त थे । साइकिलों की चोरी करना ही उनका रोजगार था । एक बार यह कानपुर से एक साइकिल चुरा कर लाये ।’ बोले—
‘बहुत दिन से सस्ती साइकिल माँगा करते थे । अब ले लो !’ मैंने कहा—
‘वाह, यार ! गोया हम मर्दन न हुए, औरत हो गये, जो आप जनानी साइकिल ला कर एहसान जता रहे हैं ! माँगी थी पतलून, लाये हैं साड़ी !’

बोले—‘भई, दिक न करो ! हमें कुछ नहीं चाहिये, सिर्फ पंद्रह रुपये दे दो ! फिर मामला तय होता रहेगा ।’

‘चंद्रकांत की भाभी आने वाली थी ।’ उसने कहा—‘अबे भाभी के काम आ जायगी । ले ले !’

‘एक दिन कालेज में सविता मिली । बात चलने पर उसने कहा’—

‘देखिये, घर हमारा है बहुत दूर। पैदल आते-आते दिवाला निकल जाता है।’

मैंने कहा—‘आपको साइकिल तो दे सकता हूँ, पर कुछ ही दिन के लिये।’

‘सविता प्रसन्न हुई।’

‘अब वह साइकिल पर बैठ कर कालेज जाने लगी।’

‘एक दिन सविता ने मुझे कालेज में रोक लिया। पैर में पट्टी बँधी थी। लँगड़ा-लँगड़ा कर चल रही थी।’

मैंने कहा—‘क्या हुआ?’

‘चोट लग गई।’

‘तो अब जो ठीक है?’

‘हाँ, एक तकलीफ़ दूँगी।’

मैंने कहा—‘फर्माइये।’

‘एक ताँगा ला दीजिये!’

‘क्यों, साइकिल क्या हुई?’

‘वह मैं वापस कर दूँगी।’

‘क्यों?’

‘कल वह आये थे हमारे घर। मैं लौट कर आई, तो भैया ने कहा—‘सविता, यह साइकिल तू कहाँ से ले आई?’ मैंने बताया। भैया ने कहा—‘सूरज को मालूम है?’ मैंने कहा, ‘उनसे तो कभी मिलती नहीं।’ भैया ने कहा, ‘आज सूरज आया था, कहता था,’ ‘चाचा आये थे। उन्होंने सविता को साइकिल पर बैठे देखा था।’

‘मैं सुनता रहा। सविता सुनाती रही,’ ‘चाचा ने बहुत बुरा माना था।’ भर्त्ता कोई बात है कि घर की बहू-बेटियाँ साइकिलों पर घूमा करें!’ भैया ने कहा—‘सूरज बाबू कह गये हैं कि सविता को साइकिल पर जाने से रोक दी दें।’ मैंने भैया से कहा, ‘आपने कहा नहीं कि

कालेज दूर है ?' 'कहा था,' भैया ने कहा, 'पर सूरज ने कहा कि यदि यह बात है, तो पढ़ाई की ही ऐसी क्या जरूरत है ?' मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने कहा, 'मैं तो साइकिल पर जरूर चढ़ूंगी।' तब भैया ने कहा, 'देखो, सविता, अब तुम बच्ची नहीं हो। शादी के बाद तुम्हें अपनी आँखें खोल कर चलना चाहिये ! यह बचपन अब काम नहीं देगा।' कह कर सविता चुप हो गई। फिर कहा—'भिजवा दूंगी आपकी साइकिल !'

मैंने कहा—'सुना है, आपका...'

'जी हाँ !' उसने लाज से सिर झुका कर कहा।'

'मेरा इशारा उसके गौने की ओर था।' वह तंगी में चली गई।'

पत्र हाथ में लेकर मैंने सोचा, 'अब वे गाँव में होंगे। साइकिल लाने वाला लड़का खत देने के कई दिन बाद आया था। उसकी मेहर-बानी थी, कोई नौकर थोड़े था वह।'

'एक-एक कर चित्र मेरी आँखों में घूमने लगे। यही थी सविता की सूरज के प्रति उपेक्षा। उसकी आदतों की वास्तविकता देख कर धीरे-धीरे उसका मन भीतर-ही-भीतर कुदृता जा रहा था।'

'किन्तु यौवन फिर भी प्यासा होता है। समाज के जिस बन्धन को हम विवाह कहते हैं, उसका कार्य-कारण रूप चाहे कैसा ही कठोर वास्तविक, आवश्यक क्यों न हो, किन्तु उसकी पृष्ठ-भूमि में मनुष्य-जीवन का वही संचित व्याकुल मोह है।'

'मैं नहीं जानता कि यह कहते हुए मैं कहाँ तक ठीक हूँ कि मनुष्य के समस्त अन्वेषण, उसकी कला, उसके विज्ञान, युद्ध और जो कुछ भी उसकी हलचल है, उसके मूल में वही एक हाहाकार करती नृणा है, जिसे वह समवेदना, सहानुभूति और प्रेम की मृगनृणा समझ रहा है।'

'सविता का जीवन उस तलवार की तरह था, जिसकी धार को

कोई कायर योद्धा पत्थर पर मार कर तोड़ देना चाहता हो। उसमें इतना साहस नहीं है, जो वह उसे उठाकर उससे समाज की धृष्ट व्यवस्थाओं पर चोट करे, और उसके खून से उसकी धार चमका दे।'

'सविता की बहन कभी-कभी जब कालेज में मिलती, तो पूछती कि मुझे दीदी की कोई खबर मिली। मैं कह देता कि, जब उसे ही कोई खबर नहीं मिली, तो भला मुझे कैसे कुछ ज्ञात हो?'

'अविश्वास की जिस तेज छुरी से सूरज के भय के सारे सम्बन्धों को जड़ से काटना शुरू किया, वही उसके सुख को काट-काट कर लहलुहान करने लगी। मैं बहुधा सोचता कि क्या उनका जीवन अब सुधर गया होगा?'

इसके बाद शाम को मैं इलाहाबाद में गंगा के किनारे टहल रहा था। सूरज डूब रहा था। लाल-लाल किरणें पानी पर उतर कर ललाई फैला रही थी। हवा में कुछ नमी आ गई थी।

एकाएक किसी ने आवाज दी—'मिस्टर कल्ला!'

मैं एकदम चौंक गया, सोचा, यहाँ कौन कमबख्त आ टपका? जान-पहचान वालों से मैं उतना ही चकराता हूँ, जितना सड़क पर बदतमीजी से भागती हुई भैंस को देख कर। मुड़कर देखा, आँखों को विश्वास नहीं हुआ। सोच सकते हो, कौन था वह?'

सिद्दी और चंदू ने सवालिया जुमला बनी भौंहों को उठा दिया।

'था कौन? वह सविता थी!'

'सविता?' दोनों ने आश्चर्य से कहा।

'जनाब! वह सविता ही थी।' कल्ला ने खाँस कर कहा—देख कर मेरी आँखें फैल कर रह गईं। वह अकेली थी। उसके शरीर पर सादी साड़ी और एक ब्लाउज़ था। माँग में सिंदूर नहीं था। माथे पर बिंदी जरूर थी। हाथों में चूड़ियाँ भी थीं। समझ में नहीं आया कि उस पैशन की पुतली में यह सादगी कैसे आ गई?'

मेरे मुँह से सहसा निकला—‘सविता देवी ! आप यहाँ ? अकेली !’

‘वह हँस दी ।’ कहा—‘क्यों आप इलाहाबाद से कब आये ?’

‘जी, मैं तो कल ही रिसर्च के सिलसिले में आया हूँ ।’

‘सामान कहाँ पड़ा है ?’

‘होटल में ।’

‘मेरे यहाँ ठहरने में आपको कोई एतराज तो न होगा ?’

मैंने कहा—‘आप कहाँ ठहरी हैं ?’

‘मैं तो यहीं रहती हूँ ।’

‘इसके बाद हम लोग थोड़ी देर तक टहलते रहे । कुछ रिसर्च के बारे में बातें हुईं । मुझे विस्मय हुआ, उसकी जानकारी की बातें सुन कर । पहले तो उसने कहा कि उसका तब विषय नहीं है, और उस पर बात करना उसके लिये एक अनधिकार चेष्टा है । पर, सच कहता हूँ, उसकी बातें सुनकर मेरी रूढ़ काँप गई । मैं अपने खास विषय पर उस सफाई से बात नहीं कर सकता, जिस पर सविता सिर्फ अनधिकार चेष्टा मात्र कर रही थी । फिर सोचा, अच्छा ही है कि सविता का यह विषय ही नहीं, वरना मुझे सात जन्म में भी डाक्टर बनना नसीब नहीं होता ।

‘अधियारी धिरने लगी ।’ सविता ने कहा—‘तो चलिये, अब आपके होटल चलें । वहाँ से आपका सामान लेकर चलेंगे ।’

मैंने कहा—‘कहाँ चलियेगा ?’

‘घर’ उसने हँस कर कहा—‘हँसिये नहीं । कुल एक कमरा है । उसे घर कह लीजिये, बँगला कह लीजिये, मेरे लिये काफी है । छोटी बहिन को लिखा था आने को, लिखा है उसने कि एक हफ्ते के भीतर ही आ जायेगी । मैंने तो भैया से भी कहा था कि प्रैक्टिस-वैक्टिस का खर्च छोड़ दें, और आकर यहीं कोई नौकरी कर लें । चलिये न !’

‘मैं लाचार हो गया । हम लोग चलने लगे ।

सविता ने कहा—‘एक वक्त था, जब घर की हालत बहुत अच्छी थी। मगर अब हालत ठीक नहीं रही।’

‘मैं सोच में पड़ गया। पारिवारिक जीवन की जो झंझटें अघेड़ औरतों को हुआ करती हैं, वे आज सविता को खाये जा रही थीं। कल वह एक लड़की थी। लजाया करती थी। आज उसकी बातों में एक बुजुर्गी थी, एक स्थिरता थी।’

‘जब हम होटल में पहुँचे, तो काफी ठण्डी हवा चलने लगी थी। आसमान में कुछ बादल भी इकट्ठे होने लगे थे। एक ताँगे में सामान रखा। हम दोनों बैठ गये। सविता ने घर का रास्ता ताँगेवाले को समझा दिया, और फिर मुझसे बातें करने लगी। अबकी उसने मेरे विवाह के पहलु पर बात शुरू कर दी।’

‘उसकी बातों में कोई सिलसिला नहीं था। उसके मन में जैसे इतना कौतूहल था, इतनी सम्बेदना थी कि वह मेरे विषय में कुछ जान लेना चाहती थी।’

‘घर पहुँच कर उसने बत्ती जला दी, और खाने का इंतजाम करने लगी। चूल्हे पर कुछ चढ़ा कर जब वह बाहर आई, तो उसमें और हिन्दुस्तानी घरों की औरतों में कोई फर्क न था। कल वह शायद इन औरतों से नफरत करती थी।

‘मैं बैठा-बैठा सिगरेट पीता रहा।’ सविता ने कहा—‘कहाँ सोइ-येगा? बरामदा तो है नहीं। छत पर तो शायद रात को आप भोंग जायेंगे।’

‘आप क्या कमरे में ही सोती हैं?’

‘जी, नहीं, जब गर्म होती है, तो ऊपर सो रहती हूँ। चटाई बिछाई और बिस्तर लगा दिया।’ फिर रुककर बोली—‘सच, आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी। आप ही तो हमदर्द थे मेरे उस जीवन में, जिससे सब घृणा करते थे, और वह सच्चा विश्वास सबकी आँखों में

व्यभिचार का पाप बनकर खटका करता था। अरे...मैं तो भूल ही गई। कहीं दाल उफन न गई हो।’

‘फिर वह उस छोटी-सी रसोई में घुस गई। मैं कुछ-कुछ समझने लगा।’

‘उसके बाद जब वह लौटी, तो मेरे सामने थाली धर दी। फिर अपने लिये खाने का सामान लगा लाई।’

‘हम दोनों खाने लगे।’

खाते-खाते हठात् उसने पूछा—‘कैसा खाना बनाती हूँ?’

मैंने कहा—‘अच्छा तो है।’

धीरे से उसने कहा—‘वह लोग कहते थे कि मैं खाना बनाना भी नहीं जानती हूँ!’

‘वह ‘हूँ’ मेरे कानों में सूई की तरह चुभ गई।

मैंने कहा—‘कौन कहते थे?’

‘वे कहते थे,’ उसने कहा—‘मैं तो मेम हूँ। बेवकूफ! वे क्या जानें कि मेम भी अपने कायदे से अपना खाना बनाना जानती हैं। फिर क्या खाना अच्छा बनाना औरतों के लिये जरूरी है?’

मेरे मुँह से निकला—‘फिलहाल तो है ही। वैसे बना लेना काफी है। उस्ताद तो खाना बनाने में औरत कभी नहीं रही। पाक तो दो ही प्रसिद्ध हैं—भीम-पाक और नल-पाक और दोनों ही पुरुष थे।’

‘वह जोर से हँसी।’ उसने कहा—‘वहाँ नौकरानी थी, पर काम तो बहू ही करेगी। करने को तो मना नहीं किया मैंने। पर कोई तुल जाय कि मेरा बनाया उसे पसन्द ही नहीं आयेगा, तो कोई कितना भी अच्छा बनाये, क्या नतीजा निकलेगा? बस, वही हुआ जो होना था।’

‘हम लोग खा चुके थे। छत पर चटाई बिछाकर बैठ गये। मैंने अपनी सिगरेट जला ली।’

‘मतवाली हवा थी। सिर पर पीपल खड़खड़ा रहा था। हम दोनों उस अंधेरे में पास-पास बैठे थे।’

सविता ने कहा—‘अच्छा, सच बताइये, आपको यह सब देखकर कुछ ताज्जुब नहीं हुआ?’

मैंने कहा—‘नहीं।’

‘वह कुछ देर मुझे घूर कर देखती रही।’ फिर कहा—‘यह अंधेरी रात, यह सनसनाती हवा और मैं किसी दूसरे की पत्नी! ताज्जुब नहीं होता तुम्हें, कल्लाजी? सोचते नहीं कुछ मेरे बारे में?’

वह हँसी। फिर गम्भीर हो गई। कठोर स्वर में कहा—‘विश्वास नहीं कर सको, तो न करना। किन्तु यदि घृणा ही तुम्हारे आश्वासनों का एकमात्र आधार है, तो भी मैं तुमसे घृणा नहीं कर सकूँगी।’

मैंने रोक कर कहा—‘सविता देवी!’

‘सविता का बाँध टूट गया। आँखों में आँसू छलक आये, जिन्हें उसने मुँह मोड़ कर शीघ्रता से पोंछ लिया। जब उसने मेरी ओर देखा, तो हँस रही थी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।’

सविता ने कहा—‘एक दिन हम दोनों रात को बैठे बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा—‘सविता अब तो परीक्षा भी हो गई। तुम्हारा क्या विचार है? गाँव चला जाय, तो कैसा?’ ‘मैं नहीं जानती, उन्होंने क्या सोच कर यह प्रस्ताव किया। गाँव तो दूर न था, किंतु मैं गाँव जाने का नाम सुन कर ही डर-सी गई। न जाने मेरी आत्मा में एक अनजान यातना की भावना कैसे भर गई। किंतु मैंने कहा ‘चलिये, मुझे कोई उज्र नहीं।’

‘तीसरे दिन हम चल पड़े। मैंने एक बसंती रंग की रेशमी साड़ी पहन रखी थी पैरों में ऊँची पैंडियों की सैंडल थीं। बस, और कोई खास बात न थी।

‘हमने इक्का कर लिया । इक्केवाले ने मुझे घूर कर देखा ।
उनसे पूछा—‘सरकार कहाँ चलूँ ?’

‘उन्होंने पता बताया । उसी गाँव का इक्केवाला भी था । फौरन
उन्हें पहचान गया । फिर उसने एक बार दबी नजरों से मेरी तरफ मुड़
कर देखा, और मुस्करा कर अपनी तरफ की बोली में कहा—‘सरकार
की पढ़ाई तो खतम हो गई ?’

‘उन्होंने कहा—‘हाँ ।’

‘इसके बाद वे कुछ चिन्ता में पड़ गये । उनके मुख पर स्पष्ट ही
कुछ व्याकुलता के चिन्ह थे । मैंने अंग्रेजी में पूछा—‘आप इतने परे-
शान क्यों है ?’

उन्होंने मेरी ओर देख कर एक लम्बी साँस ली । शायद एक बार
पूरे शरीर में एक कँपकँपी सी दौड़ गई । उन्होंने बहुत धीरे से अंग्रेजी
में ही उत्तर दिया— ‘मैंने गलती की कि तुम्हें यहाँ इस तरह ले आया ।
अब भगवान के लिये कम-से-कम कुछ तो शरम करो ! सिर तो
ढँक लो ।’

‘मैं मन-ही-मन बहुत विचलित हुई । मैंने भला कब मन किया
था । किंतु शहर में तो इन्हें यह सब बुरा नहीं लगता । गाँव की तरफ
पैर उठाते ही क्यों कुछ से कुछ होने लगे ? जैसे मैं कोई अंग्रेज थी कि
मुझे हिंदुस्तान में शरम करने की रीति भी नहीं मालूम थी । शरम का
विचार भी कैसा अजीब लगता है । मदरासी औरतें कभी सिर नहीं
ढकतीं, तो क्या वे सब बेशरम हैं ?

‘खैर, एक सिर क्या मेरे दस सिर होते, तो भी मैं उन्हें ढँक लेती ।
एक दिन मैं तो किसी देश के रीति-रिवाज, अच्छे हों या बुरे हों, कभी
बदल नहीं जाते ।

‘इक्का बढ़ा जा रहा था । उस राह के दसके याद आते ही अब

भी कमर में दर्द होने लगता है । पहली ही बार मुझे मालूम हुआ कि गाँव की जिंदगी कितनी कठिन है ।

‘उसके बाद हम लोगों ने बैलगाड़ी पकड़ी । जैसे-जैसे गाँव पास आता जाता था, उनका चेहरा फक पड़ता जा रहा था । लगता था, जैसे उन्हें मुझ पर असीम क्रोध आ रहा हो । मेरा मुँह खुला ही था । यह मुझे वास्तव में बहुत ही घृणित मालूम दिया कि मुँह पर मैं एक लम्बा-सा घूँघट खींच लूँ और फिर उनकी ऐड़ियों पर नजर गड़ाये चलूँ ।

‘रास्ते में जो भी गाँव वाले मिलते, हमें खुली बैलगाड़ी में बैठे आपस में एक-दूसरे की ओर देख कर वे मुस्कराते । वह यह सब देखते, और जल-भुन कर खाक हो जाते । कितु करते क्या ? एक बार तो मुझे लगा, जैसे अब एक चाँटा पड़ने ही वाला है । लेकिन मुझे स्वयं उनके ऊपर अचरज हुआ । यह आदमी शहर में क्या-क्या रंग नहीं दिखाता, जो यहाँ बिल्कुल ही फक पड़ता जा रहा है ? गाँव के बहुत-से छोटे-छोटे लड़के और लड़कियाँ हमें देख कर कौतूहल से इकट्ठी हो गईं ।’ मैंने उनकी बातों को सुना । वे आपस में कह रहे थे—‘छोटे मालिक शहर से पतुरिया लाये हैं । आज कोठी में नाच होगा...’

‘उनके आनन्द की सीमा न रही । उनके जीवन का यह भी एक बड़ा स्वर्ग है कि मालिक के घर रंडी नाचेगी और वह देख सकेंगे । मेरे मन में तो आया कि धरती फट जाय और मैं समा जाऊँ । वह घृणित शब्द ‘पतुरिया’ मेरे हृदय पर हथोड़े की-सी भयानक चोट कर उठा । आज उन अज्ञानी, देहाती, अनपढ़ बच्चों ने उस संस्कृति का पर्दा फाड़ कर रख दिया था, जो उनके मालिक ने उन्हें दी थी ।

‘मैंने देखा, वह चुप बैठे थे, जैसे यह व्यक्ति मोम की एक पुतली मात्र है । मेरी आँखों में आँसू उबल रहे थे, जिन्हें मैं जबरन अपने होंठ काट कर रोक रही थी । और बच्चों की खुशी का वह कठोर शब्द

‘पतुरिया’ मेरे सारे जीवन के संचित पुण्य और अभिलाषाओं के साथ एक भीषण बलात्कार कर रहा था।

‘शहर में कोई यदि मुझे यही बातें कहता, तो मैं उसकी आँखें नोंच लेती। किन्तु वहाँ मैं कुछ भी नहीं कर सकी। वास्तव में यह सोलहवीं सदी के स्थिर अन्धकार का बीसवीं सदी की चलती किरन पर हमला था।’

‘दिन भर मुझे लम्बा घूँघट खींच कर रहना पड़ता था। किन्तु मैंने कभी कुछ नहीं कहा।’

‘घर में उनकी चाची, उनकी बुआ, बुआ की बहिन की लड़कियाँ और एक बूढ़ी मामी थीं। उन बुढ़ियों को जैसे एक नया शिकार मिल गया था।’

जब कभी वह मुझे मिलते, मैं कहती, ‘शहर चलिये ! यहाँ तो मन नहीं लगता,’ तो वह कहते, ‘कुछ दिन तो रहना ही होगा। सदा तो यहाँ रहना नहीं। फिर इतनी धबराती क्यों हो ? थोड़े दिन ऐसे ही रह लो !’

‘गाँव में अँधेरा हुआ नहीं कि बस ब्लैक आउट हो गया। जहाँ लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते, जहाँ लोग दिन में इतनी कड़ी शारीरिक मेहनत करते हैं कि रात को कोशिश करके भी नहीं जाग सकते, वहाँ रोशनी जले भी तो किसलिये ? वहाँ तो बस आदमी ने प्रकृति से बस इतना संघर्ष किया है कि सिर पर एक छप्पर छा लिया है और कुछ नहीं।’

‘घर की बगल में अपना ही एक छोटा मकान था। उसमें उन्होंने लगभग तीन-चार साल पहले एक पुस्तकालय खोला था। उसमें सैकड़ों पुराने उपन्यास भरे हुए थे। दैनिक पत्र भी आता था।’

‘सुबह चाचीजी मुझे सबके उठने से पहले उठा देतीं। मैं तब भाड़ू-वाड़ू लगा देती, ताकि जब लोग उठें, तो मुझे उनके सामने यह काम करने की नौबत न आये। फिर मैं खाना बनाने में जुट जाती थी।

सबको खिलाते-पिलाते प्रायः तीन बज जाते । फिर शाम को खाना बनाने की तैयारी होती । रात को जब सब खा चुकते, तब प्रायः नौ बज जाते । उसके बाद पैर दाबने की रस्म के लिये तैयार रहना पड़ता । जितनी स्त्रियाँ थीं, सभी के पैर दाबने पड़ते । आप ही बताइये, किसके पैर में दर्द नहीं होगा जब कोई आदमी पैर दाबने को खुद-ब-खुद पहुँच जाय ?

‘साढ़े ग्यारह बजे रात को मैं एक दिन उपन्यास लेकर, लालटेन जला छत पर बैठ गई ।’ दूसरे ही दिन चाची ने कहा—‘बहू, तुम बहुत रात तक पढ़ती हो । लोग बाग कहते हैं कि सिर खोले ही बहू छत पर बैठती है । यह तो भले आदमियों के घर के कायदे नहीं ! रात को देर तक पढ़ोगी, तो सुबह उठने में भी देर हो जाया करेगी ।’

‘मैं खून का घूँट पीकर रह गई ।’

‘रात को मेरा बिस्तर भी उसी छत पर लगाया जाता था, जिस पर और औरतें सोया करती थीं । यह मैं मानती हूँ कि कभी-कभी मैं पढ़ने के कारण देर तक जागती रहती, और उठने में देर हो जाती । कभी-कभी रात को मैं इतनी थक जाती कि फिर किसी के पैर-वैर दबाने नहीं जाती । इस पर एक हँगामा उठ खड़ा होता ।’ ‘बहू क्या हुई, आफत का परकाला हो गई । भला कोई बात है ? यह कोई कायदा है ?’

‘मैंने अब इधर-उधर ध्यान देना छोड़ दिया । रात को पढ़ने के बाद इतनी थकावट आ जाती कि जाकर बिस्तर पर एकदम बेहोश हो जाती, और किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता । जब दो-चार दिन ऐसे ही बीत गये, तो अचानक एक रात उनके सिर में दर्द होने लगा । मैं मर-हम लेकर गई । किन्तु यह दर्द कैसा दर्द था, वह मुझसे छिपा नहीं रहा । दर्द की भी कोई हद होती है । रोज रात हुई नहीं कि उनका दर्द शुरू हो गया और मुझे उसी तरह वहीं रह जाना पड़ता । हम दोनों को दूसरी छत पास होने के कारण कोई स्वतन्त्रता नहीं थी ।’

‘डाक्टर कहते हैं, ईंसान को जवानी में कम से कम छः घंटे सोना

चाहिये । किन्तु मेरी रात तीन घंटे की हो गई थी । उस थकान के कारण मुझमें एक प्रकार का चिड़चिड़ापन पैदा हो गया ।’

एक रात उन्होंने कहा—‘तो तुम पढ़ती क्यों हो ?’

‘मैंने कोई उत्तर नहीं दिया ।’

उन्होंने कहा, ‘भारतीय नारी सहनशक्ति की एक प्रति-मूर्ति समझी जाती है ।’

‘मैंने ऐसी रटी हुई बहुत-सी बातें सुनी थीं । कहा कि आप मुझे शहर में ही रखें, तो अच्छा हो ।’

‘उन्होंने देर तक सोचा ।’ फिर कहा, ‘शहर तो चलना ही है । लेकिन जिस गाँव के कारण शहर है, उसमें भी तो रहना होगा ।’

‘मैं फिर चुप हो गई ।’ देर के बाद मैंने कहा, ‘आप बुरा न मानें, तो एक बात कहूँ ।’

उन्होंने कहा, ‘कहो !’

मैंने कहा, ‘गाँव की यह जिन्दगी आपको जैसी भी लगे, मुझे तो अच्छी नहीं लगती । इससे तो यह अच्छा हो कि आप अपने पैरों पर खड़े होकर कमायें, खुद खायें और मुझे भी खिलायें । गरीबों का खून चूसकर, अपने स्वार्थों को कायम रखने के लिये उन्हें धोखा देकर, अपने जीवन का आदर्श खो देना मुझे तो अच्छा नहीं लगता !’

‘वह चौंक उठे ।’ उन्होंने कहा, ‘तुम्हारी हर बात में कुछ नफरत है । प्रत्येक स्त्री [तकलीफों के होते भी अपने पति से अवश्य मिलना चाहती है । पर तुम हो कि किसी कहानियाँ पढ़कर सो जाती हो । तुम्हें कभी मेरी चिन्ता भी नहीं हुई । इसी से सिर दर्द के बहाने तुम्हें बुलाना पड़ता है’ फिर एक लम्बी साँस खींचकर कहा, ‘तुम्हें न जाने क्या हो गया है ?’

‘मुझे हँसी आ गयी । मैंने मजाक में ही कहा, ‘आपसे नफरत भी

करूँगी, तो क्या हो जायेगा ? आप फिर मेरे पति न रह कर कुछ और हो जायेंगे क्या ?

‘उन्होंने मुझे धूर कर देखा और कहा, ‘तो तुम समझती हो कि तुम फँस गई हो । अर्थात् तुम मुझे प्यार नहीं करतीं ?’

‘मैं बड़े चक्कर में पड़ी । किसी से कोई कैसे कहे, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ । सच, मेरा तो मुँह नहीं खुलता । एकदम बड़ी लाज-सी मालूम देती है । मैंने कोई उत्तर न देकर एकदम चुप्पी साध ली । उन्हें जर्मीदारी की शान के विरुद्ध कही हुई बात अच्छी नहीं लगी । कहने लगे, ‘खानदान की इज्जत को कायम रखना पहला फ़र्ज है, सविता !’

‘मैंने कहा, ‘लेकिन अब तो सवाल ही दूसरा है । कल तक आप दूसरों को पिटवाने में अपनी शान समझते थे, आज वह बर्बरता बढ़ गई है । आप स्वतन्त्रता के आदर्श को लेकर चले थे और यहाँ रीति-रिवाजों की खूनी धारा में सब-कुछ बहाते चले जा रहे हैं । खानदान की इज्जत क्या इसी में है कि आप इसी तरह बेकार पड़े रहें, दूसरों के पसीने की कमाई खाया करें ? क्या आप जिन रस्मों को खानदान की इज्जत कह कर पाल रहे हैं, आप उसी गँवारपन में विश्वास करते हैं ?’

‘वह धूरते रहे । कहा, ‘तुम्हारी बातें कैसी रटी हुई-सी लगती हैं । यहाँ कोई डिबेट हो रहा है क्या ?’

‘मैंने कहा, ‘आप इतनी बड़ी बात को हँसकर टाल रहे हैं ? आप में मुझे यकीन हो गया है, साहस की कमी है ।’

‘उन्होंने कहा, ‘धीरे-धीरे बात करो, सविता ! कोई सुन लेगा ।’

‘मुझे बहुत ही बुरा लगा ।’

‘उन्होंने कहा, ‘अच्छा मान लो तुम्हारे पीछे सब को छोड़ दूँ ।’

‘मैंने कहा, ‘ऐसा आप सपने में भी खयाल न करें । अगर आपने ऐसा सोचा है, तो आपने बड़ी भारी गलती की है । मैं अपने लिये नहीं कहती । मैं उस विचार-स्वातंत्र्य और आदर्श का विचार करके कहती

हूँ, जिसके आप पहले स्वयं कायल थे। घर छोड़ने को तो मैंने नहीं कहा। मैंने सिर्फ कहा कि पुराने ढर्रे की भूठी रस्मों को छोड़कर हम और आप वही करें, जो आज तक कहा है।’

‘उन्होंने कहा, ‘ऐसा नहीं हो सकता, सविता ! भले ही तुम आदर्शों की दुहाई दिये जाओ, लेकिन जो कुछ होगा, उसे देखकर लोग समझेंगे कि एक औरत की बात सुनकर घर छोड़ चला गया कपूत। और यह मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा?’

‘एक बार मेरा रक्त क्रोध से खौल उठा। कितना भारी कायर था वह व्यक्ति, जो अपने जीवन की सारी भूट का सहारा ले अपनी प्यास बुझाने के लिये मुझे प्रेम की आड़ में विलास चाह रहा था।’

‘सुबह की सुफेदी झलमलाहट पर मुर्गे की गूँजती हुई बाँग सुनाई दी। मैं उठ गयी, क्योंकि मेरे भाड़ लगाने की बेला आ गई थी।’

‘मैंने एक बार करुण आँखों से उनकी ओर देखा, किन्तु वह भपकी ले रहे थे।’

‘मैं उठ गई। वह सो गये।’

‘उस दिन मेरा शरीर थकान से चूर-चूर हो रहा था। काम तो करना ही था। यदि किसी से कहती कि मैं सोना चाहती हूँ, रात को सो नहीं सकी, तो जो सुनता वही मुझे निर्लज्ज समझता। लज्जा और संकोच ने मेरी जीभ को तालू से सटा दिया और मैं बराबर काम करती रही।’

‘दोपहर को जब मैं कमरे में बैठी थी, मुंशीजी पुस्तकालय बन्द कर चाभी देने भीतर आये। उस समय वहाँ कोई और नहीं था। मुंशीजी मुझे देखकर ऐसे घबरा गये, जैसे कमरे में कोई सप पड़ा हो। मैंने कहा, ‘चाभी मुझे दे जाइये, और कल का अखबार आपने क्यों नहीं भेजा?’

‘मुन्शीजी ने लजाते हुये सिर नीचे करके जवाब दिया, ‘भिजवा दूँगा ।’

‘वह चले गये । इसी समय मैंने उनकी बुआ की बहिन की बेटी का कर्कश स्वर सुना—‘आय-हाय ! देखो तो, कैसी लपर-लपर जीभ चला रही है ! जरा भी तो हया शर्म हो !’

‘मैं एकाएक काँप उठी । उत्तर दिया बूढ़ी मामी ने—‘अच्छा किया, दुल्हन, बहुत अच्छा किया ! मुन्शीजी को देखकर तेरी चाची या सास तक घूँघट खींचकर चुप हो जाती हैं । एक नहीं उनके अनेक बच्चे हो चुके हैं । तेरे एक आध तो हो जाता ।’

‘एक तीसरी आवाज सुनाई दी—‘अजी हटो, मामीजी ! कोई बात है । उल्टे मुन्शीजी शरमा रहे थे । और दुल्हन रानी हैं कि मुँह तक नहीं ढँका गया । छिः ! यह भी कोई बात है ?’

‘बुआ की भाँजी ने कहा—‘पढ़ी लिखी हैं, जी ! तुम तो हो गँवार ! शहरों का यही रिवाज है । पराये मर्द से जब तक हँस-हँसकर बातें कर न ले, तब तक खाना कैसे हजम हो ? जाने, बेचारी कितने दिन के बाद आज यह मौका पा सकी है ।’

‘इसी समय चाची आयीं । उन्होंने भी सुना । तुरंत आ गई मेरे कमरे में । हाथ मटका कर कहा—‘हाय, दुल्हन, यह तूने क्या किया ? भाड़ न लगी, न सही, पैर न दबाये तूने बड़ी बूढ़ियों के ! तेरी बात तेरे ईमान पर ! हमने कभी तुझे कुछ कहा हो, तो हमारी जवान में कीड़े पड़ जायँ ! मगर यह क्या है कि पढ़ाई-लिखाई ने तेरी चुटिया के नीचे से अकल ही साफ कर दी ?’

वह क्रोध से हाँफ रही थीं । मैं चुप बैठी रही, जैसे मैं जीवित नहीं । मुझे मालूम हो रहा था कि जो कीड़े मेरी नसों में खून बनकर भाग रहे थे, वे अब धीरे-धीरे जमने लगे थे, मरने लगे थे, और अब वे सब मर जायेंगे, और उन्हीं के साथ मैं भी मर जाऊँगी । मेरे मुख पर पीलापन

छा गया। हाथ-पाँव काँपने लगे। उस कठोर लांछन से मुझे प्रतीत हुआ कि वास्तव में अब जिन्दा तो हूँ ही नहीं, लेकिन यह लोग हैं कि मेरी लाश पर थूकने से भी बाज नहीं आते।

‘चाची ने फिर कहा—‘मामीजी, दुहाई है तुम्हें ! इस घर में आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ ! आज तक किसी ने इस घर की औरतों की शकल देखना तो क्या, यह भी नहीं जाना कि उनकी आवाज कैसी है ! क्या कहेंगे गाँव के लोग सुनकर ? जब जमींदार के घर ही से धर्म उठ जायगा, तब लोगों के घर में क्या रहेगा ? हमने सोचा था, अभी लड़की है, सब ठीक हो जायगा। लेकिन मामीजी, जिसके मुँह खून लगा हो, उसकी पानी से प्यास बुझेगी ?’

मैं जोर से रो उठी। मैंने चिल्ला कर कहा—‘किसका खून लगा है मेरे मुँह ? किस काम से इनकार किया है मैंने, जो आप मुझ पर दोष लगा रही हैं ?’

‘ओ हो !’ चाची चिल्ला उठी—‘दुल्हन रानी पर दोष लगा दिया मैंने ! दुश्मन तो मैं हूँ ही ! इसी से दुश्मनी निकालने के लिए ही तो मैंने सूरजकी माँ के मरने पर उसे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया था !’

‘मामीजी ने डाँट कर मुझसे कहा—‘अरी, बेहया ! क्या करूँ, समझ में नहीं आता ! जमाना बदल गया है, वर्ना पुराने वक्तों में इतनी बात कहने पर सारे दाँत भाड़ दिये जाते। मर्द नहीं रहे, बेटी, वर्ना मजाल है औरत की कि ‘आ’ से ‘ऊँ’ कर जाय ?’

‘बुआ ने कहा—‘सूरज ने सिर चढ़ाया है इसे। जूती सिर पर धरेगा, तो धूल लगेगी ही। हम तो जानते ही थे शहर की लड़कियों के गुन। क्या किसी से छिपे हैं ? देखो न उस लछमन को ! जात का नोच ही है, मगर राजी नहीं हुआ कि शहर की लड़की आ जाय उसके घर में

बहू बनकर । अरे, जो नीच जातों ने नहीं किया, वह तुमने किया ! मेरे राम, इस घर को अब क्यों भूलते जा रहे हो ?

‘और सचमुच शाम तक खबर गाँव भर में फैल गई । मैं कमरे में छिप कर बैठी रही । समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ । खाना बनाने गई, तो मुझे सबने लौटा दिया यह कहकर कि ‘जा हमें आबरू बेंच कर सुख नहीं भोगने हैं !’

‘मैं लौट आई । चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा नज़र आता था । एक ही आशा थी कि कम-से-कम वह तो मुझे अपराधी न समझेंगे । कम-से-कम वह तो मेरी रक्षा करेंगे ?

दिन बीत चला । मेरी किसी ने सुधि तक नहीं ली । किसी ने खाने तक को नहीं पूछा ।

रात को जब वह आये, तो शिकायतों का ढेर लग गया । ईंटों की बनी वे दीवारें शायद नहीं रहीं, क्योंकि बातों के तीर उन्हें छेद-छेद कर मेरे अन्तस्तल में बार-बार गड़ने लगे । और मुझे दर्द से चिल्लाने का तो क्या, कराहने तक का अधिकार नहीं था ।

‘चाची ने कहा—‘सूरज, इसे तो तू शहर ही ले जा, बेटा ! इसमें घर-गृहस्थी में बहू बनकर रहने का सलीका नहीं है बिलकुल !’

‘मामीजी ने भीतर से चिल्ला कर कहा—‘जाने कौन जात-कुजात उठा लाया है । अच्छा ज़माना आया है !’

‘क्या बात है आखिर ?’ उन्होंने घबरा कर पूछा ।

‘और जैसे यह कुछ हुआ ही नहीं ! चाची ने ताना मार कर कहा—‘तो क्या राह में गाने-बजाने की जरूरत थी ? भैया सूरज, हम तो कुछ कहते नहीं, पर खानदान में अपने चाचा के बाद बस तू ही सब का मालिक है । हमने तो तुझे अपना बेटा मान कर ही पाला है । चाहे तो रख, चाहे छोड़ दे ! हमारा क्या है, रो लेंगे ! मगर तेरी तो गत बन जायेगी ।

‘वह घबराहट से बोल उठे—‘पैर नहीं दाबे ? भाड़ू नहीं दी ? खाना नहीं पकाया ?’

‘कौन कहता है, मैया’ चाची ने फिर कहा—‘कसम है मेरे बच्चे की, जो आज तक कभी हम कोई ऐसी बात जवान पर भी लाई हों । इसका तो पढ़ना गजब है, बेटा ! पढ़ेगी तो आधी रात तक, और यह भी नहीं कि रामायण, उल्टे वह किस्से-कहानी तोता मैना के’

‘मैंने सुना वह कुछ बोले । फिर उनके पैरों की चाप सुनाई दी । जैसे वह वहाँ से चले गये हों ।

‘स्त्रियाँ अब भी आपस में फुस-फुस किये जा रही थीं । और मैंने सोचा, कमबख्त पढ़ाई न हुई मेरी मौत हो गई !

‘जिस समय उन्होंने कमरे में प्रवेश किया, अँधेरा छा रहा था । उनके पीछे-पीछे ही लालटेन लिये चाची थीं ।

‘वह मेरे पास आ गये । कठोर स्वर में उन्होंने कहा—‘क्यों ? यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?’

‘मैंने उत्तर नहीं दिया ।’

‘चाची ने कहा—‘ओहो ! अब इतनी लाज हो गई कि बोल गले से निकलने के पहले सो गचके खा रहा है ?’

‘मैंने क्रोध से सिर उठाया । मेरी आँखों के आँसू सूख गये । मैंने चिल्ला कर कहा—‘क्या किया है मैंने, जो तुम सब मेरा खून पी जाना चाहती हो ? क्यों नहीं मुझे गला घोट कर मार डालते ?’

‘उन्होंने मुझसे फिर कहा—‘मुझे जवाब दो ! मैं जानना चाहता हूँ । आज न सही कल । मैं इस घर का मालिक हूँ । मेरे ऊपर खान-दान की इज्जत का सवाल है । क्या जरूरत थी तुम्हें मुन्शीजी से बात करने की ? समझा नहीं दिया था मैंने तुम्हें ? या अकेली तुम ही एक शहर की पली हो ? मैं तो हमेशा से गाँव ही में रहा हूँ ।’

‘चाची कमरे से बाहर चली गई। लालटेन वहीं छोड़ गई। मैंने देखा, वह क्रोध से व्याकुल होकर काँप रहे थे।

‘उन्होंने कहा—‘अब तक मैं तुम्हारी बात को तरह देता आया हूँ ! शुरू में तुम्हारे पच्चीसों किस्से सुने, पर सुन कर पी गया। और कोई होता, तो मार-मार कर खाल उधेड़ दी होती। मैंने कहा कि थोड़े दिन की बात है, फिर शहर लौट चलेंगे। वहाँ तो मैं तुम्हें मटरगश्ती करने से कभी नहीं रोकता। फिर वह दो दिन तुमसे नहीं कट सकते ?

उन्होंने उँगली उठा कर कहा—‘तुमने मुझे कहीं का भी नहीं रखा ! आज तुमने यह नहीं सोचा कि तुम क्या कर रही हो ! कभी देखा था आज तक घर की किसी और औरत को उनसे बातें करते ?

मैंने दृढ़ होकर कहा—‘लेकिन वह कमरे में घुस आये थे। उस वक्त और कोई न था। वह मेरी तरफ देख रहे थे।

‘देखेंगे नहीं ?’ उन्होंने कहा—‘तुम मुँह खुला रखोगी’, तो वह जरूर देखेंगे ! आज तक किसी और घर की बूढ़ी तक ने उनके सामने अपना मुँह खुला रखा है ? तुमने वह बात की है, जो हममें से किसी के भी बस की नहीं रही। घर-घर चर्चा हो रही है।

उन्होंने कहा—‘बोलो ! जवाब क्यों नहीं देती ?

मैंने कहा—‘तुम पागल हो गये हो ? तुम कुछ भी सोच नहीं सकते ? दुरंगी जिन्दगी बिताने वाले ढोंगी ? पुस्तकालय से सिर्फ अखबार मँगवाया था मैंने, क्योंकि इस नरक में सिवाय पढ़ने के मुझे और कुछ अच्छा नहीं लगता ! तुम मुझसे उसे भी छीन लेना चाहते हो ? मुझसे नहीं हो सकती यह गुलामी ! मैं तुम्हारी बुआ, मामी, चाची की तरह अपद गँवार नहीं हूँ, जो अपने आपको तुम्हारी जूतियों की खाक समझती रहूँ।

मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी कि मेरी पीठ, हाथ और पाँव पर

सड़ासड़ बेंत पड़ने लगे । मैं नहीं जानती कि मैं रोई क्यों नहीं । मैंने केवल इतना कहा—‘मार ! और मार !’

उनका हाथ थक गया । घृणा से बेंत फेंक दिया, और उनके मुँह से निकाला—‘बेशरम !’

‘और मैं वैसी ही खड़ी रही ।

‘रात बीत गई । मैं वहाँ बैठी रही । दूसरे ही दिन मैंने भैया को चिट्ठी लिख दी ।’

‘उन्होंने चिट्ठी भेजने में कोई बाधा नहीं दी ।

‘दो दिन तक मुझे किसी ने खाने को भी नहीं पूछा ।’

‘सुबह उठ कर देखा, द्वार पर भाई साहब खड़े थे । उनके चेहरे पर हवाईयाँ उड़ रही थीं । उनको देखते ही मेरी आँखों में आँसू आ गये । बहुत रोकने का प्रयत्न करके भी मैं अपने आपको रोक न सकी ।

‘भैया ने कहा—‘क्या हुआ, सियो ?’

‘मैंने कहा—‘मैं यहाँ नहीं रहना चाहती ।’

‘आखिर क्यों ? कोई बात भी तो हो ।’

‘मैंने उनसे कहा—आपने मुझे कहाँ फेंक दिया ?’

‘क्यों सूरज बाबू ने कुछ कहा ?’

‘मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया । बाँह खोल कर बेंत की मार के निशान दिखा दिये ।

‘एक बार क्रोध से उन्होंने अपना नीचे का होंठ काट लिया । फिर सिर झुका कर कहा—‘मैं समझता था कि तुम दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हो । तुम्हारा जीवन सुख के बीतेगा । लेकिन वह लोग कहीं अच्छे जो दुखी हैं किन्तु दुख का अनुभव नहीं करते, क्योंकि वे गुलामी और आजादी का फर्क ही नहीं जानते । हिन्दुस्तान में अक्बल तो प्रेम के विवाह होते नहीं और होते भी हैं, तो निभ नहीं पाते, क्योंकि यह प्रेम समाज की भीषण बेड़ियों को तोड़ने में असमर्थ रह जाता है ।’

‘मैंने कहा—किन्तु मैं ऐसी नहीं हूँ ।’

‘मैया ने सिर झुका कर कहा—“हम लड़की वाले हैं। हमें सिर झुका कर ही चलना होगा। वर्ना मैं नहीं जानता कि क्या होगा ? जो वह कहेंगे, उसी को करने में हमारा कल्याण है। अन्यथा कोई चारा नहीं ।’

‘मैं चुप हो गई। मैया ने फिर कहा—“पति ही स्त्री का सब कुछ है, सविता !’

‘मैंने सिर उठाया। कहा—“पति ही स्त्री का सब कुछ है ? किन्तु वह पति पुरुष होता है। सीता जिस राम के पीछे चली थीं, वह पुरुषार्थी था। जो व्यक्ति अपनी ही रूढ़ियों में जकड़ा हुआ हाँफ रहा है, वह मेरे जीवन का आदर्श नहीं हो सकता ! किसलिये मैं अपने एकान्त सुख को इतना बड़ा बना दूँ कि मेरे विश्वास, मेरी श्रद्धा, मेरी शक्ति एक ऐसे व्यक्ति को देवता समझ कर उसके पैरों पर जम जाय, जो स्वयं लड़खड़ा रहा हो जो स्वयं निर्बल हो और स्त्री को केवल वासना बुझाने और खानदान की इज्जत की चक्रियों में पीसने वाली दासी और बच्चे पैदा करने मात्र का एक साधन समझता हो, जो मेरी ईसानियत को धर्म के नाम पर कुचल कर मुझ पर घृणा से हँस देना चाहता हो !’

‘मैया काँप उठे। उन्होंने कहा—“तू क्या कह रही है, सविता ? तेरी एक छोटी बहिन है। लोग अगर यह सब सुनेंगे, तो कहेंगे, ‘अरे, यह उसी की बहिन है !’

‘मैंने कहा—“किन्तु मैं यहाँ अब नहीं रहूँगी ! तुम मुझे नहीं ले जाओगे तो मैं किसी दिन गले में फाँसी लगा कर मर जाऊँगी ।’

‘मैया सोच में पड़ गये। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

‘मैंने कहा—“अच्छा, कुछ दिन के लिये तो ले ही चलो ।’

‘मैया ने कहा—“अच्छी बात है, जो हमारा है, वहीं होकर रहेगा ! तू यही चाहती है, तो चल तेरी भर्तों !’

‘हम लोग लखनऊ में आ गये। एक दिन भी नहीं रही थी वहाँ कि इलाहाबाद में एक मास्टरनी की आवश्यकता का समाचार देखा। यहाँ आ गई हूँ तब से। स्कूल खुलने के पहले इन्टरव्यू होगी।’

मैंने देखा वह संकुचित नहीं थी। हवा में उसके बाल मुँह पर बार-बार आ जाते थे। मैंने पूछा—‘तो क्या आप वहाँ लौट कर नहीं जायँगी ?’

सविता ने कहा—‘कहाँ ?’

‘वहीं, गाँव, सूरज के पास !’

सविता ने दृढ़ स्वर से कहा—‘नहीं, अब मैं निश्चय ही वहाँ नहीं जाऊँगी। आप सोच भी नहीं सकते कि मुझे आते समय भी किसी ने तनिक भी स्नेह से नहीं देखा। वरन् उनके मुखों पर घृणा का विकृत रूप अपनी सीमा पार कर चुका था। वे लोग मुझे मार डालेंगे। मैं वहाँ कभी भी नहीं जाऊँगी !’

मैंने कहा—‘इस समय क्रोध में हैं। आखिर सूरज से आप प्रेम करती थीं और वह भी प्रेम करता था ?’

सविता हँस दी। कहा—‘आप मुझे जानते हैं। मैं आपको जानती हूँ। अगर शाम को गंगा-किनारे आप मुझे पहले देखते और आवाज देते, पर मैं आपको पहचानने से इनकार कर देती या टालू बातें करती, तो क्या आप फिर कभी मुझसे मिलने की ख्वाहिश रखते ?’

बात सविता ने ठीक ही कही थी। किन्तु मैंने कहा—‘फिर ?’

‘फिर क्या ?’ उसने कहा—‘फिर तो साफ ही है।’

मेरे मुँह से निकला—‘बड़ी हिम्मत है आप में !’

‘जी नहीं। उसने रोक कर तुरन्त उत्तर दिया—‘हिम्मत से काम नहीं चलता अकेले। अगर भैया न आते, और मैं अकेली निकल पड़ती, तो जब राह में लड़के, लड़कियाँ मुझे देख कर तालियाँ बजा-बजा कर चिल्लातीं, ‘बाबू की पतुरिया शहर जा रही है !’ तब सूरज बाबू मुझे

शायद क्रोध के विज्ञोभ में गला घोट कर मार देते ! उन्हें तो अपनी जमीन, अपनी जिन्दगी की सच्चाई से भी ज्यादा प्यारी है । उनके खानदान की इज्जत धूल में मिल जाती । इसी से तो कहती हूँ, हिम्मत से ही कुछ नहीं हो सकता । अगर मैं पढ़ी-लिखी न होती, अपने खाने-कमाने लायक नहीं होती तो क्या कभी ऐसी हिम्मत कर सकती थी ? आदर्शों को पूरा करने के लिये उसके साधनों की ठोस बुनियाद की जरूरत है !

‘मैं सुनता रहा । सविता कहती रही—‘दुनिया मुझे बदनाम करेगी, मुझे कुलटा कहेगी । किन्तु बताइये आप ही, मैं इसके अतिरिक्त और क्या करती ? जीवन भर वही गुलामी की नफरत को ही पातिव्रत कह कर औरत को समाज में धोखा दिया गया है, अब मैं उस जाल को फाड़ कर फेंक देना चाहती हूँ !’

वह हाँफ रही थी । मैंने देखा, वह उत्तेजित हो गई थी । शायद वह यह जानना चाहती थी कि मैं उसके बारे में क्या सोच रहा था ।

मैंने कहा, ‘आपकी बहिन का क्या होगा ?’

उसने कहा—‘पढ़ी-लिखी है । कोई मन का ही नहीं, विचारों का भी दृढ़ सामञ्जस्य मिलेगा, तब शादी कर लेगी । वर्ना कमा खायेगी । पेट की मजबूरी से ही तो स्त्री सिर झुकाने को मजबूर होती है ।

‘और, मैंने कहा—‘आप ऐसे ही जीवन बिता देंगी ?’

वह क्षण भर सोचती रही । फिर कह उठी—‘नहीं, मैं उनके पीछे अपना जीवन बरबाद नहीं करूँगी क्योंकि वह मुझसे छूटते ही फिर दूसरा ब्याह कर लेंगे । और मनुष्य उसी स्मृति के पीछे अपने सुखों का त्याग करता है, जिसे वह सुखदायक और पवित्र समझता है ।’

‘तो आप विवाह कर लेंगी ?’

‘उसने मेरी ओर घूर कर देखा, फिर हँसी । कहा—‘मैं तो सब अपने को अयोग्य नहीं समझती । समाज में क्या एक व्यक्ति भी ऐसा

न खोज सकूँगी, जिसमें आत्मा का थोड़ा भी सत्य हो, साहस शेष हो। सब ही तो एकदम निर्जीव, कायर नहीं होते। समाज मुझसे भले ही घृणा करे, किन्तु मैं तो मनुष्य से घृणा नहीं करती, जो अकेली बने रहने की तपस्या का बोझ अपने कंधों पर रख कर छुटपटाऊँ, और उस यातना को आदर्श बनाकर सत्ता-स्वार्थियों को एक और मौका दूँ कि वे अपने पापों पर धूल उछाल कर उसे ढंक दें और अपनी अच्छाइयों की झूठी झलक को सब के ऊपर ला धरें।

‘और मैंने देखा वह शांत थी। कोई डर नहीं था उसे। कोई शंका नहीं थी उसके मुख पर। आज मैंने देखा कि स्त्री भी पुरुष की तरह आत्म-सम्मान की आग में तप कर आजादी माँग रही थी, और सारे संसार का अंधकार भरा पाप उस पर घृणा से लांछन लगा रहा था, उसे बरबाद कर देना चाहता था, पर वह अडिग खड़ी थी।’

कल्ला चुप हो गया। सिद्दी और चंदू ने भारी पलकों को उठाया। रात बहुत बीत गई थी।

सिद्दी ने कम्बल को और अच्छी तरह लपेट लिया। तीनों इस समय गम्भीर थे।

कल्ला के मुख पर एक शक्ति दमक रही थी, क्योंकि उसने उस नारी की जीवित मानवता की हुंकार सुनी थी उसने नारी का वह विज्ञोभ देखा था, जिसके सामने परवशता की चिता धू-धू जल रही थी।

प्रवासी

बरसात की झड़ी का वेग आसमान से उतर कर फुलवाड़ी में व्याप गया। चार-चार सौ बरस पुराने, ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के पत्ते धुल गये। सन्ध्या की सुनहरी किरणें उन पर झलमलातीं, और फिर छोटी नदी की सतह पर फिसलने लगतीं।

यौवन के तीसरे पहर में गोपालन आज कुछ देख रहा था। आयु के इस शुष्क रेगिस्तान में उसकी सारी तरलता सूख चुकी थी। अनेक युवतियाँ आ-आ कर पनघट पर पानी भरती रहीं। वे हँस कर बात करतीं, खड़ी-खड़ी अँगड़ाई लेतीं और फिर सिर पर दो-दो, तीन-तीन घड़े रख ठुमकती, लचकती चली जातीं। उनका निखरा हुआ यौवन दरिद्रता में भी छिप न पाता।

गोपालन को ये स्त्रियाँ देखने में मोहक लगतीं। उसके प्रांत की स्त्रियों से अधिक सुन्दर थीं। किन्तु कभी उसने यह विचार प्रगट नहीं होने दिया। उत्तर भारत में आकर वह सदा अकेला रहा है। उसके मन ने जैसे कहीं भी अपनेपन का अनुभव नहीं किया।

आज वह इस सुन्दर प्रांत में अकेला पड़ा है। कोई उसका मित्र नहीं है। सब उसे परदेशी के रूप में देखते हैं। और वह स्वयं इस भावना का आदी हो गया है, क्योंकि वह यहाँ हिन्दी भाषा नहीं जानता।

मन्दिर प्रायः सूना हो गया। यहाँ उसने केवल भगवान की पूजा की है, पेट भरा है, और मन्दिर ही की भाँति उसका जीवन भी एक श्रद्धा के भार को वहन करता चला जा रहा है। इस नीरव कोने में जैसे संसार निस्तब्ध हो चुका है, मनुष्य की सारी हलचल समाप्त हो चुकी है, और वह बिताये जा रहा है, बिताये जा रहा है ऐसी ज़िन्दगी, जो मन्दिर के पत्थरों की ही भाँति कठोर है, जिसमें परिवर्तन होता तो हर क्षण है मगर दिखाई कभी नहीं देता।

रात हो गई। आकाश में अगणित तारे छिटक गये। पूजा करके गोपालन सोने चला गया। मठ के स्वामी पहले ही सो गये थे।

आज से दो सौ वर्ष पहले किसी व्यापारी ने यहाँ किसी दक्षिणी ब्राह्मण को गुरु बनाया था। तभी से शिष्य परम्परा चली आ रही है। गोपालन यहाँ पुजारी के रूप में है।

आँख खोल कर देखा, आकाश में एक बार जोर से प्रकाश की

एक लीक क्रांपी, और अंधकार में विलीन हो गई। छत पर पड़े-पड़े गोपालन ने एक बार फुलवाड़ी के पेड़ों की ओर देख कर हाथ जोड़े, और फिर आँखें बन्द कर लीं। व्यथा से उसका हृदय भर गया। यह जो एक तारा इस तरह टूटा है, ऐसे ही वह भी एक दिन समाप्त हो जायगा। आज भी क्या उसका जीवन निरर्थक नहीं? वह किसी का नहीं, कोई उसका नहीं। जैसे अपनी ही सत्ता में अपनी परिधि की समाप्ति है।

गोपालन के मुख से एक आह निकल गई। इतनी तो बीत चुकी। अब और है ही कितनी? ऐसे ही वह भी बीत जायगी। यहाँ क्या है? अनेक बार घंटे बजते हैं, अनेक बार पूजा होती है, अनेक बार भगवान के दर्शन करने आ कर 'उत्तरादी' (उत्तर के रहने वाले) 'महाराज' और 'स्वामी' कह-कह कर लौट जाते हैं। बात-बात पर दंडवत करते हैं, गन्दे रहते हैं और धर्म-कर्म के विषय में कुछ भी नहीं जानते।

गोपालन मन-ही-मन हँस उठा। कौन-सा है वह धर्म, जिसके लिये मनुष्य बली हो? कितने अच्छे हैं ये उत्तर के लोग, जो इतना स्नेह देते हैं! हमारे यहाँ तो लोग आपस में ही एक दूसरे को खाने दौड़ते हैं। आडम्बर! आडम्बर!! और कुछ नहीं। उँह! मुझे क्या? जब तक मानो तभी तक परमात्मा; जब न मानो, तो कुछ नहीं।'

वह मुस्कराया। हृदय में एक बार भोंका-सा लगा। दीपक की बत्ती हिलने लगी। वह व्याकुल हो उठा। उसे प्यास लग रही थी—प्यास वह जो अतीत की सारी कड़वाहट लेकर उसके गले में चटकने लगी। सूनापन सघन हो चला। गोपालन ने आँखों को बन्द करके उन पर हाथ रख लिया, जैसे वह बाहर का कुछ भी न देखना चाहता हो।

धीरे-धीरे उसे सारी बातें याद आने लगीं।''''

युवक गोपालन एक ब्राह्मण का बेटा था। पिता वैदिक अचारण से अपने जीवन के ढाल पर उतरते चले जा रहे थे, जैसे एक दिन

गोपालन के पितामह की लुआया में वह जीवन के चढ़ाव पर चढ़े थे। उनकी पवित्रता गाँव भर में प्रसिद्ध थी। वृद्ध नयनाचारी प्रातःकाल ही उठ बैठते, और स्नान आदि से निवृत्त होकर बारह तिलक लगा कर पूजा में प्रवृत्त हो जाते। सन्ध्या की झुकती बेला में जब लम्बे-लम्बे ताड़ के पेड़ों के पीछे आसमान लाल हो जाता, अद्भुत शिल्प से सजित गुम्बदों के पीछे एक मन्दिर पर आभा पैल जाती, वह बैठे-बैठे धंटों 'कम्ब रामायण' गाया करते। और रात को जब विशाल मन्दिरों से धंटों और शंखों का नाद गाँव में उठता-गिरता, गूँजने लगता तो वह अपने आपको नारायण की महामहिमामयी शक्ति के चरणों पर डाल कर अपने आपको भूल जाते।

गोपाल अपने स्वस्थ और सुदृढ़ शरीर के कारण अपने को बहुत-कुछ समझता। वृद्ध नयनाचारी देखते, और मन-ही-मन पुत्र के उच्छ्व-खल यौवन को देख कर मुस्कराते, किन्तु ऊपर से कभी विचलित होते न दीखते। वह उस परम्परा में पले थे, जिसमें पिता पिता ही नहीं एक गुरु भी होता है। उन्होंने ही उसे गुरु-मंत्र दिया था। आज गोपालन को आवश्यक धर्म-कर्म सब ज्ञात थे।

संसार समझता है कि गोपालन का आचरण उसकी आयु को देखते हुए अत्यधिक धार्मिक था। किन्तु जब वह मन्दिर की आड़ में अँधेरा होने पर छिप कर खड़ा हो जाता और गाँव में आकर रहने वाले रिटायर्ड पोस्ट-मास्टर की पुत्री कोमल को देखता, उस समय वेद ब्रह्मा के मुख में लौट जाते, कर्म और धर्म पराजित होकर उसके उठते हुये यौवन के सामने हाहाकार करने लगते। गोपालन मुग्ध हो जाता।

ऐसे ही अनेक दिन बीत गये। गोपालन ने कभी अपने मुँह से कोमल से कुछ नहीं कहा। किन्तु सुन्दरी कोमल जानती थी कि तपे हुए ताँबे के वर्ण का यह पुजारी केवल पत्थर के देवता का उपासक नहीं है, वरन् उसके भीतर एक हृदय भी है, जिसकी वह एकमात्र अधीश्वरी

है। और गोपालन का उदास जीवन आशाओं को ठोकर मार कर जगाने की चेष्टा करता, जो पीड़ा से एक बार आँखें खोलतीं, और फिर करवट बदल कर सो जातीं।

गोपालन का भाई वरदाचारी आज अनेक वर्षों से प्रवास में था। उसकी पत्नी राजम, जिसकी अवस्था ढल रही थी, अपने अधिकार की मादकता को सतृष्ण उन्माद से अपने हाथ से किसी तरह भी नहीं जाने देना चाहती थी। सब उसकी कर्कशता से परिचित थे। वह जब कभी अवसर मिलता, तो दूसरों के सामने अपने पति के गुणों का बखान करने लगती, और फिर रोती। किन्तु लोगों को शायद ही उसकी कोई बात छू पाती। वरदाचारी एक मस्त आदमी था, जो अपनी पत्नी को अपने योग्य न समझ कर उसे छोड़ कर कहीं अज्ञातवास कर रहा था। राजम माथे पर कुमकुम लगाती, गले में तिरमङ्गल्यम पहनती। उसका सौभाग्य जैसे अक्षय्य था। यह अज्ञात सुहाग उसके नारी जीवन का एक विराट् पङ्क्ति था। वृद्ध नयनाचारी को जब वह पर्व के दिनों दंडवत् करती, तो वृद्ध अपने दोनों हाथ उठा कर उसे आशीर्वाद देता। वह पिता था। वरदाचारी उसका बड़ा बेटा था।.....

गोपालन ने करवट बदली। चारों तरफ अँधेरा था। उसने फिर आँखें बन्द कर लीं। अँधेरा नाचने लगा।

.....वरदाचारी जब से घर छोड़ कर गया कभी लौट कर नहीं आया।

गोपालन नीचे गाँव से ऊपर सात मील चढ़ कर तिरुपथीमलय के विशाल श्रीनिवासन के मन्दिर में काम करता। राजम घर का काम-काज सँभालती। दो खेत पिता के थे। और चार खेत राजम के दहेज के थे, जो यद्यपि नयनाचारी ने बेटे के प्रतिदान में माँगे नहीं, किन्तु बेटा का अनुग्रह अधिकार बना देने के लिये गर्विता माँ ने अपने आप दे दिये थे। गोपालन निरपेक्ष सा अपना काम किये जाता।

‘एक दिन घर आकर गोपालन ने देखा, पिता उदास से बैठे थे । वह कुछ भी नहीं बोला । नहा कर उसने अपनी चोटी निचोड़ी, और खाने को बैठ गया । राजम ने उसकी ओर क्रोध से देखा, और ढेर-सा चावल सामने ला कर केले के पत्ते पर परोस दिया । गोपालन ने देखा, और समझा । वह जता रही थी कि मेरे ही कारण तुम लोगों को खाना मिलता है, नहीं तो तुम लोग कुत्तों की तरह भूखों मरते होते । गोपालन के हृदय में तीर-सा चुभा । किन्तु फिर भी वह चुपचाप खा कर उठ आया । पिता आज चुप थे । आज उनके मुख से रामायण की एक पंक्ति भी नहीं निकली ।

गोपालन लौट चला । धीरे-धीरे फिर सात मील की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा । इधर-उधर अनेक यात्री इस समय पैदल और डोलियों में थके-माँदे उतर रहे थे ।

एकाएक गोपालन ठिठक गया । कोमल भी ऊपर चढ़ रही थी ।

वह अकेली थी और ऐसा लगता था जैसे थक गई थी । गोपालन को प्रतीत हुआ, जैसे सचमुच ही राह बहुत लम्बी थी और वह स्वयं नहीं चढ़ सकता था । यात्रीगण ‘गोविंदा ! गोविंदा !’ पुकारते धीरे-धीरे उतरते चले जा रहे थे । गोपालन को लगा, जैसे वह नदी की बहती धारा थी और ये दो पत्थर ऊपर की तरफ राह करके निकल जाना चाहते थे ।

थोड़ी दूर चलकर कोमल थककर एक सीढ़ी पर बैठ गई । गोपालन जब उसके पास पहुँचा, तो कोमल ने उसे पहचाना । मुस्करा उठी । गोपालन ने कहा—‘थक गई हो ?’

कोमल ने लजा कर उत्तर दिया—‘थकेगा कौन नहीं !’ लेकिन तुम को थके हुये नहीं देखते !’

गोपालन को हर्ष हुआ । वह उस स्त्री के सामने एक पुरुष के रूप में खड़ा था और इसे वह स्त्री अपने पूर्ण यौवन से स्वीकार कर रही

थी । उसने उसकी ओर देखा और देखता रहा । कोमल ने सँकोच से आँखें झुका लीं । गोपालन ने देखा, वह सुन्दर थी । आकाश में चाँदनी फूट-फूट कर फैल रही थी । सीढ़ी के दोनों ओर पहाड़ के हरे-हरे वृक्ष सन् सन् कर रहे थे । और वह सीढ़ी जो सात मील लम्बी थी, जिसकी बिजली की बत्तियाँ आज चाँदनी के कारण नहीं जली थीं, साँप-सी कहीं करवट लेती, कहीं सीधी चलती, सफेद-सफेद-सी ऐसी लगती थीं, जैसे आकाश गङ्गा स्वर्ग से पृथ्वी को मिला रही हो । और सामने साक्षात् मोनाक्षी बैठी थी, जिसका वड्ड्यरणम् [सोने की पेटी] अपने ऊपर विचित्र नक्काशी लिये उसे मनोहर प्रकाश में दमदमा रहा था । गोपालन को क्षण भर अपनी दरिद्रता का आभास हुआ । ऐसी ही चीजों के लिए राज़म मरती थी, अपने पति से नित्य झगड़ती थी और अन्त में लाचार होकर वह घर छोड़ भाग गया था । कोमल की साड़ी के किनारे की ज़री झलमल-झलमल कर गोपालन के मन पर जाल बनकर छा गई । और वह विभ्रान्त सी उसके सामने बैठी थी । वह देख रहा था मन भर कर जिसे आज तक कोई भी नहीं भर पाया ।

कोमल उठी और चलने लगी । गोपालन भी साथ-साथ चलने लगा । कोमल ने ही कहा — ‘तो तुम मन्दिर में अर्चना करते हो !’

‘हाँ ! और यहीं रहता हूँ ।’ गोपालन ने धीरे से उत्तर दिया । फिर उसने रुक कर पूछा — ‘आप कहाँ जा रही हैं ?’

‘आप’ सुनकर कोमल ने मुड़कर उसकी ओर देखा । गोपालन का दिल न जाने कैसा होने लगा ।

‘मैं ! मैं भी मन्दिर की ही ओर जा रही हूँ । पिता से मिलना है । उनको अपने होटल से फुर्सत कहाँ ? पहले पोस्टमास्टर थे न ! सो सुबह से शाम तक काम में लगे रहने की ऐसी आदत हो गई है कि छोड़े नहीं छूटती । आज वहीं सो जाऊँगी । ‘वाहन’ भी देख लूँगी । आज किसकी सवारी निकलेंगी, आर्यङ्गार ? हनुमान की या गरुड़ की !’

गोपालन ने सोचकर उत्तर दिया—‘आज तो शायद गरुड़ की निकलेगी ।’

‘गरुड़ की !’ कोमल ने प्रसन्न होकर कहा—‘मुझे बड़ी अच्छी लगती है गरुड़ की सवारी ।’

गोपालन को अफसोस हुआ । आज उसी ने शृङ्गार किया होता, तो कम-से-कम जता तो देता कि वह कितना निपुण था ।

कोमल ने पूछा—‘कितने बच्चे हैं तुम्हारे ?’

गोपालन हँस दिया । बोला—‘बच्चे ! कैसे बच्चे ?’

‘क्यों ?’ कोमल ने आश्चर्य से कहा—‘विवाह ही नहीं हुआ क्या ?’
‘नहीं !’

गोपालन को लगा, जैसे वे एक-दूसरे के और पास आ गये । उसे प्रतीत हुआ, जैसे कोमल ने यह प्रश्न उससे जान-बूझकर किया था ।

धीरे-धीरे ऊपर बसे पेशेवर भिखारियों के भोपड़े दिखाई देने लगे । कोमल फिर एक स्वच्छ शिला पर बैठ गई । इस समय कोढ़ी और रोगी, असली और नकली, सब भीतर घुस कर सो रहे थे । चारों तरफ एकान्त था । अद्भुत नीरवता छा रही थी । गोपालन भी खड़ा हो गया ।

‘बैठ जाओ, आरामगार, बैठ जाओ ! तुम तो लगता है, जैसे थकना ही नहीं जानते !’

वह बैठ गया । देर तक दोनों बातें करते रहे ।

जब वे भगवान् श्रीनिवास के मन्दिर के सामने पहुँचे, तो वाद्य-ध्वनि के साथ वाहन निकल रहे थे । कोमल चली गई । गोपालन मन की सारी ममता को दोनों हाथों से छाती पर दाब कर भीड़ की ओर देखता रह गया ।

दूसरे दिन गोपालन ने देखा कि कुछ शहर के युवक मन्दिर में दर्शन करने आये हैं, उनमें एक जरी का कीमती दुपट्टा गले में डाले है,

और उसके काले हाथ पर सोने की एक घड़ी बैंधी है। उसे पत्थरों पर नंगे पैर चलने में कष्ट होता है। वह अपने साथियों से कह रहा था—
‘अजीब हालत है ! मन्दिर के कारण तो इधर-उधर भी जुता पहन कर पहाड़ पर चलने की आज्ञा नहीं है। प्राचीन काल में वैसा होता था, तो ठीक था। मगर अब ऐसा क्यों?’

गोपालन ने घृणा से नाक सिकोड़ ली। ये लोग थोड़ी सी अंग्रेज़ी क्या पढ़ गये, धर्म-कर्म से हाथ ही धो बैठे। महागरिमामय श्रीनिवास इन्हें अवश्य दण्ड देंगे। और वह अपने काम में लग गया।

दोपहर के समय जब वह मन्दिर से बाहर निकला, तो उसके पैर ठिठक गये। कोमल के पिता उसी पढ़े-लिखे युवक ने खूब हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। और वह युवक, काफी पीता, ‘इडली’ खाता, उन्हें कोई बड़ा दिलचस्प किस्सा सुना रहा था। वह भी होटल के भीतर घुस गया। वृद्ध पोस्टमास्टर उस समय प्रसन्न थे। उनके मुख पर एक चमक काँप रही थी, और स्थूल शरीर फड़क रहा था। गोपालन ने उन्हें नमस्कार किया। वृद्ध ने हाथ उठा कर कहा—‘अरे, गोपालन ! तुम इतने दिन कहाँ रहे। इन्हें देखा ? आओ, तुम्हारा इनसे परिचय करा दूँ ?’

गोपालन ने उस युवक की ओर देखा, और एक आश्चर्य उसके हृदय में उतर गई।

वृद्ध ने फिर कहा—‘ये हैं बैंकटराजन ! मदरास में पढ़ाई समाप्त कर दी है। एम० ए० हैं, एम० ए० ! अब यहीं तिरिचानूर में रह कर अपनी जमींदारी सँभालेंगे। आना विवाह में ! जल्द ही हो जायगा। मेरी तो सारी चिन्ता मिट गई। कोमल के योग्य तो मुझे कोई दिखता ही नहीं था। अन्त में उसी ने उन्हें देखा। भाई, वक्त बदल गया है न ! तभी। भगवान की मर्जी है, वर्ना हमारे समय में क्या यह सब होता था ?’

गोपालन ने सुना । हाथ जोड़े । युवक ने हँस कर सिर हिला दिया, जैसे वह जमाई होने की लाज रख रहा था । गोपालन चला आया ।

उस समय ब्रह्मचारी दिन में निकलने वाले वाहन के चारों ओर चार दलों में खड़े होकर वेद पाठ कर रहे थे, और नाक के श्वास से एक ही समय बाँसुरी बजा रहे थे । जब एक दल ऋग्वेद के कुछ मंत्र पढ़ चुका था, तो दूसरा सामवेद प्रारम्भ करता था । और अंतराल में वेदों का वह गम्भीर घोष गूँज कर, पाषाणों से सहस्रों वर्ष पुराना गौरव टकरा कर, आकाश की ओर सहस्र रश्मियाँ बन कर फूट निकलता था ।

गोपालन भीतर अंधकार में एक विशाल स्तम्भ के सहारे बैठ गया । सिर चक्कर खा रहा था । पैरों के नीचे से धरती खिसक रही थी । हृदय में उन्माद घूँसे मार-मार कर हँस उठता था ।

धीरे-धीरे साँझ हो गई । गोपालन फिर भी वहीं पड़ा रहा । वृद्ध ताताचारी अन्त में हाथ में दीपक लेकर उसे ढूँढने निकल पड़ा । नित्य गोपालन दिन में अनेक बार उसके पास जाता और कहता कि उसके अतिरिक्त मन्दिर में और कोई ऐसा न था जिसके प्रति उसकी श्रद्धा हो । ताताचारी वृद्ध हो गया था उसी मन्दिर की पूजा करते-करते और उसे गोपालन से पुत्र का-सा स्नेह हो गया था ।

वृद्ध की छाती पर जैसे किसी ने प्रहार किया । गोपालन उस नीरव अंधकार में पड़ा हुआ था । वृद्ध ने दीपक रख दिया, और घुटनों के बल बैठ कर पुकारा—‘गोपालन !’

गोपालन ने आँखें खोल दीं । वृद्ध ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—
वत्स ! क्या हुआ है तुझे ? अँधेरे में क्यों पड़ा है !’

गोपालन ने कुछ नहीं कहा ।

वृद्ध ने फिर कहा—‘पुत्र, तुझे ऐसी क्या पीड़ा है ? गोविन्द सब का-सङ्गल करते हैं ! मुझसे कह !’

गोपालन ने नीचे देखते हुए कहा—‘स्वामी, मुझे एक भूल हुई !’

वृद्ध ने कहा—‘क्या ?’

गोपालन ने दबे स्वर से कहा—मैंने आकाश की ओर हाथ बढ़ाया था ! मैंने सोचा था कि कोमल से विवाह कर सकूँगा । मैं समझता था कि वह मुझसे प्रेम करती है ।’

वृद्ध ने कहा—‘तूने आकाश की ओर हाथ बढ़ाया, लेकिन यह नहीं देखा कि तेरे पैरों के नीचे ज़मीन तक नहीं है ! पागल ! कोमल से तू विवाह करेगा ? मन्दिर का अर्चक एक पोस्टमास्टर की पुत्री से विवाह करेगा ! घर में तेरे हैं क्या, जो तू ऐसी मूर्खतापूर्ण बात सोचने लगा ? राजम क्या रहने देगी तुझे ? क्या वृद्ध नयनाचारी को मालूम है कि उसका बेटा वह काम करने लगा है, जो प्राचीन काल में राजा किया करते थे ? गोपालन, होश की बात कर, होश की !’

गोपालन ने गर्दन झुका ली । उसका गला रुँध गया । वह कुछ भी नहीं कह सका ।

वृद्ध कहता गया—‘मैं तेरा ब्याह करा दूँगा । विश्वनाथ की कन्या अब चौदह बरस की हो चली है पिता भी अर्चक है । मुझे आशा है कि वह तुझे अवश्य अपना जमाई बना लेगा । उठ, चल ! बेकार अंधेरे में पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है ?’

किन्तु गोपालन नहीं उठा ।

वृद्ध देर तक समझाता रहा । किन्तु जब कोई नतीजा नहीं निकला, तो बड़बड़ाता हुआ चला गया ।

आधी रात के बाद जब गोपालन बाहर निकला, तो हाथ-पाँव टूट रहे थे । चाँदनी देख कर लगा, जैसे चारों तरफ आग लग रही हो । पुष्करिणी पर चन्द्रमा की शुभ्र किरणें खेल रही थीं । ऐसे ही द्रम्यन्ती के विरह में नल बैठा रहा होगा । ऐसे ही उसके हृदय में भी आग लग रही होगी ।

वह उन्मत्त हो उठा। रात अँगड़ाई ले रही थी। वृद्ध ताताचारी का उपहास अब भी उसके कानों में गूँज रहा था।

धीरे-धीरे भोर हो गई। टंडी-टंडी हवा चलने लगी। उसने देखा, कोमल घड़ा लिये पुष्करिणी की ओर आ रही थी। गोपालन को देखकर वह मुस्कराई। फिर उसने कहा—‘कहो, आर्यंगार ! क्या रात सोये नहीं ? तुम्हारा मुँह पीला क्यों पड़ गया है ?’

गोपालन का श्वास भीतर घुट उठा। उसके मुँह से निकला—
‘तुम्हारा विवाह हो रहा है ?’

‘हाँ, हाँ ! क्यों ?’ उसने हँस कर कहा—‘आशीर्वाद दे रहे हो, आचारी ? तिरचानूर में ही होगा। कोई दूर तो है नहीं। बस पहाड़ से उतरने की देर है।’ और जैसे मन-ही-मन वह कल्पना के सुख में मस्त होकर मुस्कराई। फिर एकाएक उसने सिर उठाया। देखा, गोपालन का मुख और भी उतर गया था। लगा, जैसे उसका हृदय असह्य यंत्रणा से छुटपटा रहा हो।

‘ओह !’ उसके मुँह से निकल गया—‘तुमको हुआ क्या है, ब्राह्मण ?’

गोपालन गुम-सुम खड़ा रहा। कोमल जैसे समझ गई। उसने विद्रूप से कहा—‘आओगे विवाह में ? वहाँ कई अर्चक होंगे ! आना ! खूब दक्षिणा मिलेगी ! सच ! मैं भूठ नहीं कहती !’

गोपालन के रोम-रोम पर किसी ने अंगारे फेर दिये। फिर भी वह प्रतिकार की भावना को प्रोत्साहन नहीं दे सका। अपमान का घूँट उगल न सका। जैसे संसार को उस विष से बचाने के लिये वह उसे पी गया। उसके मुँह से केवल निकला—‘आऊँगा देवी ! तुम्हारे सौभाग्य को दृढ़ करने के लिये मैं मन्त्र उच्चारण करने आऊँगा !’

कोमल ने स्नेह से उसकी ओर देखा। जैसे उसकी शंका दूर हो चुकी थी।

गोपालन खड़ा नहीं रह सका। वह लोट आया। भीतर आकर एक स्तम्भ के सहारे खड़ा हो गया। लगा, जैसे वह भी पाषाण की एक मूर्ति हो...।

...शहनाई बजने लगी। उसका तीव्र शब्द, मङ्गल का सूचक बन कर कानों में गूँजने लगा। चारों ओर अग्रवत्ती की मोहक गंध उठ रही थी। पके हुए केलों की गंध उठती और हवा के साथ कभी मङ्गल-कलशों पर जाकर थिरकती, कभी द्वार पर बंधे केलों और आम के पत्तों को खड़खड़ा देती।

कोमल का विवाह हो रहा था।

गोपालन उदास-सा पास की धर्मशाला में बैठा शहनाई की आवाज़ सुन रहा था। जैसे यह समस्त वैभव, जो आँखों के सामने चल रहा है, इसमें उसका कुछ भी नहीं है, वह दलित और दयनीय-सा उठा कर किनारे रख दिया गया है कि अमृत की लहरें बहती जायँ और वह केवल उनका कल-कल शब्द सुनता रहे, बोले कुछ नहीं, छुए कुछ नहीं।

ब्राह्मण वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे होंगे। अग्नि में घी पड़ते ही लपटें हरहरा कर किलकिलाती उठती होंगी, और धुँये से कोमल की आँखें लाल पड़ गई होंगी। अनेक युवक-युवती अच्छे-अच्छे कपड़े पहने वहाँ इकट्ठे होंगे। किन्तु गोपालन तो वहाँ नहीं जा सकता। वहाँ जाकर होगा भी क्या ?

पीछे से वृद्ध ताताचारी ने कंधे पर हाथ रख कर कहा—‘अरे, गोपालन ! तू अभी यहीं है ? चलेगा नहीं ? वहाँ तो अनेक ब्राह्मणों को बुलाया गया है। जो जायेगा, दक्षिणा पायेगा, कोई कम-ज्यादा नहीं। आखिर इस स्थान के वही तो पुराने जमींदार हैं। अब भले ही उतने नहीं रहे। एक समय था जब वही यहाँ के सबसे बड़े आदमी थे। तू तो तब था भी नहीं। तेरे बाबा इन्हीं के यहाँ अर्चक थे, इनके निजी

मन्दिर में। और खाना बनाना तो उन्होंने और मेरे बड़े भाई ने इन्हीं के बाबा के यहाँ सीखा था। चल न !'

गोपालन ने कुछ नहीं कहा। वृद्ध ताताचारी के मुख पर एक बर्बरतापूर्ण हास्य खेल उठा। उसने कहा—'मूर्ख ! तू मेरे पुत्र के समान है ! क्यों बेकार की बातों में पड़ा है ? तुझे शर्म नहीं आती कि प्रेम करने चला है ?'

गोपालन ने फिर भी मौन रहना ही सबसे अच्छा समझा। जाने क्यों वह बहुत कुछ कहना चाह कर भी कुछ नहीं कह सका।

अनन्त हाहाकार की तरह बाजे की आवाजें उसके कानों में गूँजती रहीं, जैसे उसके प्राणों पर वज्रों का भयानक प्रहार हो रहा हो। वह दरिद्र था। कोमल एक धनी की पुत्री थी। सोचते सोचते वह रो पड़ा।

घर पहुँचने पर राजम ने आँखों को कपाल पर चढ़ाकर, हाथ नचा कर कहा—'तुम तो जैसे 'वड्यवर' (रामानुजाचार्य) ही हो, जो तुम्हें कुछ चिन्ता नहीं ! सभी तो गये थे। कम-से-कम बीस-बीस रुपया हर एक को मिला है। लेकिन तुमने तो जाने की ज़रूरत ही नहीं समझी !' वह कह कर चुप हो गई। गोपालन के मुख पर असह्य व्यथा थी। लेकिन वह कुछ भी नहीं समझ सकी। अपार विस्मय से उसने देखा, वह सामने से हट गया। वह मुँह खोजे ही खड़ी रह गई। अंत में उसने कुछ समझने का प्रयत्न किया। मुस्कराई। किन्तु इस योग की असम्भवता पर केवल हँस दी। नहीं, गोपालन कुछ भी हो, इतना मूर्ख नहीं हो सकता। राजम को फिर भी उससे कुछ स्नेह अवश्य था। पति के चले जाने पर वह उससे बात-बात पर चिढ़ती तो थी, किन्तु कुछ अपना अधिकार समझ कर ही तो उससे जो चाहे कह जाती थी। खाने के समय भी व्यंग्य कसती, किन्तु कभी उसे भूखा न उठने देती। ऐसा होता, तो रोती, लड़ती और अपनी करके ही रहती। जब कुछ समझ में नहीं आया, तो वह फिर अपने काम में लग गई।

गोपालन की व्यथा बढ़ती ही गई। वह रात को बहुत कम सो पाता। कोमल सामने आकर खड़ी हो जाती। संध्या समय वह देखता, पति-पत्नी घूमने जाते। कोमल का गर्व से उन्नत मस्तक देखकर, गोपालन का रहा-सहा धैर्य भी लुप्त हो जाता। मन-ही-मन वह तर्क करता, 'मैं क्या किसी से कुछ कम हूँ? अरे, अर्चक का बेटा अर्चक ही तो होगा! पहले क्या हमारी कम इज्जत थी? अब जो लोग अङ्गरेज़ी पढ़-पढ़ कर धर्म को भूल केवल धन से मनुष्य के महत्त्व का माप करते हैं, वे ही हमारी उपेक्षा करते हैं। मैं अपना काम करता हूँ, खाता-पिता हूँ। किसी से माँगने तो नहीं जाता? और फिर अमीर-गरीब होना क्या किसी के हाथ की बात है?'

और सोचते-सोचते वह बड़बड़ा उठता—'बूढ़ा ताताचारी सठिया गया है! कहता है, वेकटरामन् को रसोइये की जरूरत है, जाकर नौकरी कर ले! मैं कोमल की नौकरी करूँगा? मैं उसका सेवक बनकर रहूँगा?' और अपने आप से उसे घृणा हो आती। वह अंधेरे में मुँह छिपा लेता.....।

धीरे-धीरे बात आई—गई हो गई। गोपालन का उद्वेग कभी उठता, कभी गिरता। वह बहुत कम बात करता। मन्दिर में ही अधिकांश समय बिताता। कभी-कभी जाकर पिता से मिल आता।

नयनाचारी अवसर पाकर गोपालन के सामने राजम को बुला कर कहते—“बेटा, तेरे सामने तो यह बच्चा है। वरदाचारी इसे बहुत प्यार करता था। लेकिन ईश्वर की इच्छा! वह तो इसे छोड़ गया, अब तू ही इसकी माँ है। क्यों नहीं इसका भी ठिकाना कर देती? मैं तो अब बूढ़ा हुआ। देख जाऊँ इसका ठिकाना लगते भी, नहीं तो फिर.....।”

गोपालन ऊब जाता। देख जाने की इस तृष्णा में पिता के वात्सल्य-पूर्ण हृदय की कितनी अथाह ममता थी, वह न समझ पाता। वृद्ध कभी अपनी बात के विरुद्ध कुछ भी न सुनते, क्योंकि उन्हें अपनी आयु का

गर्व था। वह औरों को अपने सामने बच्चा समझते थे। ‘अभी क्या जाने वे? जाने क्या-क्या सोचते हैं? ऋषि-मुनियों ने भी यही तथ्य निकाला है। और इस संसार में है ही क्या?’

राजम इसे तुरन्त स्वीकार कर लेती। वह दिल-ही-दिल में सोचती, और प्रसन्न होती, आयेगी एक और। घर भर जायगा। गृहस्थी बढ़ जायगी। जीवन की यह नीरसता दूर हो जायगी। और सबसे बड़ी बात यह होगी कि अधिक छोटों के होने पर वह अधिक बड़ी हो जायगी, और अधिकार जताने को उसको अधिक लोग मिल जायेंगे। फिर वह काम-काज से मुक्त होकर पूर्णतया स्वामिनी की तरह शासन कर सकेगी।

किन्तु प्रायः जैसे बात उठती, वैसे ही दब जाती। गोपालन की अरुचि अधिक बढ़ती जाती। राजम अपने विचार दौड़ाती, किन्तु कहीं अन्त न मिलता। वह हार कर लड़ने लगती। वृद्ध कहते—‘देख, मेरी आत्मा भटकेगी!’ किन्तु गोपालन को यह विश्वास न होता कि आत्मा है भी या नहीं। एक दिन तो परमात्मा की सत्ता पर जो पहले अडिग विश्वास था, वह भी डौवाडोल हो गया। डर कर गोपालन ने एक हज़ार आठ बार गायत्री महाजप किया। तब कहीं मन का विकार दूर हुआ।

इतने सब पर भी उदासी दूर न हुई और जीवन का रेगिस्तान तरल होता न दीखा।

एक दिन गोपालन जब खाने बैठा तो राजम ने कहा—‘कुछ सुना तुमने?’

गोपालन ने पूछा—‘क्या?’

‘कोमल के बाप की अपने जमाई से खटपट हो गई! बाप ने कहा—‘हम एक ही जगह रहते हैं। फिर लड़की यहाँ चली आया करे, तो क्या हर्ज है?’ मगर वेंकटरामन् तो अंग्रेजी पढ़ा है। वह क्या बहू के बिना एक भी मिनट रह सकता है? लड़ाई हो गई। कोमल ने बाप को

दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका ! देखा, आज कल का ज़माना ! जन्म भर पेट काटकर खिलाया और यह नतीजा हुआ !' और फिर दो क्षण रुक कर राजम ने कहा—'लड़की भी क्या कभी किसी की हुई है ! यह तो पूर्व जन्म का दण्ड होता है कि खिला-पिला कर लड़की को बड़ा करो और पैर पूज दूसरे को दान कर दो !'

गोपालन ने राजम की बात की सत्यता स्वीकार की । लड़की पैशन में पड़ गई है । नहीं तो क्या बाप की अवहेलना करती ? किन्तु फिर दिमाग में ख्याल आया, पति ही तो विवाह के बाद सब-कुछ है । फिर भी व्यक्तिगत विद्रोह ने कोई सामंजस्य स्थापित नहीं होने दिया । गोपालन यह सुनना चाहता था कि कोमल वेंकटरामन् से विवाह करके सुखी थी ।

चार महीने बीत गये । गोपालन ने फिर एक बात सुनी । छाती के धावों पर मरहम-सा लगा । विद्रोह की धधकती आग बुझी । कितना निकृष्ट सुख था वह ! किन्तु यह वह उस समय अनुभव नहीं कर सका । कोमल का पति बीमार था । इलाज हो रहा था, किन्तु कोई लाभ होता नहीं दिखता था । गोपालन की व्यथा फिर भड़क उठी ।

अँधेरा हो गया । द्वार पर खटखटाहट सुनकर, कोमल ने आकर खोल दिया । गोपालन उसे देखकर सकपका गया । उन दिनों कोमल के घर बहुत कम लोग जाते थे । किन्तु गोपालन को देखकर उसने तनिक भी विस्मय नहीं प्रकट किया, जैसे उसे मालूम था कि वह आयेगा ।

उसने कहा—'कहो, आर्यंगार ! कैसे कष्ट किया ?'

गोपालन ने देखा, उसके मुख पर उदासी थी और वह उद्धिग्नि-सी लग रही थी, जैसे भविष्य का भूत उसे रह-रह कर डरा देता हो और वह आने वाली आपत्तियों को भेलने के लिये तैयार हो रही हो ।

गोपालन ने कहा—'कुछ नहीं ! हाल पूछने आया था ।'

‘अब तो वह अच्छे हैं पहले से । डाक्टर कहते हैं जल्द ही अच्छे हो जायँगे !’

गोपालन ने चलते-चलते कहा—‘कभी आवश्यकता हो, तो मैं सेवा के लिए प्रस्तुत रहूँगा !’

‘जानती हूँ ! किन्तु विश्वास तो तब होगा, जब तुम प्रत्यक्ष कुछ कर दिखाओगे । समय पर बुलाऊँगी ? पीछे तो न हटोगे ?’

‘नहीं !’ गोपालन ने चलते-चलते कहा ।

कोमल ने, ‘नमस्कार !’ कह कर द्वार बंद कर लिया ।

गोपालन सोच रहा था चलते-चलते, ‘मुझसे वह क्यों कुछ आशा करती है ? यह मान करने और रूठने का अधिकार उसे दिया किसने ? विश्वास करती है, फिर भी शंका की चाबुक मार कर आहत करने का भी प्रयत्न करती है !’

कुछ दिन बाद घर-घर में एक नई अफवाह फैल गई । गोपालन ने सुना । उसे विश्वास नहीं हुआ । मगर राजम छोड़ने वाली नहीं थी । उसने उसे देखते ही कहा—‘अरे, सुना तुमने ? कोमल का आदमी शराब पीने लगा है !’

‘शराब !’ गोपालन के मुँह से निकला । ऐसा लगा उसे जैसे आस-मान फट गया हो, या जमीन खिसक गई हो ।

‘हाँ, हाँ, शराब, विलायती शराब ! मैं तो पहले ही जानती थी । पोस्टमास्टर धमण्ड नहीं कर सकेगा !’ और एक मुक्का सीने पर मारा, जैसे कोई कमाल किया हो, और मुस्कराती हुई गोपालन की ओर देखने लगी ।

‘क्यों पीता है वह शराब ?’ गोपालन ने धीरे से कहा—‘ब्राह्मण का बेटा ! एक पवित्र वंश में उत्पन्न होकर ये चांडालों के-से कर्म ! क्या ऐसे ही वह बाप का नाम चला रहा है ? पोस्टमास्टर तो कहते थे कि वह पढ़ा-लिखा है !’

‘नाम तो तुम भी ऐसे ही चलाते ! यह तो कहो कि अंग्रेज़ी का काला अक्षर तुम्हारे लिये भैंस बराबर है ! वैसे भी क्या तुमने कभी बाप की बात मानी है ? मैंने कितनी लड़कियाँ देखीं, लेकिन तुम्हारी टेक तो जैसे पत्थर की लकीर है !’

गोपालन ने उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया । दो क्षण बाद उसने कहा—‘क्या यह बात सबको मालूम है ?’

‘अरे बाप रे !’ राजम ने हाथ बजा कर कहा—‘मालूम कैसे न होगी ? क्या सब लोग जहर खाकर सो गये हैं ? वह पी-पीकर सड़क की नालियों में गिरता फिरे, और किसी को मालूम न हो !’

गोपालन का चित्त खट्टा हो गया । अतीव घृणा से उसके मुँह में भी एक कड़वाहट-सी फैल गई । यह क्या हुआ ? क्या बेचारी कोमल को कोई सुख बढ़ा नहीं है ?

बाहर आकर सुना, बात सचमुच फैल गई थी । ब्राह्मण समाज ने एक मत से उसका बहिष्कार करने का निश्चय किया था । फिर भी किसी को एकदम आगे बढ़ने का साहस नहीं होता था । बैकटरामन् को सब लोग धनी जो समझते थे । गोपालन विलुब्ध हो उठा ।

करीब चार महीने और बीत गये । गोपालन के हृदय में एक तूफान सदा हाहाकार करता रहता । ऊपर से देखने में वह पहाड़ की तरह गंभीर और शान्त दिखाई देता ।

एक दिन शाम को जब वह पहाड़ से उतरने लगा, तो ताताचारी ने रास्ते में उसे रोक कर कहा—‘बैकटरामन मर गया । पोस्टमास्टर की बेटी विधवा हो गई !’

गोपालन हत बुद्धि-सा खड़ा रह गया । वृद्ध ताताचारी ने कोमल के प्रति उसके स्नेह को जानकर घृणा से मुँह फेर लिया । निस्सहाय कोमल के अधकारमय भविष्य की बात सोचकर गोपालन का हृदय काँप उठा ।

इसके बाद कुछ दिन चुपचाप बीत गये । फिर एक दिन गोपालन

चौंक उठा। सामने एक लड़का खड़ा था। उसने लड़के की ओर बिना देखे ही पूछा—‘कौन है तू ? कहाँ से आया है ?’

लड़का उसकी ओर निस्संकोच आँखों से देखकर बोला—‘कोमल अम्मा ने भेजा है।’

गोपालन जानकर भी अनजान बन गया। उसने अपरिचित की भाँति सिर उठा कर पूछा—‘क्या बात है ? कहता क्यों नहीं ? बेकार क्यों खड़ा है ?’

‘उन्होंने आपको बुलाया है ?’ लड़के ने कह कर जीभ काट ली।

गोपालन हँस दिया। उसने कहा—‘बुलाया है ! क्यों ? कह दो जाकर, गोपालन उसका नौकर नहीं है ! समझे ? जा, चला जा यहाँ से !’

लड़के की जीभ तालू से सट गई। वह कहना चाह कर भी और कुछ नहीं कह सका। इधर-उधर देखकर चला गया।

गोपालन का हृदय उन्माद-जनित संतोष से भर गया। सोचने लगा वह, ‘आज सब कोई साथी नहीं हैं, तब गोपालन की याद आई है ! किन्तु मैं तो एक दरिद्र अर्चक हूँ ! वह तो धनी घर में पली है। रुपया पानी की तरह बहा सकती है। वह क्यों मेरी प्रतीक्षा कर रही है ?’ और उसको शांति-सी अनुभव हुई। ‘आज वह विधवा है। आज वह किसी काम की नहीं है। आज समाज में उसका कोई स्थान नहीं है। दो दिन बाद पुष्करिणी में नहा कर गले में गीला आँचल डाल कर आयेगी, तब देखूंगा उसका गर्व ! जब ब्राह्मण अपने हाथों से उसके गले का तिरमङ्गल्यम तोड़ कर फेंक देंगे, जब उसका यौवन सिर धुन-धुन कर सुहाग के लिये तड़पेगा, तब देखूंगा उसकी शेखी !’ वह पागलों की तरह हँस उठा। और स्वयं वह ? उसके होंठों पर पृष्ठा की हँसी सर्पिणी की तरह तड़प उठी। क्या है गोपालन ? कुछ नहीं ! निरी मिट्टी !

इस द्रन्द ने उसे पराजित कर दिया। वह छत की ओर देख कर, एक बार मन-ही-मन काप उठा।

सहसा पग-चाप सुन कर सिर मोड़ा । देखा, तो विश्वास नहीं हुआ । सामने वज्राहत-सी कोमल खड़ी थी । वह आज भी सिर में तेल डाले थी । माथे पर कुम-कुम लगा था, हाथों में चूड़ियाँ थीं । पूरी मुहागिन बनी थी आज भी । किन्तु आज वह एक प्रेत के लिये अपने आप को सजाये हुई थी, क्योंकि ग्यारहवें दिन ही धर्म के अनुसार वह अपना यह स्वरूप त्याग सकेगी ।

गोपालन को लगा कि कोमल का सारा शृङ्गार ऐसा था, जैसे स्वर्ण चिता लपटें उल्लाल-उल्लाल कर धधक रही हो । उसकी छाती धक से रह गई । उसने देखा और देखता ही रह गया ।

कोमल ने कहा—‘आयङ्गार, मैंने तुम्हें बुलाया था । जानते हो क्यों ?’

‘नहीं !’ उसने कहा—‘किन्तु सोचता अवश्य हूँ !’

‘क्या ?’ उसने निर्भीकता से पूछा ।

‘यही कि तुम एक जमींदार की पत्नी हो, और...’

‘पत्नी नहीं, आर्यंगार,’ कोमल ने बात काट कर कहा—‘विधवा कहो, एक मृत जमींदार की विधवा !’ और वह हँस दी ।

गोपालन के शरीर में वह हँसी ज्वाला बन कर फैल गई । उसने नितान्त कठोरता से कहा—‘विधवा ही सही । किन्तु तुम्हारे स्वामी मर कर भी जमीन तो अपने साथ ले नहीं गये ! उसकी तो तुम्हीं स्वामिनी हो । धन तो तुम्हारे पास है ही । तभी तुम्हें आज्ञा देना आता है ! इसी से बुलवाया था न ? मुझ-जैसे ब्राह्मण खरीद लेना क्या तुम्हारे लिये कठिन है ?’

कोमल मुस्कराई, और बोली—‘नहीं, आर्यंगार, यह गलत है ! यदि मैं अपने को घर के भीतर रखने का प्रयत्न न करती, तो संसार मेरी ओर उँगली उठा कर कहता है कि ‘देखो, मरने का आसरा देख रही थी । उसके जाते ही इसका रास्ता खुल गया ।’

गोपालन ने सुना । पर वह कुछ भी नहीं समझ सका । वह चुप खड़ा रहा । कोमल ने फिर कहा—‘जानते हो, मैं तुम्हारे पास क्यों आई हूँ?’

‘नहीं!’ उसका स्वर गूँज उठा ! अब भी जैसे उसे उससे कोई समवेदना नहीं थी ।

कोमल कहती गई—‘जानते हो, मेरे स्वामी शराब पीने लग गये थे?’

‘जानता हूँ ! वह पापी था !’ गर्व से उसने सिर उठा कर कहा ।’

‘हूँ !’ कोमल हँस दी । ‘पापी कौन है, यह तो ईश्वर ही जानता है । मैं तो केवल यह जानती हूँ कि वह मेरे स्वामी थे !’

गोपालन ने सिर उठाया । देखा, वह तनिक भी लज्जित न थी, जैसे चिता की राख कभी लज्जित नहीं होती, चाहे उस पर कुत्ते चलते रहें या गीदड़ !

‘स्वामी !’ गोपालन के मुँह से निकला—‘तो वह शराब क्यों पीता था ?’

‘डॉक्टर ने कहा था कि दवा के रूप में पिया । किन्तु वह भी आदमी ही थे, आदत पड़ गई । बहुत पीने लगे स्वास्थ्य गिर गया । किन्तु छोड़ नहीं सके । दोष तो मेरे सुहाग का है, उनका नहीं ! आखिर गलती आदमी से ही तो होती है !’

गोपालन ऊब गया । उसने पूछा—‘तो तुम मुझसे क्या चाहती हो ?’

‘पिता जी की उनसे लड़ाई थी, यह भी तुम शायद जानते हो । और मैं पिता के घर नहीं जाती, यह भी तुम्हें शायद मालूम है । मालूम है न ?’

गोपालन ने सिर हिला दिया ।

‘आज उनकी मौत पर मेरे पिता ने हर्ष मनाया है ! सारा समाज उनकी ओर है, क्योंकि उनके पास पैसा है !’

‘पैसा तो तुम्हारे पास भी है !’ गोपालन ने व्यंग्य से कहा ।

‘कहाँ ! जब था, तब था ! अब तो नहीं है !’

‘क्यों ? सब क्या हो गया ?’

‘शराब मुफ्त तो मिलती नहीं ?’ और वह फिर हँसी । गोपालन अचरज भरी आँखों से देखता रहा ।

वह फिर बोली—‘तुम्हारे धर्म में पिता पुत्री का शत्रु होकर भी धार्मिक ही रहता है ! लेकिन मैं भी सिर नहीं झुकाऊँगी ! देखते हो, जो गहने पहने हूँ ! बेंच दूँगी इन्हें । पति का क्रिया-कर्म तो करना ही होगा । नहीं मानती न सही; नहीं जानती, न सही ! किन्तु मनुष्य मर कर प्रेत नहीं होता यह भी तो नहीं जानती ! पुरखे जो कुछ करते आये हैं, उसे कर देना भी तो जरूरी है, आर्यगार ? और फिर एक ज़मींदार का क्रिया-कर्म भी तो उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल और अनुरूप ही होना चाहिये न ?’ वह रुक गई जैसे श्वास लेने के लिए ।

‘तो तुम तैयार हो ?’ दो क्षण निस्तब्ध रहने के बाद उसने कहा—‘ब्राह्मण आते नहीं । मैं तो कहीं आ-जा नहीं सकती । तुम अपने ऊपर क्रिया-कर्म करा देने को ज़िम्मेदारी लेते हो ।’

गोपालन चुप रहा ।

‘नहीं होता साहस ?’ उसने पूछा—‘यदि तुम्हारा धर्म, एक बात आवश्यक करके उसका साधन केवल रिश्वत के बल पर दिला सकता है, तो मैं कुछ नहीं कहती ! क्रिया-कर्म न होगा तो न हो ! तब मेरा सुहाग भी समाप्त न होगा ! जब तक वह प्रेत हैं, तब तक मैं विधवा नहीं हूँ । मैं ऐसे ही शृङ्गार करती रहूँगी । तब एक दिन लाचार होकर तुम ब्राह्मणों को शायद मेरी हत्या करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जायगा !’

गोपालन के हृदय को जैसे किसी ने से जोर से नोच लिया । प्रेत की पत्नी ! कौन ? कोमल ! नहीं, नहीं, यह अत्याचार नहीं हो सकता !

उसने सिर उठा कर दृढ़ स्वर में कहा—‘जाओ ! लौट जाओ ! मैं आऊँगा तुम्हारे सुहाग का अन्त करने ! जिस धर्म ने ब्राह्मण को सब-कुछ बनाया है, उसी ने ब्राह्मण का सबसे बड़ा अपराध धर्म के काम न आना भी कहा है ! तुम्हारा पति पापी था । मैं उसकी आत्मा को न केवल प्रेत-योनि से छुड़ाऊँगा, बल्कि उसे पवित्र भी करूँगा । युग-युग के अंधकार में वह नहीं भटकेगा । उसकी प्यास बुझेगी, उसकी भुख मिटेगी । तुम्हारे सौभाग्य का कुमकुम मिटा कर मैं तुम्हें भी पवित्र कर दूँगा । तुम्हारी यातना को मैं मंत्रों से केवल समाप्त ही नहीं करूँगा, वरन् एकादश के दिन स्वयं प्रेत का यम-भोज करूँगा, और वह सीधा स्वर्ग चला जायगा !’ कह कर गोपालन ने उसकी ओर इस तरह देखा, जैसे आशा कर रहा हो कि वह कृतज्ञता से नतमस्तक हो जायगी, क्योंकि एकादश का यम-भोज अग्नि की भेंट किया जाता है, क्योंकि परम्परा का विश्वास है कि पवित्र वैदिक रीति से चलने वाला ब्राह्मण उसे खाकर अधिक दिन जीवित नहीं रहता ।

किन्तु कोमल अप्रभावित-सी खड़ी थी । उसने सिर हिला कर कहा—‘वह सब तो नहीं होगा, आर्यंगार ! जो खाली हो गया है, वह तो कभी भी नहीं भर सकेगा । हाँ क्रिया-कर्म अवश्य हो जायगा । मैं कृतज्ञ होऊँगी !’

गोपालन किंकर्तव्य-विमूढ़-सा हो गया । वह क्या कहे ?

तभी कोमल ने मुड़ कर कहा—‘तो, आर्यंगार, कल नवाँ दिन है । कल ही से काम प्रारम्भ होगा ।’

‘तुम निश्चित रहो !’ गोपालन ने उत्तर दिया ।

कोमल झुकी और प्रणाम किया । उसकी आँखों से दो बूँद और पृथ्वी पर टपक पड़ी । उसने कहा—‘जाती तो हूँ !’ ‘यह मैं जानती हूँ कि मेरे आने के पहले तुम मुझसे क्रुद्ध थे । अब तो नहीं हो ?’

‘नहीं !’ गोपालन ने निर्विकार हो कर कहा ।

‘तुम पूरे पत्थर हो ! तुम्हारा हृदय शायद मेरे अत्याचारों के कारण अब बिलकुल निर्जीव-सा हो गया है ?’

‘नहीं !’ गोपालन ने कह कर मुँह फेर लिया । फिर उसने एक क्षण रुक कर कहा—‘यह गर्व लेकर न जाना कि तुम ने मुझे मूर्ख बना दिया है । जो कुछ मैं कर रहा हूँ, वह केवल इसलिये कर रहा हूँ कि ब्राह्मण होने के कारण लाचार हूँ ! मैं तुम पर कोई भी एहसान नहीं कर रहा हूँ ! और न मैं तुम्हें प्यार करता हूँ !’

कोमल हँस दी । उसके होठों पर एक तरलता सिहर उठी । उसने स्नेह-भरे स्वर में कहा—‘बालक !’

जब वह चली गई, तो गोपालन काम में लग गया ।

दूसरे ही दिन धूम-धाम से क्रिया-कर्म प्रारम्भ हो गया । पहले जो ब्राह्मण हिचक रहे थे, अब वे अपने आप आने लगे । गोपालन ने अपने हाथ से कोमल के गहने बेच कर उसके सामने रुपये रख दिये । काम चल निकला । प्रारम्भ के सारे विघ्न राह से हट गये ।

इस सब से जो सबसे अधिक क्रुद्ध हुई, वह राजम थी । उसने पूछा ‘क्यों, काफी मिलेगा ?’

गोपालन ने उपेक्षा के भाव से कहा—‘भौत का काम है, शादी का नहीं कि ज़िद करूँगा ! ज़मींदार की विधवा जो दे देगी, ले लूँगा ?’

‘ओ हो ! अब तो पूरे धर्मात्मा बन गये ! यहाँ मुफ्त भर पेट खिलाती हूँ न बाप-बेटे को, इसी से दिमाग आसमान पर चढ़ा जा रहा है ! अगर सौ रुपये लाकर मुझे न देना हो, तो यहाँ मुँह मत दिखाना ! हयादार होगे, तो आप ही यहाँ लौट कर न आओगे ! भली कही ! रोज़ बड़े आदमी मरते हैं न कि उनका भी काम मुफ्त किया जाय ! देने को पैसे न हों, तो मान भी लिया जाय । जमीन तो छाती पर बाँध कर ले नहीं गया ! अभी बहुत है । फिर अभी से क्यों फटी जा रही है उसकी-

छाती ! मरे का परलोक सुधारने में भी पैसा खर्च न करेगी ! कंजूस कहीं की !'

‘भाभी !’ पहली बार गोपालन ने कठोर प्रतिकार किया—‘मैं कुत्ता नहीं हूँ ! समझीं ?’

‘तो मैं भी गाय नहीं हूँ ! समझे ? बैल भी जब हल चलाते हैं, तब खाने को पाते हैं । और यहाँ बाप और बेटे दोनों की जुगाली सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गये ! मैं कहे देती हूँ...’

गोपालन से अधिक नहीं सुना गया । चिल्ला उठा—‘भाभी ! तेरा पाई-पाई चुका दूँगा ! जब तूने खिलाया था, तब मैं छोटा था, नहीं तो कभी वह जूहर न खाता ! पिता वृद्ध हैं । तू जो अपना सुहाग लिये फिरती है, सो अपने पति को तू ने नहीं खिलाया था । इस बूढ़े ने ही अपनी हड्डी निचोड़ कर उसे खिलाया-पिलाया था ! समझीं ?’

राजम अवाक देखती रह गई । गोपालन के चले जाने पर, उसने वृद्ध नयनाचारी को जा घेरा । कहा—‘देवर वेंकटरामन् के एकाह (एकादश) में बैठने वाले हैं !’

‘सो तो उसे करना ही चाहिये ! ब्राह्मण का बेटा है न !’ वृद्ध ने कहा । उनकी वाणी हमेशा नम्र रहती ।

‘और पैसा कुछ भी नहीं मिलेगा !’ राजम ने उकसाया ।

‘न सही !’ वृद्ध ने प्रसन्न होकर कहा—‘किन्तु धर्म का काम तो करना ही होगा । यदि पैसे के बल पर ही क्रिया-कर्म हो, तो मुझ जैसे गरीब का तो कभी न हो सकेगा !’

राजम लाचार हो गई । वृद्ध के पीछे ही वह बड़बड़ाती थी । सामने कुछ कहने का साहस नहीं होता था । उसने अंतिम बाण मारा—‘देवर ब्रह्मचारी हैं । क्या उसका एकाह में बैठना उचित होगा ? यदि वह भी नहीं रहेगा, तो फिर वंश कैसे चलेगा ? कौन देगा हम सबको पानी ?’

वृद्ध चौंक उठा । उसने सोचकर कहा—‘तो उस मूर्ख से किसने

कहा कि वह एकाध में भोजन करे ? किसने कहा उससे ? बाप के रहते बेटा बैठ जाय, ऐसा तो कभी नहीं सुना ! मैं बैटूँगा ! घबरा मत ! तेरे देवर का बाल भी बाँका न होगा ! न जाने मुझसे कौन कहता था कि अब समय आ गया ! सचमुच समय आ गया !' और वृद्ध गंभीर हो गया ।

दिन बीत गया । सौंभ बीत गई । रात हो गई । वृद्ध वैसे ही चिंता में मग्न-सा बैठा रहा, जैसे अपने लम्बे रास्ते को मुड़ कर देख रहा हो और अपने पिछले प्रत्येक कर्म को याद कर रहा हो, जैसे उसे उन पुराने पथों से मोह हो गया हो जो अब उसे सदा के लिये छोड़ देने होंगे । वह नहीं रहेगा नहीं रहेगा, और दुनिया फिर भी चलती जायगी, चलती जायगी । किंतु फिर भी उसे दुख नहीं था, डर नहीं था । जैसे जीवन को उसने स्वीकार किया था, वैसे ही मृत्यु को भी वह चुपचाप स्वीकार कर लेगा । सारा जीवन एक खेल-सा लग रहा था । कल तक सब के केन्द्र वही थे और कल जब वह नहीं रहेंगे, तो बेटा छाती पर पत्थर रख कर रो लेगा । और क्या करेगा बेचारा ? सदा के लिये सब काम तो रुकेंगे नहीं । किन्तु इसके लिये क्या दुख ? यह परम्परा तो ऐसे ही चलती जायगी । पिता पुत्र का संसार बनाये, और पुत्र पिता का परलोक बनाये । इसीलिये तो इतने स्नेह, इतनी भक्ति की सृष्टि हुई है । ... एकाह में बैठना होगा । ब्राह्मण होकर केवल धन के लिये मरे, तो वह कुत्ते से भी बदतर ! आज ब्राह्मण जो लोलुपता दिखा रहे हैं, इसी कारण तो उनका मान नहीं रहा । अब बड्डन (भंगी) भी राहों पर आते समय आवाज देकर हट नहीं जाते । फिर मन में विचार आया—क्या वे मनुष्य नहीं हैं ? क्या अब उनकी छाया लगने से भगवान् अस्पृश हो गये ? नहीं मृत्यु की महान् समता के उच्च आदर्श के प्रकाश में वृद्ध ने उस जड़वाद को दुतकार दिया ।

कल गोपालन याद करेगा कि वृद्ध यहाँ बैठा था, यहाँ पूजा करता था और बैठकर घंटों सोचेगा, घबरायेगा । किन्तु होते-होते

सब ठीक हो जायगा। समय अपने आप ठीक कर लेगा। वृद्ध का हृदय अतीव स्नेह से एक बार विडल हो गया। मृत्यु आकर सब-कुछ समाप्त कर देगी और पागल बेटा उस मिट्टी को चिता पर रखते समय रोयेगा।

मृत्यु ! वृद्ध के मुँह से वेद के महामृत्युंजय मंत्र के शब्द फूट निकले— 'अयंभवंकं...' जैसे आज वह अनेक शक्तियों से पूर्ण महावृद्ध अयंभवंक का यम को क्षण भर रोकने के लिए आवाहन कर रहा हो।

और जो कुछ अभी तक हुआ है, कल ऐसे लगने लगेगा जैसे कभी नहीं हुआ। राख को बहा कर जब पुत्र लौटेगा, तब संसार में नयनाचारी नाम का कोई चिन्ह तक नहीं रहेगा। आज तक जिस सबको अपना समझा था, यह सब पराया हो जायगा। सब पीछे छूट जायगा, सब रह जायगा। किन्तु केवल वही नहीं रहेगा। 'कल मैं ही एकाह मैं बैठूँगा !' और वृद्ध वैसे ही बैठा रहा। जैसे आज जीवन मृत्यु का महान् आवाहन कर रहा हो !

राजम स्तंभित-सी, डरी-सी सोच-विचार में पड़ गई। 'यह बूढ़ा क्या करने वाला है ? क्या सचमुच वह जाकर एकाह में बैठ जायगा ? एकाह का भोजन वह अग्नि की भेंट क्यों नहीं कर देते ? किन्तु उनकी बला से ! जब एक मूर्ख ब्राह्मण मिल रहा है, तो अग्नि में क्यों डाले ? और दक्षिणा के नाम पर दिखा देंगे सींग ! कुछ नहीं ! कौन देता है सिर्धार से ?' वृद्ध नयनाचारी और गोपालन के प्रति उसके मन में ममता जाग उठी। 'कुछ भी हो, अपने तो ये ही हैं ! ईश्वर की इच्छा ! जो होता होगा, वह होगा ही।'।

एकाएक वह ब्राह्मण जाति को मन-ही-मन तिरस्कार से गाली दे बैठी। किन्तु फिर ध्यान आया कि यह ब्राह्मण की ही महिमा थी कि वे जान गये कि मरने पर आदमी प्रेत होता है, और... वह डर गई, और प्रायश्चित्त के रूप में भगवान के समक्ष सिर झुका कर हाथ जोड़ दिये।

“वह चुपचाप देखती, गोपालन व्यस्त रहता। ब्राह्मणों को कोमल उसी की राय लेकर दक्षिणा देती। सब काम वही करता। कोई-कोई स्त्री उसकी ओर संदेहपूर्ण दृष्टि में देखती कि इसे इन सबमें इतनी दिलचस्पी क्यों है। किन्तु वह शोक का काम था। इसीलिए उसकी चर्चा चल न पाती, वरना यहाँ कोई ऐसा न था, जो कोमल और गोपालन के सम्बन्ध के अनौचित्य की संभवता पर विचार करना पसन्द न करता हो।

उन दोनों के सम्बन्ध के विषय में सन्देह लोगों को बहुत पहले से ही था। अब सन्देह सत्य-सा लगने लगा।

राजम को क्रोध आया। ‘तभी सब काम मुफ्त किये जा रहे हैं ! राई से लगाव जो हो गया है ! देखो तो, ऊपर से कैसा चिकना बादाम लगता था ! मगर अन्दर की किसे खबर थी ?’

ग्यारहवाँ दिन अपनी पूरी भयंकरता के साथ सिर पर आ गया। जब कोमल को देखकर स्त्रियाँ इधर-उधर से आ-आकर छाती पीट-पीट कर रोने लगीं तब वाद्यार (पुरोहित) ने अग्नि में आहुति दी। खाना केले के पत्ते पर परोस दिया गया। कोमल चुप खड़ी रही। उसकी आँखों में एक भी बूँद आँसू नहीं था, बल्कि एक गर्व था कि देखो, किसी के किये कुछ न हुआ, क्रिया-कर्म हुआ और हो रहा है।

वाद्यार और अनेक ब्राह्मणों ने मन्त्र पढ़ने शुरू किये। ‘प्रेत’ शब्द साक्षात् कराल प्रेत बनकर आग से उठते धूँए को झकझोर गया। वाद्यार ने एकाएक पूछा — ‘एकाह में कौन-कौन बैठेगा ?’

ब्राह्मण एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। किसी को नहीं मालूम था कि दक्षिणा क्या मिलेगी। व्यर्थ कौन मौत सिर पर मोल लेता ? शठकोपन् ने बैठे-बैठे ही कहा—‘अग्नि को होम करो वृहस्पती !’

‘नहीं !’ गोपालन ने आगे बढ़ कर कहा—‘मैं बैठूँगा !’

सब ने अचरज से उसकी ओर देखा। वाद्यार रुककर बोला—
‘तुम्हारा नाम?’

उसी समय गोपालन ने विस्मय से देखा, एक वृद्ध ने पीछे से
कहा—‘नयनाचारी!’

वाद्यार ने पूछा—‘पिता का नाम?’

‘विजयराघवाचारी!’ उसके मुख पर एक मुस्कराहट फैल गई।

गोपालन चिल्ला उठा—‘पिताजी, यह तुमने क्या किया?’

वाद्यार तब तक नयनाचारी पर यम का आवाहन कर चुका था।
गोपालन का हृदय भर आया। वह बोला—‘किन्तु, पिता जी तुम मर
जाओगे! क्या तुम नहीं जानते कि पवित्र आचरण रखने वाला ब्राह्मण
इसके बाद अधिक दिन तक नहीं जीवित रहता?’

वृद्ध ने मुस्करा कर कहा—‘श्रीनिवास ने स्वप्न में जो कह दिया है,
वह क्या झूठ होगा? जा, राजम तेरा विवाह करा देगी। इसके बाद
मुझे पितृ-ऋण से मुक्त कर देना।’

किन्तु गोपालन नहीं हटा। वृद्ध ने धक्का देकर उसे हटा दिया,
और खाने बैठ गया।

वाद्यार मन्त्र पढ़ता रहा। कभी-कभी अन्य ब्राह्मण भी स्वर में
स्वर मिलाते। उनके गम्भीर शब्द से अग्नि थरथराने लगी, धुँआँ चारों
ओर फैल गया, और प्रेत की अनन्त यात्रा सजीव होकर आँखों के
सामने नाच गई।

जब वृद्ध खाकर उठा, तो वह मुस्करा रहा था। वाद्यार ने दक्षिणा
देने को जब हाथ उठाया, तो वृद्ध ने अंजलि लेकर सब ब्राह्मणों को
बांटने का इशारा किया। प्रेतत्व धन पर डट गया। पच्चीस रुपये
ब्राह्मणों में बँट गये।

वृद्ध चल गया। क्रिया-कर्म सम्पन्न हो गया। घर-घर नयनाचारी

की तारीफ होने लगी ! किन्तु राजम ने गोपालन और कोमल की बदनामी करनी शुरू कर दी ।

बृद्ध घर पहुँचते ही शैय्या पर जा लेटा, और जाने क्यों इतना अशक्त हो गया कि उठ नहीं सका । तीसरे दिन जब राजम, गोपालन घर पर नहीं थे, हाथ-पैर फेंककर वह अपने विश्वासों पर बलि हो गया, मर गया ।

घर आकर राजम और गोपालन ने देखा, और रो-धोकर उसका दाह कर दिया । किन्तु क्रिया-कर्म के लिए रुपये नहीं थे ।

गोपालन कोमल के सामने उपस्थित हुआ ।

‘सुना, आयङ्गार ! बहुत दुख हुआ !’ कोमल ने कहा—‘तुम्हारे पिता मनुष्य नहीं देवता थे !’ और बिना माँगे ही सौ रुपये निकाल कर दे दिये ।

गोपालन रो दिया ।

कोमल ने कहा — ‘आयङ्गार, एक बात कहूँ ? बुरा तो नहीं मानोगे ?’

‘नहीं ।’ गोपालन ने उसकी ओर देखते हुए कहा ।

‘जानते हो, दुनिया हमें बदनाम कर रही है ?’

‘मालूम है !’ गोपालन ने छोटा-सा उत्तर दिया ।

‘डरते तो नहीं ?’ उसने फिर पूछा ।

‘नहीं ! डरूँ क्यों ? क्या हममें अनुचित सम्बन्ध है ?’

‘अनुचित सम्बन्ध तो है, आयङ्गार ! उसे तुम यों नहीं मिटा सकते !’ कोमल ने उसके चेहरे पर आँखें गड़ा कर कहा ।

‘क्या कह रही हो ?’ गोपालन का स्वर काँप गया ।

‘क्यों ?’ कोमल ने कहा—‘सम्बन्ध क्या शारीरिक होने से ही अनुचित होता है, मानसिक होने से नहीं ?’

‘वह तो केवल धारणा-मात्र होती है,’ उसने सकपका कर कहा ।

कोमल हँस पड़ी ! उसने सिर हिलाकर कहा—‘तो तुम्हारा प्रेम,

उन्माद, पागलपन, सब केवल एक साधारण धारणा थी, जो आई और चलो गई ? फिर जान देने पर क्यों तुले थे ?

गोपालन लजा गया । कोमल ने ही फिर कहा—‘हम बदनाम तो हो ही गये ! अब और किसी पर तो मैं विश्वास कर नहीं सकती । तुम्हारा ही भरोसा है । तुम्हीं जमींदारी का काम सँभालो । जानते हो, मैं औरत हूँ । सब काम अकेले नहीं कर सकती ।’

गोपालन चुप रहा । अर्थात् उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया ।

राजम को चैन न आता था, न आया । पहले गोपालन रोटियों के लिये उसका मुहताज था, पर अब नहीं रहा । जमींदारी का इन्तजाम करता, और बड़ी खूबी से करता । सारा रुपया कोमल को दे देता । वह जो देती, ले लेता । बात पलट गई । पहले वह रोटियों को तरसता थे, अब वह राजम को उल्टे रुपया देता । पहले राजम के दस काम-कर था, अब राजम अकेली पड़ गई । इसी से जब कोई अधिकार जताने और लड़ने को नहीं रहा, तो वह व्याकुल हो उठी । सुहागिन वह अब भी थी, किन्तु कुंकुम लगा कर क्या पत्थरों पर सिर पटकती ? वृद्ध जहाँ-जहाँ बैठता था, वहाँ-वहाँ उसे बैठ कर एक विश्रांति की सांवना-सी मिलती । वृद्ध की मृत्यु का एकमात्र कारण गोपालन को समझ कर, वह और भी उसके विरुद्ध हो गई । ढल चली थी, मगर अभी बूढ़ी तो नहीं हुई थी । धीरे-धीरे उसको इस बात से सन्तोष होने लगा कि कोमल और गोपालन के सम्बन्ध की बात घर-घर चल रही थी । सब उस पाप का रोकना चाहते से, किन्तु कोई सिलसिले का छोर हाथ में नहीं आता था कि पकड़ कर खींच लें और सारा पर्दा सर से खुल जाय ।

कोमल ने गोपालन को देखा, और चितित स्वर में बोल उठी—
‘सुना, आर्यगार ? अब तो रहना भी कठिन होता जा रहा है ! ऐसे कब तक चलेगा ?’

गोपालन ने पानों पर चूना लगाते हुए कहा—‘तुममें तो साहस था न ? फिर डरती क्यों हो ?’ कहते हुए उसने सुपारी मुँह में डाल कर आठों पानों को मुँह में भर लिया और चबाने लगा ।

कोमल कुछ देर तक चुप खड़ी रही । फिर बोल उठी—‘डरती हूँ ! सच, आर्यगार, मैं अपने मन से डरती हूँ ।’ वह हठात् चली गई ।

गोपालन के हृदय में एक कील-सी चुभ गई ।

साभ्र ब्रीत गई । दीपक जलने लगे । उनके घूमिल प्रकाश में गोपालन ने देखा, कोमल चुपचाप खड़ी थी ! वह उसके पास चला गया ।

कोमल उसे देखकर सिहर उठी । कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—‘मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया है ! क्यों ?’

गोपालन ने सिर हिला कर अस्वीकार किया । फिर मुँह खोला और बन्द कर लिया ।

‘कुछ कहना चाहते थे ? कहते क्यों नहीं ? मैं क्या तुमसे कुछ कहती हूँ ? तुम्हारी ही दया से तो सब काम ठीक तरह चल रहे हैं !’ कहने को तो कह गई पर फिर नीचे का होंठ दाँत से काट लिया ।

गोपालन ने वह सब नहीं देखा । वह बोला—‘दया तो तुम्हारी है, कोमलम्मा ! तुम्हारे पास रहकर मुझे जितना सुख मिलता है उतना और कहीं भी नहीं मिलता !’

‘क्यों !’ उसने उसे और उसकाया ।

‘तुम मुझे बड़ी अच्छी लगती हो !’ गोपालन ने कहा—‘सच, बहुत अच्छी लगती हो !’

देखा, वैधव्य में भी वह वैली ही सुन्दर थी और उसकी मादकता अब भी धीरे-धीरे उस पर रेंग रही थी । गोपालन का हृदय आतुर हो उठा । धुँधला प्रकाश एक नशा-सा दे रहा था । दोनों आँखें खोल कर एक-दूसरे को ऐसे देखते रहे, जैसे चार दीपक और जल उठे हों !

गोपालन ने आन्दोलित होकर कोमल का हाथ पकड़ लिया। कोमल ने बेसुध-सी होकर आँखें मूँद लीं। किन्तु सहसा वह हाथ झटक कर खड़ी हो गई।

गोपालन चौंक कर पीछे हट गया। कोमल की आँखों में क्रोध की भीषण ज्वाला धधक रही थी। वह ठठा कर हँस पड़ी। गोपालन भय से काँप उठा।

कोमल ने उसकी ओर उँगली उठा कर कहा—‘तुम ! तुम एक स्त्री को अकेली जान कर उसका अपमान करना चाहते थे ? तुम एक विधवा को अपवित्र करना चाहते थे ? तुम कहोगे शरीर से क्या होता है ? किन्तु मन ? मन भी तो तुम्हारा साँप-जैसा काला और विपैला है ! तुम, जिसे मैंने दया करके इतने दिन खिलाया, तुम मेरी जड़ काटने पर उतारू हो गये ! पापी !’

गोपालन जड़ हो गया। चेहरे पर काला रङ्ग पुत गया।

किन्तु कोमल चुप नहीं हुई। वह बोलती ही गई—‘घर पर तुम कुत्तों की तरह भाभी की दया पर पड़े थे। एक दिन तुमने मेरी ओर हाथ बढ़ाया था, किन्तु मैंने तुम्हें फिर भी अपना स्नेह दिया ! और अन्त में तुमने यह चाहा कि मैं कहीं की भी न रहूँ !’

गोपालन का कंठ अवद्व हो गया। वह कुछ भी नहीं कह सका।

कोमल उसके पास आ गई। उसकी आँखों में आँसू थे। उसने रोते-रोते उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—‘मैं जानती हूँ, आर्यंगार ! समुद्र-तीर की बालू पानी सोखती नहीं, तो क्या भीगने से बची रहती है ? तुम ने मेरे पीछे ही सब कुछ त्याग दिया ! नाम भी छोड़ दिया ! मैं जानती हूँ, तुम्हारे मन में मेरे लिये अटूट, अक्षय स्नेह है एक काम करोगे ?’

गोपालन पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा।

कोमल ने फिर कहा—‘जाओ, गोपालन ! आज मैंने पहली बार

तुम्हारा नाम लेकर पुकारा है ! सदा के लिये इस देश से चले जावो ! कोन है तुम्हारा यहाँ जिसके लिये रहना चाहते हो ? आग और फूस-साथ एक साथ नहीं रह सकते, गोपालन ! मुझे डर है कि मैं इस अग्नि में भस्म हो जाऊँगी ! मैं तुम से भीख माँगती हूँ, मुझे अकेली तड़पने दो जाओ ! कहीं सुदूर चले जाओ ! विवाह करके सुखी जीवन बिताओ ! ... जाओगे ?

गोपालन ने सिर हिला कर स्वीकार कर लिया । वह निश्चल खड़ा रहा ।

कोमल ने कमर से नोटों की एक गड्डी निकाल कर कहा—‘यह लो, गोपालन ! ले लो इसे !’

किन्तु गोपालन ने नोटों को नहीं छुआ । वह द्वार की ओर चलने लगा ।

कोमल ने हठ करते हुए कहा—‘लेते जाओ इन्हें, नहीं तो दर-दर भटकोगे ! ... ब्राह्मण के बेटे को भीख लेने में लाज क्यों ?’

गोपालन ने फिर भी उत्तर नहीं दिया । वह बढ़ता ही गया ।

कोमल ने फिर कहा—‘भूखों मर जाओगे ! यही कौन मालिक थे, जो इतनी अकड़ दिखा रहे हो ? मुझ पर एहसान रहने दो ! तुम दरिद्र हो ...’

किन्तु गोपालन चला गया ।

कोमल ने कुछ देर इधर-उधर देखा, और फिर फूट-फूट कर रो उठी ।

... अनेक वर्ष बीत गये थे । उसका हृदय अब भी अपमान से तड़प उठता था ।

गोपालन ने आँखें खोल कर देखा । वही प्राचीन अंधकार अब भी छा रहा था । वह उठा, और छत पर घूमने लगा । सामने ही कुआँ था नीरव । पेड़ भी निस्तब्ध थे । दूर किसी प्राचीन काल का वह ऐतिहासिक खंडहर भी मौन था । चारों ओर भयानक नीरवता थी ।

‘कहाँ है जीवन की ममता का उन्माद?’ हृदय अहंकार से पूछ बैठा ।

दूर कहीं फुलवाड़ी के किसी पेड़ पर बैठा उल्लूहँस उठा—एक डरावनी हँसी, जो उस प्राचीन मन्दिर की इटों से टकरा गई ।

और गोपालन विलुब्ध-सा देखता रहा, अविश्वास के कगारों पर खड़ा, अपनी ही यंत्रणा में घुटा-सा, चुपचाप ।

आज वह परदेस में है । कहीं कोई उसका नहीं । जीवन यंत्र-सा चलता जा रहा है । इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं ।

नरक

१

मैं एक चौमंजिला मकान हूँ

उस मकान को देखकर यही लगता है कि वह किसी मुग़ल ने सराय के रूप में बनवाया होगा, मगर कालांतर में उस पर काई जम गयी और वह काला हो गया । तब कुछ दिन तो उसके बारे में यह अफ़वाह उड़ी कि वह लालाओं की बगीची हो गया है । मगर उसके भाग्य में इज्जत बची थी कि उस नाम को पूर्णतया सफलतापूर्वक अपने ऊपर सिद्ध न कर सका और वह ऐसा न रहा जहाँ शाम को रोज़ भंग घुटती । इसके कारण तो कई थे, मगर किस्सा असल में यह था कि टॉमसन साहब जिनकी कि नील की कोठियाँ थीं उनके नाती हैरिसन साहब कोठियों के बन्द होने पर खर्चा न चला सकने के कारण पहले महायुद्ध के समय उसको लाला हरदयाल के नाम बेच गये थे । और जो हरदयाल जवानी में सर पर पट्टे, लम्बी कलम, चिकन का अङ्गरखा और काली किनारी की धोती पहनता था अब बुढ़ा होकर नतिनी की धोती पहनता है ।

कन्धे पर पाप का गट्टर है और मुँह में गाली । बेटे और नाती से चिढ़ है क्योंकि उन्हें कमा-कम, या धन मिल जायेगा । इसलिये घर से अलग रहता है । धुवली हो गयी है आँखें, मगर मजाल है कोई उस पर खोटा रुपया चला ले । वह दो रुपये लेकर संसार पथ पर चला था, आज लाखों की जायदाद खड़ी थी । क्या नहीं किया जवानी में—जूआ नहीं खेला कि शौक नहीं किये । मगर जो किया अपने बूते पर किया । किस चीज से रुपया नहीं कमाया ? चुङ्गी के चुनाव में उसी को वोट दी जिसने सबसे ज्यादा रुपया दिया । बीमा कराया दूकान का, और आग लगाकर जल्दी ही तमाम रुपया ले लिया । धेली बिना सूद खाये वापिस नहीं ली—जैसे राजपूत की तलवार एक बार निकल कर बिना खून पिये फिर म्यान में नहीं घुसती ।

मकान के चारों तरफ एक बड़ी बगीची है जिसके एक ओर लम्बा मैदान है सरकारी । बगीची में अनेक पेड़ हैं : कहीं आम के, कहीं जमुना के; कहीं घनी छाँह, कहीं बिल्कुल नहीं । दो-एक नल हर जगह नज़र आ ही जाते हैं, और मकान बड़ी अजीब तरह से बना हुआ है । यां कहिए कि वह चारों ओर की बसा हुआ है । चार मंज़िल हैं । नीचे की कोठरियों में गरीब लोग बसते हैं ।

आज हरदयाल को यहीं रहते हुए पैंतालीस बरस हो गये, किन्तु उसे सिवाय रुपये के और किसी बात की चिन्ता नहीं । बगीची के मन्दिर में ही वह अक्सर बैठा रहता है । मकान को देखकर लोग अचरज करते हैं । युगांतर से वह स्तब्ध मूर्ति खड़ी है । पत्नी पत्तों में घुसे रहते हैं, जानवर उसको मोरियों और लुङ्गों के बीच या पीछे की ओर नीचे ।

पूछा है—तू कौन है ? और वह प्रतिध्वनि कर पूछता है—तू कौन है ? मानो पूछने का अधिकार सबको नहीं होता । मगर कभी-कभी रात के सन-सन समीरण की श्रिल-श्रिल ध्वनि में कोई कहने लगता है—मैं

मकान हूँ, मैं समाज हूँ, मैं मानव हूँ.....सब ही तो मुझमें हैं। न मैं पथ का आदि ही हूँ, न अन्त ही।

—२—

पहिली यातना : गदर

सुधीर अपने कमरे में पड़ा-पड़ा दीवार पर मकड़ियों की कारीगरी देखता रहा। एक दिन था जब उसके पास सब कुछ था। किन्तु आज वह केवल एक क्लर्क था। कॉलेज में जो गर्म-गर्म बहस की थीं उनका नतीजा आज केवल पैतालीस रुपयों का भयानक बोझा था।

उसने मन-ही-मन कहा जो नहीं जानता वह भी पिसना नहीं चाहता, पर जो जान-जानकर पिसता है वह कितना निर्बल है ! आज पराजय और परतन्त्रताने उसे कुचल दिया था। यह भी तो सामाजिक जीवन का एक गदर ही था। बगल ही एक कमरा लेकर मिडिल स्कूल के मास्टर साहब रहते थे। वे अक्सर कहा करते—‘देखिये सुधीर बाबू, अपनी मर्जी से कुछ नहीं होता। हमारे पिता एक ज़मींदार साहब के यहाँ कारिन्दा थे। तनख्वाह आठ रुपये महीना पाते थे। मगर ऊपरी आमदनी थी कि हम दसवें दर्जे तक बेखौफ पढ़े। उसी साल वे स्वर्गवासी हुए और हम नौकरी ढूँढा किये। मगर नौकरी ? राम राम। हमारे पिता अङ्गरेजी एक अच्छर नहीं जानते थे; लेकिन काम, बड़े-से-बड़े काम, उन्होंने इशारे पर चलाये। बड़े साहब से मिलना, कलकटर साहब से मिलना। हमने उनकी तमाम कमाई धून में लुटा दी, और फिर भी कुछ नहीं। तब प्राइवेट ट्यूशन करना शुरू किया और आज आपको दुआ से मास्टर होकर दिखा दिया।

सुधीर सुनता और कुढ़ता। मास्टर का जीवन इतना दयनीय था कि उसे उस पर घृणा हो आती थी। मगर मास्टर था कि कभी उसके मुँह से कोई भी शिकायत नहीं निकलती थी। नीचे की मञ्जिल में यही दो कमरे अच्छे थे। उनके नीचे ही गरीब लोग रहते थे। उनकी कोठ-

रियों की दुर्गन्ध कभी-कभी उसके कमरे में भी आ घुसती थी। ऊपर ही कुछ अच्छे कमरे थे और उनमें कौन रहता था यह, यद्यपि वह जानता था, वे लोग नहीं जानते थे, न उन्होंने कभी उसे बुलाया ही। अपने यही ले-देके पढ़े-लिखों में एक मास्टर साहब थे और या फिर वे मज़दूर जो पहले तो उससे डरते थे मगर धीरे-धीरे दोस्त हो चले थे। उन्हें मालूम था कि बाबू सिर्फ पैंतालीस रुपये पाता है। दोनों वक्त खाकर, खास तौर पर साफ कपड़े पहनने को उसके पास कुछ नहीं है। और इसमें उसका कोई दोष नहीं, क्योंकि वह पढ़ा-लिखा है।

सुधीर का असन्तोष उसकी अपनी अभिशप्त विवशता थी। वह मन-ही-मन कुढ़ता कि कोई ऊपर वाला उससे कभी भी बात नहीं करता। जब कभी वह मास्टर साहब से कविता की बात करने लगता, मास्टर साहब सुनाने लगते, ‘ग्रजी साहब, अब तो लोगों को कविता का शौक ही नहीं रहा। पहले जब हम पढ़ते थे तो वह अन्तार्जरी होती थी कि देखने वाले दङ्ग रह जाते थे। अब भी जब गाँव जाते हैं एक आध तो जम ही जाती है।’

सुधीर वहीं बात खत्म कर देता। किन्तु मास्टर साहब कहते— ‘सुधीर बाबू, कवि तो गिरधर हुए हैं। क्या-क्या कुंडलियाँ कही हैं! वाह, लाठी पर तो कमाल कर दिया है!’

सुधीर क्रोध से दूसरी बात छेड़ देता। मास्टर साहब फिर से सह-योग देने लगते।

×

×

×

किसी ने द्वार को थपथपाया। सुधीर ने पड़े-पड़े पूछा—‘कौन है?’ ‘अरे भाई मैं हूँ’—कहते हुए खड़ाऊँ की खट-खट से कमरे को गुँजाते हुए मास्टर साहब घुस आये। सुधीर खाट पर बैठ गया। मास्टर साहब भी बैठ गये।

‘क्यों कुछ तबियत खराब है क्या?’ मास्टर साहब ने धीरे से पूछा।

‘हाँ कुछ ऐसी ही थी ।’

‘सो ही तो मैंने कहा । दिया जले ही तुम तो आज खर्राटे भरने लगे ।’

मास्टर साहब हँस दिये । सुधीर मन-ही-मन भुनभुनाया । आज मास्टर साहब कुछ प्रसन्न-से थे । अपने आप बोले—‘तुमने सुना यार ?’

‘नहीं तो; क्या हुआ ?’

‘और, कोई खास बात नहीं,’ मास्टर साहब ने उपेक्षा दिखाते हुये कहा—‘ऐसे ही ।’

‘तो भी ! तो कुछ हम भी तो सुनें ?’

‘आज बुलाया था ।’ मास्टर साहब ने ऊपर इशारा करते हुए कहा । ‘हाँ !’ और फिर सिर हिलाया, उनकी चुटिया ने उनकी गर्दन को दो-चार हल्की-हल्की थपकियाँ भी दी ।

सुधीर ने विस्मित होकर पूछा—‘यार किसने बुलाया था ?’

‘ऊपर जो बाबू रहते हैं उन्होंने ।’ मास्टर ने गर्व से कहा ।

‘क्यों ?’

‘उनकी एक छोटी-सी बच्ची है । उसे हिन्दी पढ़ानी है । उस्ताद, चार रुपये महीना देंगे । घर के घर की बात है । हम तो कहते हैं मेल-जोल बढ़ेगा तो अपना ही तो फायदा है । क्यों, है न ?’

सुधीर ने मास्टर साहब की प्रसन्नता देखी और उसने सिर झुका लिया ।

मास्टर साहब हँपित-से कहते रहे—‘आदमी बड़ा सज्जन है । पाँच सौ पाता है, मगर घमण्ड छू तक नहीं गया । साहब, यह तो खानदान का असर होता है । आप अपने अच्छे खून के हैं तो रुपये की गर्माँ आपको जल्दी नहीं चढ़ सकती । परमात्मा देता उन्हीं को है जो वास्तव में योग्य होते हैं ।’

सुधीर के दिमाग में बड़ी-बड़ी कब्रें थीं। यह बात भी उसके दिमाग में एक लाश बनकर उतर गयी।

—३—

दूसरी यातना : ईश्वर की दया

मन्दिर में भाँभ बजती रही। रात के एक बजे तक कीर्तन होता रहा। कहने को तो सेठ रामलाल ने भी आने को कहा था; किन्तु वह अभी तक नहीं आये थे। उनके पिता ने खोन्चा लगा-लगाकर इतना रुपया इकट्ठा कर लिया था कि नौ बेटों के अलग-अलग मकान खड़े थे। बेटों की बहुएँ आयी थीं। जब से पाँचवी बहू आयी घर में बैटवारा शुरू हो गया। घनश्याम सिर पीट कर रह गया। बहू मिडिल पास थी। तब लोगों ने समझाया कि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं।

भाँभ बजती रही और राधे-राधे श्याम-श्याम का सम्मिलित स्वर गूँजता रहा।

सुधीर को लगता जैसे दिन भर के शोषण के बाद यह प्रयत्न वैसा ही था जैसा कि कोई विद्यार्थी साल भर तो कुछ नहीं पढ़े और इम्तहान पास आने पर ईश्वर से कहे : मुझे पास कर दे, मुझे पास कर दे। किन्तु मास्टर साहब कहते — “पुण्य की बात है। भगवान् का स्मरण है। और कुछ तो कलियुग में कर ही नहीं सकते, नाम तो ले लेना चाहिए। ज़माना ही बदल गया है तो कोई क्या करे?”

राधेश्याम राधेश्याम, श्याम श्याम, राधे राधे का अविरत स्वर पीपल के पेड़ में खड़खड़ पैदाकर स्याहीवाले आस्मान की सलेटी-सी छायी में डोल उठता था। धीरे-धीरे एक बूढ़ा आकर स्वर में स्वर मिलाने लगा। उसको देखकर पास बैठे घीसा ज़रा खिसक कर भीड़ में मिल गया और धीरे-धीरे हटने लगा।

ज्योंही धीसा द्वार पर पहुँचा, हट्टे-कट्टे घुटमन्डे बाबा ने पूछा—
‘धीसा, कहाँ चला ?’

‘कुछ नहीं । ज़रा योंही । अभी आया ।’ उसने सकुचते हुए कहा ।
फ़िन्तु बाबा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—‘तुम्हारी कसम, जाना
नहीं ।’

धीसा ने अपराधी के स्वर में कहा—‘अच्छा तो चलो, न जाऊँगा ।’
उसके शरीर में एक सिकुड़न-सी दौड़ गयी । साहस भरा और भीतर
जाकर बैठ गया ।

बूढ़ा हरदयाल हाथ में माला लिये बैठा था । पास ही एक नया
मकान ब्रेभवा रहा था । मकान धर्मादा और सूद के साथ-साथ उठ रहा
था । धीसा हरदयाल का कर्ज़दार था । पहले महीने रुपया देर में पाकर
वह गरज उठा था—‘क्यों बे, हमीं से साहसाह बनने चला है, साले ?
और वह दो आने ?’

‘मालिक,’ धीसा ने कहा—‘वह भी आजायेंगे । यह तो ज़वान की
बात थी । यह भी घर वाली को रोती छोड़कर उसके कड़े रख के लाया
हूँ । वह तो तुम भिले नहीं, ज़वान की बात थी, वर्ना मैं तो कल ही दे
दिये होता ! क्या करूँ लालाजी, फेरी लगाते-लगाते देही निचुड़ गयी,
मगर आमन्दनी की वही मन्दी !’

और सट्टा लगाने को कौन तेरा बाप तुम्हे पैसे दे जावे है !’

‘देखो लालाजी, सुन रहा हूँ देर से । गाली गुप्ता करोगे तो हाँ !
कोई इज्जत थोड़े ही बेच दी है ।’

‘अबे, बड़ा साहूकार आया ! खाली कर दे मेरी कोठरी; समझा !
खाली कर दे । हाँ, क्या कही मैंने ?’

धीसा लौट आया था । घर आते ही जो देखा कि रामस्वरूप का
बुखार बढ़ता ही जा रहा है, हिम्मत पस्त हो गयी । उल्टी के बाद भी
हिचकियाँ बनी रहीं । वैद्यजी ने जो काढ़े दिये वह दो दिन बाद हलक

के नीचे उतारना हराम हो गया। जाने कोन-सी बीमारी थी, यही पता न लगा। उसी रात बहू को जाने क्यों गश आ गया। और सुबह होते-न-होते वह चल बसी। शायद चार-पाँच दिन से वह पेट वाली भूखी रहकर मेहनत करती परास्त हो गयी और उसने मरघट में ही जाकर चैन लिया। घीसा ने देखा और वह रो न सका। जब वह लौटा तो बूढ़ी महारिया बहू के कपड़े इकट्ठे कर रही थी। घीसा ने करम ठोक लिये। अन्त में उसकी केरी पर आँच आयी। पैर टूटने लगे। आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। बच्चा फिर कराह उठा। उस मांस के लोंदे में अपूर्व शक्ति थी। उसने आँखों के सामने लाचारी का धुँधलका हावी कर रखा था। बुढ़िया भीतर गयी। बहू की खँगवारी उठा लायी। वह घीसा के हाथ पर धर कर बोली—‘जा लाला के पास जा, इसे धर के कुछ ले आ।’

घीसा ने देखा। हाथ पर साँप फन रिरछा किंगे कुरडली मारे बैठा था। यही उसको बहू के गते से ज़िपटा रहता था। वह रो दिया।

हरदयाल उस समय मन्दिर में बैठे थे।

घीसा ने झुककर कहा—‘लालाजी, पालागन !’

लालाजी ने आँख उठाकर देखा और फिर भजन करने लगे। घीसा ने खँगवारी आगे रख दी और गिड़गिड़ाने लगा—‘लालाजी अब कभी गुस्ताखी नहीं होगी।’

‘क्या है ? क्या है ?’ हरदयाल चिहुँक उठे।

‘बहू गुजर गयी। बच्चा बीमार है।’

वह चुप हो गया। हरदयाल ने नर्मी से कहा—‘अपना-अपना भाग्य है भइया ! वह सब कुछ करते हैं। सामने शिवलिङ्ग था। उस पर कुछ चन्दन आदि चढ़ा हुआ था। घीसा ने देखा। कठोर सत्यों ने कहा—यह कभी कुछ नहीं करते। किन्तु अज्ञात् भय ने कहा—कुछ नहीं करते, तो बता हरदयाल आज कैसे इतना रुपये वाला है ?

धीसा बोला—‘सब उन्हीं की माया है ! उनकी दया से दुनिया चलती है !’

हरदयाल माला जपने लगा ।

‘लालाजी, गुजारिस है कि यह खँगवारी.....’

‘कितने की है ?’ भजन करते-करते लालाजी ने पूछा ।

‘तेरह-रुपया भर है ।’

‘तो क्या है ? कुछ नहीं । खैर तेरी मर्जो । मगर एक बात है । इधर मेरा हाथ बहुत तङ्ग है । सोचता हूँ क्या करूँ ?’

‘महाराज निरास न करना । बच्चा तड़प-तड़प कर मर जायेगा महाराज !’—उसका गला रुंध गया ।

हरदयाज जैसे औरतो की अदाओं पर मरना भूल गया था वैसे ही आसू से बहल जाने का लड़कपन भी वह प्रारम्भ में नुकसान उठाकर छोड़ चुका था ।

उसने कठोर स्वर से कहा—‘नखरे नहीं धीसू ! चार आने सूद की रही ।’

‘अजी लालाजी मर जाऊँगा । जान से ही मर जाऊँगा । तुम्हारी कसम, बुरी मौत मर जाऊँगा । लालाजी तुम्हारे दरवाजे का जस है, जो आया वह खाली हाथ नहीं लौटा, फिर आज मेरे ही लिए लालाजी, दया करो.....’

‘तब दो आने रुपया लूँगा । समझा ? अब इधर की उधर नहीं होगी । क्या समझा ?’

अब उसी का मूल नहीं तो ब्याज तो चुकाना ही था । कल का दिन था सो निकल गया । तभी धीसा हरदयाल को देखकर खिसक रहा था । उसने धर्म भाव से हाथ जोड़े—‘हे परमात्मा ! हे परमेश्वर ! मेरे बच्चे को अच्छा कर दे !’

कीर्तन समाप्त हो गया था । हरदयाल ने धीसा के कन्धे पर हाथ

रख कर कहा—‘परमात्मा की दया अपार है, उसकी महिमा अपरम्पार है।’

धीसा ने भक्ति से सिर झुका लिया। तभी हरदयाल ने पूछा—
‘कहो धीसा बच्चा कैसा है?’

‘लालाजी, उसकी बीमारी का ही पता नहीं लगता।’

‘अच्छा हो जायगा, चिन्ता की कोई बात नहीं। वह सब अच्छा करते हैं। उनकी दया से जीवमात्र चलते हैं। पूर्व जन्म के पाप ही दुनिया को अँधेरे में डाले हुए हैं। हाँ, अब कब तक दे दोगे?’

‘अभी तो नहीं लालाजी, जरा हाथ खुले तो.....’

‘अरे’ हरदयाल ने टोककर कहा—‘हाथ तो धीरे-धीरे खुलता रहेगा। मगर मैं भी तङ्ग हूँ इधर। भैया यों तो काम चलेगा नहीं। अपना मकान बन रहा है न? आ जाइयो उधर ही मजूरी मिलेगी, कोई बेगार नहीं है, समझे! काम भी हो जायगा और चुकाना-फुकाना तो ही ही जायगा।’

धीसा ने सुना। पुजारी बाबा ने शङ्ख में श्वास भरा। स्वर गूँज उठा लहराता, भरमाता.....

मन्दिर की अँधेरी छाया में निस्तब्धता मँडराने लगी। चारों ओर हाय-हाय करता सन्नाटा छा गया। उस विशाल अनेक मंज़िलों वाले घर में लोग चुपचाप सो गये। किसी तरह वे सब जिये जा रहे थे। उनमें से किसी का भी भविष्य निश्चित नहीं था। आस्मान की सलतनत बन रही थी। मनुष्य ने जैसे पृथ्वी से मोह छोड़ दिया था!

यह भी ईश्वर की दया थी।

—४—

तीसरी यातना : परम्परा

दिन थका हुआ-सा निकला। बगीची के पेड़ सूने-सूने से खड़े थे। बादल अभी-अभी बरस कर बन्द हुए थे। अब वे आसमान में इधर-

से-उधर भाग रहे थे। उनकी सूनी उसांसों से अंतस कुछ-कुछ विह्वल हो आता था।

चूरा मर गया था। उसका शव कपड़े से ढँका रखा था। केवल मुँह खुला हुआ था। आँखें निकली पड़ रही थी और गालों पर डरावनी स्याही छापी हुई थी।

हरगोविन्द ने बाँसों को बाँधा और अर्थी सजाने लगा। महरी रोती रही। बाड़े की अन्य त्रियाँ आँसू बहाती हुई उसे सांत्वना देने लगीं। किन्तु उसके आँसू बहे जा रहे थे ! वह गा-गाकर रो रही थी। हरदयाल ने दूर से सुना और कोठरी बन्द करके पड़ रहा।

चूरा मर गया था। ज़िन्दगी जब तक रही उसने अपनी बहू को खूब मारा। पर उसमें एक बहुत बड़ी बात थी। किसी दूसरे की चुगली सुनकर उसने महरी से कभी भी कुछ नहीं कहा।

लेकिन जब उसका हाथ उठता था, मजाल थी कि कोई रोक जाय। तब एक बार जब वह जवान थी चूरा अपने दमे की कशिश में खाँस रहा था।

थोड़ी देर बाद भीड़ इकट्ठी हो गयी। महरी गाली दे रही थी—
‘हाथ कदी खाये, तेरे कीड़ा पड़े...’

जवानी को जवानी ने लोहे की तरह खींचा। चूरा का हाथ उठ गया था।

गफूरा ने कहा—‘क्यों बे, क्यों मार रहा है साले ?’

बालिशत-भर के चूरा ने कहा—‘कतरनी से कपड़े काट जाकर, नीच में मत बोलियो, खून हो जायगा खून।’

‘अबे होश की दवा कर, सुर्गा बनाकर छोड़ूँगा। औरत पर हाथ उठाता है : शरम नहीं आती ?’

‘शरम आये तेरे माँ-बाप को, समझा ? जीभ काट लूँगा जीभ !’

गफूरा बिगड़ गया। हो गये होते दो-दो हाथ। महरी बेबस

बकरी-सी उसकी तरफ देख रही थी और मन में संशय लिये आने वाले नूफान को सहने का साहस भर रही थी। चूरा का हाथ बहने को उठा। गफूरा को लोगों ने पकड़ लिया। 'हाँ हाँ क्या करते हो?'— मोड़ गरज उठी। गालियाँ चल रही थीं। शमसू कह रहा था— 'हिंजड़ा है माज़ा!' गफूर ने बहुत कुछ वज़नी गालियाँ दीं और कहा— 'औरत तेरी कुतिया है क्या?' मगर चूरा को समझाने वालों के कोला-हल भेदकर चिल्ला उठा— 'औरत मेरी है कि तेरी? अबे मैं इसे फेर पाइ कर लाया था कि तू? मेरी चीज़, फिर तू कोन लाटसाहब का बच्चा है कि बीच में बोलेंगा। मैं मारूँगा, खोद के गाड़ दूँगा। टुकड़े-टुकड़े करके कबुओं को खिला दूँगा। तू कौन बीच में बोलने वाला आया?'

एक बुजुर्ग आगे बढ़कर गफूरा से कहने लगे— 'उसकी जोरू, उसकी मलामत। कल को फिर दोनों एक होंगे, तू किधर का रहेगा तब? खुदा ने जब अकल दी थी तब ये लोग गैरहाजिर थे। तू क्यों बिगड़ रिया है? तू बीच में मीजान बैठाने वाला कौन है?'

सब चले गये। चूरा का हाथ चलने लगा।

'हरामजादी, यहाँ यारों को लिये मौज कर रही है, वहाँ ईंट ढोते-ढोते मर गये!'

बाड़े में यही प्रतिद्ध था कि असल में चूरा अपनी बहू को दिल में बहुत चाहता है। भाई मरद ही का तो हाथ है; जाने कब उठ जाये!

चूरा जब तक जिया महरी को चैन नहीं मिला। उसका सुहाग था कि वह घरों में जाकर चौका-बासन करती और कमा-कमाकर लाती। चूरा दसों में पड़ा-पड़ा बर्बाद करता और उन दिनों गिरस्ती उसी पर आ भूलती। इकलौता पन्ना एक नम्बर ढीठ था। वह बाप की भी नहीं सुनता था। उम्र करीब उन्नीस साल की। आज तक कसम

है कि कभी एक पैसा कमाया हो। दिन भर डोलना, आवारागर्दी फरना। बाप की नजर बचायी, माँ से माल ले उड़ा। फिर तो यह देखो, वह देखो।

परसों बुखार में बर्बते-बर्बते चूरा ने कहा—‘देख री जरा उस्तरा तो ले आ।’

महरी ने शङ्कित होकर पूछा—‘क्यों?’

किन्तु चूरा शांत था। फिर भी स्वभाव से बोला—‘देख री लाती है कि मैं उठूँ?’

महरी झुपचाप उस्तरा ले आयी। चूरा उसे सिल्ली पर तेज करने लगा।

‘क्या करोगे?’ महरी ने पूछा।

चूरा ने देखा। वह गयी-गुजरी बात-सी एक औरत : अब कहाँ है वह जोर? पलक झुक गयीं। बोला—‘डाढ़ में फोड़ा उठा है, काटूँगा।’

महरी चुप हो गयी। उस गंदे उस्तरे ने घाव करके उस पर जहर का काम किया। चूरा बर्बाने को पड़ गया। दिन आया और अपने निष्ठुर प्रकाश में उसके मुख को पीलापन दे गया। सन्ध्या अपने जाने के साथ उसके चेहरे का सारा खून ले गयी और रात ने अपनी काली छाया उस पर निःशङ्क होकर अङ्कित कर दी। रात भर चिल्लाकर आज सुबह चूरा उजाले के पहले ही चल बसा। वह मरा और संसार के नियम के अनुसार फूँक दिया गया। जैसे जीर्ण चादर हटाकर हड्डियों को तपा दिया गया। महरी रो पड़ी। दो बूँद नीचे गिरीं और वह गा उठी—‘हाय मेरे राजा.....!’ बात आयी गयी समाप्त हो गयी।

X

X

X

पन्ना देख से उठता, देर से नहाता, देर से खाता और जो भी वह करता देर से ही करता। महरी के बारहमासी कठोर परिश्रम ने स्त्रीत्व

में पुरुषार्थ बन कर प्रकृति पर भी विजय प्राप्त कर ली थी। पन्ना रात को ग्यारह-बारह बजे लौटता और अपनी जरूरतों का बखान करता और तब फिर वही, फिर वही.....

पन्ना धीरे-धीरे जुआ खेलने लगा। कुछ भी हो उसे जुआ खेलने से काम। औरत और शराब की तरह जुआ भी एक नशा है।

रात हो गयी। आज महरी का शरीर दूट रहा था। कल्लू हलवाई ने पोस्ट मास्टर के लड़के की शादी में ठेका लिया था। वह वहीं से पूरी बेल कर आयी थी।

इसी समय पन्ना ने प्रवेश किया। कमीज़ फटी हुई, सिर के बाल बिखरे हुए। एक धमा चौकड़ी से वह घुसा और बोला—‘अम्माँ दस रुपये दे दे।’

महरी ने कराह कर करवट बदली।

पन्ना अधीर-सा फिर बोला—‘देती है कि नहीं?’

महरी कुछ नहीं समझी। लड़के की इस बदतमीज़ी पर उसे क्रोध हो आया। वह उठ खड़ी हुई और चिल्लाकर बोली—‘दे दूँ, सो तेरा बाप ही तो कमा-कमा के जमा कर गया है, हरामी। यहाँ हाड़ों से पत्थर तोड़ दिये और लल्ला की पहुँची लचक गयी।’

पन्ना ने सामने रखे मटके में जोर से ठोकर मारी। मटका तड़ककर टूट गया। सारी दाल बाहर फैल गयी महरी उसे चिल्ला कर गालियाँ देने लगी और रोने लगी। पन्ना ने कहा—‘देख दे दे। चुपचाप नहीं तो कुट्टी करके धर दूँगा।’

‘अरे देख लिये! कुट्टी करैगा तू?’ महरी ने दाल बीनते हुए कहा—‘कमीन नहीं तो कहीं का। आया बड़ा लाट का.....’

इसके बाद उसने कुछ अश्लील गालियाँ दीं। पन्ना फिर चिल्लाया—‘देख मान जा। नहीं हड्डी तोड़ दूँगा हड्डी मारते-मारते.....’

महरी पर बिजली की चोट हुई। वह तड़प कर उसके सामने जा

खड़ी हुई और बकने लगी—‘उठा तू हाथ उठा । आज तू मार ! अपनी माँ को मार ! सपूत बेटा ! अरे तेरे मुँह पै आग बराय दूँ.....कढ़ी खाये.....’

पन्ना का हाथ चल गया । परम्परा चल निकली ।

बूढ़े गफूरा ने सुना और कहा—‘जैसा बाप वैसा बेटा.....’

अब वह बूढ़ा था । उसमें बीच-बचाव करने का जोर नहीं रहा था ।

रामधन ने सुना । हुक्के पर से मुँह हटा लिया और फिर ठठा के हँसा और बोला—‘वाह जिजमान, इस घर में रोज़ दिवाली मन रही है । हम तो पहले ही कहते थे.....’

महरी अपमान और विज्ञोभ से तड़प-तड़प कर रो रही थी । पन्ना उससे छीनकर सारे रुपये ले गया था । कोठरी में मटके टूट गये थे । दाल में आटा मिल गया था । वह उठी और बुखार में बुरबुराते हुए, रोते हुए समेटने लगी । आज उसका हृदय टूक-टूक हो रहा था । एक बार उस आदमी की याद आयी जिस पर उसका दारोमदार था । कैसा भी था अपना आदमी था । उसका तो हक था । वह होता तो क्या यह कल का लौंडा यों हाथ उठा जाता । ककड़ी की तरह तोड़ देता कलाई.....

गरीबी की दुनिया पूँजी के अवैतनिक रूप में पल रही थी !

—५—

चौथी यातना : चकर फिर चकर

लच्छो का आदमी चल बसा । पहले तो वह रोयी, लेकिन बाद को उसके जीवन का सहारा उसका आठवाँ लड़का जो किसी तरह जी रहा था उस पर ममता बनकर केन्द्रित हो गया । लच्छो काली थी । यौवन ढल चुका था । बूढ़ी चाची समझती थी कि वह सारी गिरस्ती पाल रही है; लच्छो का दावा था कि उसके बूते पर चूल्हा जल रहा है । चाची के लड़के हालाँकि लच्छो के रामचन्द से बड़े थे फिर भी वह रामचन्द को कभी किसी से कम नहीं समझती थी । रात के तीन बजे ही उठ कर

हल्दी या गेहूँ या चना पीसने बैठ जाती। कोठरी में उसकी चक्की का शोर उसके गीतों से मिलकर बाहर तक मँडरा उठता। जब वह बाहर निकलती बालों पर, तन पर पीसन का रङ्ग चढ़ा होता। उसे फटकारती और एक लोटा पानी ले, मुँह हाथ पाँव धोकर, लंहगा फरिया पहनती, सिर पर कनस्तर धरती और बाजार के पंसारी के यहाँ जाकर उसे देकर, पैसे ले आकर, घर आ बैठती। दालान में ही देवरानी सुरसुती बैठी रहती, लच्छो के पहुँचते ही उठकर जाती और दो मोटी-मोटी मिस्सी रोटियाँ फटकारती हुई लाती और पानी का गिलास सामने रखकर रोटियाँ उसके हाथ पर रख देती।

सूखा रोग से पीड़ित बालक लिये सुरसुती बैठकर अपने पति की निन्दा करने लगती। पतली तीखी आवाज में उनको दुहराती, कभी बालक को पुचकारती, कभी अपने रामचन्द को डाँटती, रोती खाती हुई लच्छो सुरसुती की आधी बात सुनती आधी टाल देती।

सुरसुती कहने लगी—‘जीजी, मैं तो कुछ भी नहीं समझी। कल तो दो आने लाकर दिये थे। मैंने पूछा था कि दिन भर की पल्लेदारी में बस दो ही आने मिले तो बोले हैं !’

लच्छो ने चौंककर कहा—‘पतला-दुबला है तो क्या ? है तो मर्द-मानुस ! दो आने तो हमारा रामचन्द ही कमा लेगा ।’

इतना कह कर उसने गर्व से रामचन्द की ओर देखा जो इस समय दो का पहाड़ा याद करने में अपनी जान की पूरी ताकत लगाये हुए था।

सुरसुती ने कहा—‘जीजी, वे तो समझाने से मानते नहीं। बेटा हुआ तब से तो घर की सुध ही छोड़ दी और न जाने कहाँ-कहाँ चिन्ता व्याप गयी है राँड कि बस बोलते ही नहीं। मैंने जो कुछ कहा कि मारने-मरने को तैयार ।’

इसी समय नल पर से पानी लाकर चाची आ खड़ी हुई। सुरसुती ने उतरवाया।

अंतिम बात सुनकर उन्होंने कहा—‘तू तो बेटी रानी है रानी ! नैक मरद ने छू दिया कि इज्जत चली गयी ।’

सुरसुती सकपका गयी । किन्तु लच्छो ने कहा—‘चाची, तुम समझो तो हो नहीं । कल को बेटे का ब्याह करेगा । खिला-पिला कर आदमी बनायेगा.....’

चाची ने हाथ मटका कर कहा—‘बेटा न बेटा की पूँछ । मेरे ही से आग ले गयी नाम धरा बैसानर ! तुमने भली गधा के कान में फूँक मारी ! हाय राम !’

लच्छो ने धिगड़ कर कहा—‘मैं जो उसकी माँ होती तो एक दिन मैं बेटा को छूटी की याद दिला देती । समझो ! तुम्हारे ही लाड़ हैं कि ऊधम को लाड़ है, बरबादी को दुलार है ।’

चाची ने ताली पीटकर कहा—‘अरे मेरी छल्लो ! तू ही ने न उसे इता बड़ा किया है अपनी छाती के बलपै ? बेटी मन्दोदरी ! जब उसका बाप मरा था तब तू कहाँ थी ? उस बखत तो मैं थी । मैंने पाला है उसे दूध मिलाकर अपना । एक वो आयी है न कि फूलों पर चलूँगी मैं तो । काम नहीं किया जाता मेरी सौत ?’ सुरसुती ने आंखों में आँसू भर कर कहा—‘खाजाओ मेरी सौगंध जीजी ! मैंने कुछ भी कहा है ? देखो मुझे दोस लगा रही हैं ?’

लच्छो ने तीव्र स्वर में कहा—‘देख ली मैना ! देख ली, जैसे पाला है वैसे ही वह करम कर रहा है । इनने ही धिगाड़ा है उसे । मैं तो चटनी करके धर देती चटनी !’

चाची ने गरम होकर कहा—‘तूही न एक खैरखा है उसकी ? हम तो दुसमन हैं दुसमन । आयी बड़ी.....’

और चाची ने उसे कुछ गालियाँ दीं । इसके बाद चाची और लच्छो में स्त्री और पुरुष के गुप्ताङ्गों के विशद विवेचन करने वाले शास्त्रार्थ होने लगे । सुरसुती चुपचाप घूँघट माथे पर सरकाये बैठी

रही। इसी समय सुरसुती के पति सुरजन ने प्रवेश किया। आज उसका सिर घुटा हुआ, आँखें चढ़ी हुई और कदम लड़खड़ा रहे थे। उसने कुछ भी नहीं कहा। एक खटिया पर घुटने मोड़कर वह पड़ गया। चाची को आवताव कुछ भी नहीं सूझा। वह उसके पास जाकर चिल्ला कर उसे एक-एक बात सुनाने लगी।

एकाएक सुरसती चिल्ला उठी। सुरजन की देही काँप रही थी। हाथ-पाँव थरथरा रहे थे। आँखें मुँद रही थीं। लच्छो उठी। उसने पास जाकर देखा।

देखते-देखते बाड़े के लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। शमसू ने कहा—‘जाओ किसी हकीम-अक़ीम को बुलाकर लाओ। यहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रई हो?’

लच्छो ने सकपकाकर पूछा—‘वह कित्ते रुपये लेगा?’

शमसू ने कहा—‘ये ही दो तीन और क्या? इस बखत जानकी बात है। जान है तो जहान है।’

लच्छो ने चाची की ओर देखा। चाची ने सुरसुती की ओर। सुरसुती घूँघट काढ़े बैठी थी। चाची ने कहा—‘सुरसुती लाज तो तेरी तब है जब ये जीता है। अब ला निकाल के भीतर से।’

सुरसुती ने घूँघट में से कहा—‘चाची, मेरे पास क्या है जो दूँ?’

चाची ने तड़पकर कहा—‘और चूल्हा अलग कराने को जीभ बत् बड़ी है न? ले ले के जो भर रखी है उसे उगल दे महारानी! नहीं तो यह ही नहीं रहा तो.....’

‘छिः छिः!’—बूढ़े रामधन ने कहा—‘असुभ बात मत किया कर तू बिदिया!’

चाची ने पलटकर कहा—‘तो मामा मेरे भी दो हैं। ये जमा करें और मैं उन्हें भूखा मार दूँ सो मेरे देखते न होगा।’

‘तो हैं किसके पास?’ सुरसुती ने घूँघट में से कहा, और वह ज़ोर

ज़ोर से रोने लगी। हरगोविन्द ने कहा—‘क्या देख रही है लच्छो ! बुला किसी स्याने को। आनन-फ़ानन ठीक कर दे।’

बात पसन्द आयी। तुरन्त भोपा बुलाया गया। उसने आकर पहले तो कुछ मन्तर पढ़े फिर लगा उसे झकझोरने। सुरजन के दाँत थोड़ी देर तक तो बजते रहे फिर वह मूर्छित होकर भूमि पर फैल गया। भोपा बड़ी देर तक चिल्लाता रहा—‘साले तेरी खोपड़ी तोड़ दूँ। और बजरंग बली की जय। भूतपलीत की ऐसी तैसी, पास आये तो आग लगाय दूँ, हेई बजरंगबली का साँचा.....’

भीड़ छँट गयी। भोपा अपनी दक्षिणा लेकर उठ खड़ा हुआ। जाँघों से ऊँचा लाल घुटना, लाल फितूरी, माथे में सिन्दूर लगाये जब वह चला तब कमर में बँधे बड़े-बड़े घुँघरू गोले जैसे बजने लगे।

सुरजन मूर्छित-सा पड़ा रहा। रामचन्द्र बैठा रहा। चाची के लड़के भी आ गये। साँझ का चूल्हा जला, सुबह का चूल्हा जला, मगर सुरजन वैसे ही साँस खींचता पड़ा रहा। कभी-कभी वह जब किचकिचाने लगता लच्छो उसके मुँह में पानी डाल देती। सुरसुती बच्चे को गोदी में लिटाये, उसका रोना-बन्द करने को बारी-बारी से अदल-बदलकर अपने स्तन उसके मुँह में देती, घूँघट काढ़े, पंखा झलती रही।

दोपहर ढले उस उदासी का गतिरोध टूट गया। सुरजन ने आँख खोल दीं। उसने पानी माँगा। सुरसती दौड़कर ले आयी। पानी पिया।

लच्छो ने पूछा—‘अब कैसा है तेरा जीव’

सुरजन ने टूटे-फूटे शब्दों में कहा—‘बाबा ने दम लगवायी थी जड़ी रखकर, तभी मन खटा गया।’

लच्छो ने कहा—‘तो क्या तू साधू होने गया था जो मुँड मुँडा दिया ? यह किसके नाम को रोती ?’

सुरजन ने कोई जवाब नहीं दिया। पागलों की तरह देखता भर रहा, जैसे कुछ भी नहीं समझा। लच्छो ने बिगड़कर कहा—‘मैं तो

कहूँ मान जा, मान जा, और तू है कि सिर पै ही चढ़ा जावै ! मैं कहूँ सीधे मुँह बात कर, सीधे मुँह, समझी ?'

सुरजन ने इधर-उधर देखा और निराश-सा दोनों हाथों में सिर थाम कर बैठ गया। सुरसती फिर हवा करने लगी। छच्छो ने पङ्खा छीनकर फेंक दिया। वह जोर से बोली—'क्या कही ? अब तो नहीं जायगा बाबा-आबा के पास ?'

सुरजन ने फिर सिर उठाकर देखा और हताश की भाँति सिर हिला दिया।

वह बहरा हो गया था।

—६—

पाँचवीं यातना : विषैला धुँआ

कुछ दिन से किसी काम से पुलिस की छावनी ने कुछ दूर पर पड़ाव डाल रखा था। उससे बाड़े में एक दहशत-सी बैठ गयी थी। लोगों ने आपस में ही खूब चर्चा भी की, लेकिन नतीजा नहीं निकाल सके। एक दिन छावनी में हजामत बनाने वाला नाई आया था तो वह भी रौब डाल गया था। कुछ पुरबिया किसान आकर बाड़े में रहने लगे थे। पहले वह पुलिस में थे, फिर निकाल दिये गये थे। तब से पाँच मील दूर एक कारखाने जाते थे और अँधेरे में लौटकर आते। चूल्हा चढ़ाते और चौका काढ़ते। 'दिन में मुह में अँगूठा डालकर पानी और हरीमिर्च के सहारे ढेर का ढेर सत्तू पेट में उतार देते।

हरदयाल का नया मकान उठने लगा था। अनेक मजूर वहाँ काम करते और हरदयाल बैठा गिद्ध की तरह सब देखता रहता। ईंट पर ईंट रखने का मतलब उसे खून की बूँदें देने के समान था। घीसा वहीं काम करने आता। हरदयाल का पठानी कर्ज धीरे-धीरे चुकता जा रहा था या वास्तव में द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ता जा रहा था। जब से

सुरजन बहुरा हुआ वह वहीं काम करता । सुरसती बच्चा गोद में लिए बैठी-बैठी गिट्टी फोड़ा करती । सुधीर देखता और देखता । उसकी नज़र जहाँ जाकर अटक गयी वह स्थल एक स्त्री का शरीर था, जवानी से गदराता । ऊँचा भारी लहंगा, ओढ़नी और नाक-कान से लेकर शरीर के प्रत्येक अङ्ग पर कोई-न-कोई सस्ता गहना । लगभग अठारह-उन्नीस साल की डंकमारती जवानी । जो आता उससे दिल्लगी करता, जो आता छेड़ता और सब की बात सुनकर हँसती, स्वयं चुहल करती और किसी के आँख मारने पर लजा जाने का अभिनय करती । कठोर हृदय हरदयाल उसे जब मिलता तब डाँटता और वह उस बूढ़े की तरफ एक अजोब तरह देखती कि बूढ़े हरदयाल में भी एक हल्की कँपकँपी-सी हो आती और क्षण भर को वह भी सीना निकालकर बैठता । अन्य मज़दूरोंने उसे देखकर जलती, गालियाँ देती, लेकिन जैसे उसे इन स्त्रियों से कोई दिलचस्पी नहीं थी । जब देखती तब पुरुषों की ओर देखती । बिड़ला-बिड़ला की बदनाम जात की वह स्त्री अकाल के कारण मारवाड़ छोड़कर आगयी थी । सुधीर देखता । उसे ऐसा लगता जैसे प्राचीन-काल में कांडो के ज़ोर पर गुलामों से काम कराया जाता था ।

शाम हो गयी । पुरबिया किसान लौटकर खाने-पीने लगे । हरदयाल आज कुछ विचलित हो उठा था । उस बुढ़ापे में भी उसका हृदय कुछ-कुछ सा करने लगा था । वह बैठकर भजन करने लगा । जब इससे भी उसका मन नहीं माना तब मन्दिर में चला गया ।

पुरबिया किसान खा-पीकर आराम से लेट रहे । वे देह के ताक़तवर थे । कभी उन्होंने किसी के हाथ का छुआ नहीं खाया । एक बार उन्होंने लच्छो की ओर ललचाई आँखों से देखा भी था, किन्तु लच्छो की निर्भय आँखों को देखकर उनकी दृष्टि पथरा गयी और भूमि से टकराकर चूर-चूर हो गयी । तब से उन्होंने उसकी ओर कभी भी नहीं देखा ।

रात का अँधियारा सनसनाने लगा । इसी समय रामसिंह ने सुना

उधर पेड़ों के पीछे कुछ न होने वाली बात हो रही है। उसने चुपचाप हरीसिंह को जगा दिया। दोनों चुपचाप छिपकर देखने लगे।

हरदयाल खड़ा था। उसकी बगल में मारवाड़िन थी।

हरदयाल कह रहा था—‘देख मानजा, मालामाल कर दूंगा।’

मारवाड़िन ने कहा—‘भरद का क्या? ऐसे कह के मुकरने वाले बहुत देखे हैं।’

हरदयाल ने उसकी ओर व्यंग से देखकर कहा—‘जमाना तो अठन्नी का गुन गा रहा है।’

स्त्री ने निस्संकोच होकर कहा—‘बौहरे, अपनी-अपनी सरधा है। तुम्हारे क्या कमी है? भगमान् ने तुम्हें क्या नहीं दिया?’

हरदयाल ने विवश होकर जाल फेंका—‘हटा एक रुपया ले ले।’

‘वाह बौहरे?’ मारवाड़िन ने कहा—‘अपने बुढ़ापे को भी देखा है? बन्दर की-सी तौ सूरत हो गयी है।’ हाथ नचाकर बोली—‘एक रुपया ले ले! घर की बात समझ रखी है? जाओ-जाओ पाँच रुपये लूँगी। वे तो अपने जैसे हैं, तुम तो बौहरे हो, समझी? एक बात कैसे हो जायगी?’

रामसिंह को हँसी आ गयी। इससे पहले कि हरीसिंह उसे रोके रामसिंह चिल्ला उठा—‘शाबास, बौहरे! खूब हाथ मारा है! बुढ़ापे में पीपल लचक रहा है?’

हरदयाल चौंक उठा। उसने एक बार इधर-उधर देखा और फिर अपनी कोठरी की ओर चल पड़ा। मारवाड़िन फिर अपने तम्बू में सोने चली गयी। हरीसिंह और रामसिंह लौट आये। रात भर इसी की चर्चा रही प्रायः पूरे बाड़े को बात सुना दी गयी। जवान औरतें खूब हँसी। लोगों को मारवाड़िन के प्रति एक श्रद्धा-सी हो गयी। औरत कट्टर है—करती है तो मन की करती है! कोई फुसला के जबरन कुछ नहीं कर सकता। सुधीर ने भी सुना। और मास्टर साहब को जाकर सुनाया।

दोनों खूब हँसे। हरदयाल जब अपनी जगह जाकर बैठा उसने देखा मजदूर आज कुछ कानाफूसी कर रहे थे। आज उन लोगों के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कराहट थी। दो एक जवान छोक़रों ने पीछे से आवाज़ भी कसी, किन्तु हरदयाल ने उनसे कुछ भी नहीं कहा।

दोपहर को जब वे लोग एक किनारे बैठकर रोटी खाने लगे, जब कुछ लोग बहरे मुरजन को छेड़ रहे थे, मारवाड़िन ने रोते हुए प्रवेश किया। सब चौंक उठे। धीसा ने पूछा—‘क्योंरी, क्या हुआ?’

मारवाड़िन चुप खड़ी रही। मजूर-मजूरिन ने उसे चारों तरफ़ से घेर लिया।

हरदयाल ने उसे निकाल दिया था और उसकी आधी मजूरी दाब ली थी। हरगोविन्द ने कहा—‘तो क्या करेगी तू? मैं भी एक प्रोफ़ेसर का नौकर था। उसकी बीबी ने युभसे कहा—‘मेरे पैरों में मालिस कर दे, मेरी साड़ी धो दे; मैंने इन्कार कर दिया। तो उसने मेरी तनखा दाब के मुझे निकाल दिया। मैंने कहा-पुनी करके उस पै कचहरी में दावा किया। मगर क्या नतीजा निकला। ऐसा इन्साफ़ हुआ कि मैं तो सुन के दङ्ग रह गया। जज ने कहा कि हरगोविन्द पेशे का नौकर है। उसके साथी कमीन हैं। प्रोफ़ेसर इज्जत का आदमी है। वह बारह रुपये के लिए भूँठ नहीं बोल सकता। मुकद्दमा खारिज। क्या कही? मुकद्दमा खारिज। सो लल्ली, जो आठ रुपये खरच हुए सो अलग, बीस की बैठी। पूरी रकम थी।’

धीसा ने कहा—‘और कोई थोड़ी नहीं सो भी, जमा समझो पूरी!’

‘क्या कर लिया?’ हरगोविन्द ने आँख निकाल कर पूछा—‘क्या कर लिया? कुछ नहीं। प्रोफ़ेसर अब भी फल-फूल रहा है। हम हैं कि मेहनत करते हैं, तुम्हारे बाल-बच्चा यों हो रहे हैं यों’ उसने उँगली दिखाकर दुबलेपन की ओर इशारा किया और कहता गया—‘मगर वे साले

पान-पान-सौ रुपये तनखा पाने वाले गेहूँ की खा रहे हैं और तुम बेटा चने की भसको चने की !'

धीसा ने कहा—‘तो क्या करेगी ?’

मारवाड़िन यह सुनकर हँस दी । बोली—‘कहीं चली जाऊँगी’ और क्या ! पेट को नहीं होगा तो यहीं क्या करूँगी ? देश छोड़ा तो पेट की खातिर ही न ? और सब तो राग-भ्रमेला संग बैठे—सोये का ह । सुख तो पेट है लाला । जाऊँगी मजूरी करके खाऊँगी ।’

सब उदास-से तितर-बितर हो गये । मजूरिनें उसके स्वाभिमान और स्वतन्त्र साहस को देखकर दंग रह गयी । मजूर उदास हो गये कि वह उनके बीच में एक रौनक थी जिसके चले जाने पर बातचीत का एक केन्द्र ही खो जायगा । मारवाड़िन वहाँ से चली गयी ।

दूसरे दिन अचरज से लोगों ने देखा कि रामसिंह और हरीसिंह की कोठरी में मारवाड़िन सो रही थी । रात भी वह शायद वही रही थी । फिर से चर्चा चल पड़ी । अब के बड़ी निंदा हुई । मगर वह बोली—‘लाज उसकी जिसकी लाज ढाँकने को तन पर बस्तर हो ।’

लच्छो को अपने पातिव्रत पर विशेष गर्व था । जब वह महरी से मिली, दोनों ने उसे कुलटा और हरजायी-कुलच्छनी करार दिया । चलते-चलते महरी ने कहा—‘मैना, धरम नहीं रहा; नहीं तो मरद किसका नहीं होता ? मगर मरद तो एक, और ऐसा जैसा अपना चोला, कि मौत से पहले न छोड़ा जाय.....’

उसकी बात की कद्र थी । उसने चूरा के साथ जिस तरह निभायी थी उसे देख लोग उसे सती मानते थे । कुछ दिन से पन्ना भी इधर-उधर न जाकर मारवाड़िन की कोठरी के ही चक्कर लगाता फिरता ।

शाम को जब पुरबिया लौटते, चौका काढ़ते, चूल्हा सुलगाते, खुद खाते फिर बाकी बचा चौके के बाहर बिठाकर मारवाड़िन को खिलाते । सुबह उनके चले जाने पर जब वह अकेली रह जाती, कोई उस बात

नहीं करता तो वह पन्ना से ही दिल्लगी किया करती। बाड़े के लोग देखते। महरी ने सुना। उस दिन शाम को घमासान हुआ, किन्तु हरीसिंह ने डाँटकर कहा—‘खबरदार जो चीँ-चपाट की है, मुँह तोड़ दूँगा, मुँह। लौंडा तो तेरा बदमास है, परायी बहू-बैटी के पीछे डोलैगा तो उसका भला क्या कसूर है?’

सुनने वाले हँस पड़े। जाने क्यों महरी भी चुप हो गयी। रामसिंह ने पन्ना की गर्दन पकड़कर कहा—‘बेटा, जब मुँह का दूध सूख जाय तब इधर आइए। समझा? समझा कि नहीं बोल; नहीं तो अभी लाश पटक के मारूँगा बोल! पन्ना ने सुना और फ़ोरन ही जब पन्ना समझ गया उसने उसे छोड़ दिया। फिर वही कार्यक्रम चलने लगा। धीरे-धीरे मारवाड़िन से स्त्रियाँ मिलने-जुलने लगीं। बिन्दिया चाची ने कहा—‘तो क्या हुआ? धोखा ही सही, बेसा तो नहीं है! जात-पाँत तो तब तक है जब तक देश है, जब माँ बाप ने ही छोड़ दिया तो वह क्या करे?’

बात फैल गयी, जम गयी और बीच के गड्ढे पर पत्थर की पाँटिया की तरफ पड़ गयी। आवागमन सरल हो गया। पुरवियों का धरम चलता रहा। लोगों में रामसिंह उसका पति प्रसिद्ध था, किन्तु वास्तव में वह द्रौपदी की भाँति जीवन बिताये जा रही थी। भेद इतना ही था कि पुराने ऋषि-मुनि तरह दे गये थे; आजकल मास्टर साहब को यह बिल्कुल असह्य था। बड़ी दिलचस्पी से पूरा किस्सा सुनते और अन्त में कहते—‘हटाओ यार, तुम भी क्या गन्दी बातें ले बैठे?’

सुधीर हमेशा मारवाड़िन की तरफ बोलता। मास्टर साहब विरुद्ध मोर्चा डालते। एक दिन हरगोविन्द और घोसा के सामने ऐसी ही बातें होतीं रहीं। शाम तक मशहूर हो गया कि ऊपर का बाबू मारवाड़िन पै फ़िदा हो गया है। सुधीर ने सुना। पहले तो हँसा और फिर निष्प्रभ-सा कुछ सोचने लगा। मारवाड़िन ने जब सुना तो कोई ध्यान नहीं दिया।

पूछने पर कहा—‘ओ तो बाबू है, उसका क्या ?’ जैसे बाबू होने के कारण वह कोई पराया था और उसके दायरे के बिल्कुल बाहर था ।

धीरे-धीरे कुछ महीने बीत गये । सुबह शाम पुलिस के पड़ाव के सामने सिपाहियों की कवायद होती । कभी-कभी जमादारों की गन्दी गालियाँ गूँज उठतीं और फिर से जीवन चलने लगता ।

लेकिन एक दिन फिर बाड़े में हलचल मच उठी । हरदयाल बाहर खड़ा चिल्ला रहा था । मारवाड़िन भीतर पड़ी कराह रही थी । उसकी आँखों में आँसू ल्ला रहे थे । आज उसकी सारी अकड़ स्वतन्त्र हो चुकी थी । सुधीर ने देखा । नीचे उतर आया । पूछने पर हरदयाल ने कहा—‘भाग गये वे दोनों बदमाश, इस कुतिया को छोड़ गये हैं ।’

सुधीर ने सुना और चुपचाप लौट आया । एक बार जी में आया जाकर मारवाड़िन से पूछे तो क्या हुआ ?

धीसा ने कहा—‘बाबू मैया, कौन सुख नहीं चाहता ! इसी दिन के लिए पुरखों ने धरम बनाये हैं । अब क्या करेंगी ? मरद को क्या, ठोका-पीटा छोड़ गया ! लेकिन यह तो औरत है, किसका नाम होगा ? उनका क्या ? वे तो बदमाश थे—जोखों आयी भाग निकले कि अब बोझा कौन सम्भाले; इसे तो लादी उठानी होगी ।’

मारवाड़िन के दोनों में से किसी एक का गर्भ रह गया था । आज वह शर्म से बाहर निकल नहीं सकी । हरदयाल कुछ देर तक तो देखता रहा । फिर चिल्ला कर बोला—‘निकल जा यहाँ से छिनाल, अब रो रही है ? तब न सूझा था हरामिन, कुतिया ?’

धीसा की माँ ने बढ़कर कहा—‘लाला, दया करो, गाभिन है ! कहाँ जायगी ! दो दिन की बात है, माफ़ कर दो । पेट उत्तर जायगा तो तुम्हारी चाकरी करेगी.....’

हरदयाल चला गया । बूढ़ी अपनी कोठरी को लौट गयी । सब चले गये । केवल मारवाड़िन पड़ी पड़ी रोती रही । आज उसमें इतना

भी साहस न था कि बाहर चली जाय । बाड़े में हरदयाल की दरिया-दिली की इन्तहा तारीफें हो रही थीं । ऐसा दिल है तभी तो परमात्मा ने इतना दिया है, नहीं तो किसके पास है ऐसी माया ?

मारवाड़िन जब निकली तब पेट में एंठा चल रहा था और चेहरे पर पीलापन हुमक रहा था । वह माँ बननेवांनी थी—एक और कीड़ा पैदा होने वाला था !

—७—

छोटी यातन : पशु

सामने के मैदान में शोर होने लगा । सूरज डूब रहा था । और एक कोलाहल जो मानों दूर क्षितिज के पार कलरव करती लहरों का मृदु-मृदु कम्पन हो, या बड़े दिन की गिरजे की घंटियों की तुमुल ऊर्मिल प्रतिध्वनि हो और इसी बीच कभी-कभी कोई गीत जैसे तारा टिमटिमा उठा हो । सुधीर ने ऐसे देखा जैसे वह तूफान में फँसी एक छोटी-सी नाव थी जिसके पतवार खो गये थे किन्तु बही जा रही थी । कञ्जर डेरे गाड़ रहे थे । उनके पास विश्वासों की कैसी भी पराजय नहीं थी । वे खाते थे, पीते थे, सोते थे और उनकी सत्ता और एक पशु की सत्ता में कोई भेद नहीं था । उनकी जवान स्त्रियाँ मदमाती डोलतीं, बच्चे नंगे घूमते और पुरुषों के चेहरे की कठोरता देखकर लोग उन्हें बदमाश कहते । कोई-कोई उनमें से तमाशे दिखाता । एक गाना गाता, साथ की जवान लड़की नाचती और ऐसा अश्लील अङ्ग-चालन करती कि बरबस लोगों को बाद में निन्दा करने के लिए रुककर उसे देखना पड़ता ।

वे लोग अपना दिन अधिकांश में घूमते हुए निकाल देते । इतनी जोर से बात करते कि देखने वाला समझता लड़ाई हो रही है और लड़ने तो किचकिचा कर झपटते, नाखूनों से नोंचते या काट खाते । कभी-कभी उनके हाथों में छूरियाँ चमक उठतीं । तब दूसरे मर्द कञ्जर आकर छूरी छीन लेते और फिर अलग जा बैठते । फिर लड़ाई होने

लगती । बटुधा रोटी या औरत के पीछे लड़ाई होती । शाम को ईंटों के बने बराय नाम चूल्हों से धूँआ उठने लगता और रात को चिथड़ों के तम्बुओं में वे सब जानवरों की तरह घुस जाते और खाँसते-खखारते चिमट-चिमटा कर सो रहते । वासनाओं का नग्न से नग्न रूप उनके लिये एक स्वाभाविक बात थी । एक तरफ तम्बू में माँ-बाप सोते रहते, दूसरी तरफ बेटा और बहू ।

मोती ने कुछ दिन से कमाल को छोड़कर रामभू कर लिया था । इस पर एक दिन खून खच्चर होते-होते बचा । दिन में छोटे-छोटे लड़के लड़की ही नहीं बड़ी-बड़ी जवान लड़कियाँ राह के किनारे डोलती रहतीं । कोई निकला नहीं कि पीछे होलीं । उनका धिधियाना, भीख माँगना, इतना गन्दा था कि लज्जित होकर राहगीर को उन्हें कुछ-न-कुछ देना ही पड़ता ।

एक दिन एक बाबू अपनी पत्नी को लिए जा रहा था । सड़क पर काफी भीड़ थी । मोती उस बाबू के पीछे लग गयी । वह रिरियाने लगी—बाबू, तेरी जूती चाटूँ ! ऐ बाबू, तेरी बहू के गोरे गालों पै काले तिल की कसम ! तेरा घर फूले-फले ! तेरे बच्चे बड़े हों.....

गोरे गालों पै तिल का वर्णन सुनकर राहगीर मुड़-मुड़कर देखने लगे । बाबू को लाचार होकर पैसा देना पड़ा ।

दूसरे दिन ही पास में किसी रईस के घर चोरी हो गयी । दारोगा-जी ने फौरन कञ्जुओं के चारों तरफ घेरा डाल दिया । उन्होंने देखा कंजरियाँ बड़ी कटीली थीं । उनका जी आ गया । कानून था कि ऐसे लोगों को संदेह पर भी गिरफ्तार किया जा सकता है क्योंकि यह होते ही चोर हैं । इन पर मुकद्दमा चलाने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती । न्याय उनकी ओर था । जितने भी जवान कञ्जुर थे, वे सब गिरफ्तार कर लिये गये । औरतें देखती रहीं, बच्चे सहम गये । रोया-धोया कोई नहीं । उन्हें यह सब देखने की आदत थी । उनके पुष्प

अक्सर गिरफ्तार कर लिये जाते थे । जब तक वे छूटकर न आते, तम्बू गढ़े रहते । उनके आने पर तुरंत वह स्थान छोड़ दिया जाता ।

सुधीर अपने कमरे से यह सब चुपचाप देखा करता । बाड़े में सब उनसे नफरत करते थे । पुलिस चली गयी । थोड़ी देर तक मैदान में एक दमघोट सन्नाटा छाया रहा; किन्तु उसके बाद फिर वही हलचल होने लगी ।

मोती ने पुकार कर कहा—‘ओरी सुहैल, सुनती है ? अब तो कोई मरद नहीं रहा ।’

सुहैल ने ठहाका मार कर कहा—‘बुढ़े तो हैं ही ।’ मोती भी हँस पड़ी । बूढ़ी कामनी भी आ गयी । कामनी ने कहा—‘ओहो, दो दिन मरद नहीं रहा तो परान सूख गये ! बेटी, अब तो यह लड़के कुछ नहीं करते । हमारे मरद तो दिन दहाड़े लूट लेते थे ।’

मोती ने आँखें मिचका कर कहा—‘तू भी तो तब जवान थी ।’
काकी हँस दी ।

दो-तीन दिन बाद ही बूढ़े सुबह के गये बहुत रात हुए लोटते । वे चोरी करने में असमर्थ थे क्योंकि उनमें अब फुर्ती नहीं बची थी । अब, जो कमायी होती वह अलग-अलग न रखी जाकर सामाजिक संपत्ति होती । किन्तु फिर भी पूरा न पड़ता ।

मोती ने सुहैल को बुला कर कहा—‘इस देस के मरद कैसे हैं ? किसी में दम ही नहीं लगता !’

सुहैल ने कहा—‘उधर सिपाही रहते हैं । मुझे बुलाते थे । दूर से बुलाया दिखाया था । मैं डर के मारे न गयी ।’

मोती ने कहा—‘हत्तैरी की ! सच ! रुपया दिखाया था ?’

सुहैल ने कहा—‘मगर दे ही देगा इसकी क्या पक्की है । वह तो पूरी छावनी है । मारेंगे तो ?’

‘ओहो’ मोती ने कहा—‘मारेंगे ऐसे ही ? चल, संभा को चलेगी ?’

सुहैल ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे सिपाही इधर ही आने लगे। अब फिर मस्ती छाने लगी। दिन रात मैदान में नाच-गाने हुआ करते। रात में अब बूढ़े भी शायद जान-जानकर काफ़ी देर से लौटते। अब वे पैसे बचा कर नहीं लाते। जो पाते हैं, वहीं शराब पीते हैं और जब लौटते हैं तो बूढ़े-बुढ़ियाँ में दङ्गा होता है। जवान लड़कियाँ देख-देखकर हँसते-हँसते लोट पोट हो जाती हैं।

बूढ़ी स्वामा कानी हो गयी थी। उसका आदमी देखने में बिल्कुल भयानक पशु-सा लगता था। जब दोनों मत्त होकर नाचने लगते बच्चों की टोली हर्षित होकर ताली बजाने लगती।

शाम हो गयी। मोती और सुहैल राह के किनारे बैठी बातें कर रहीं थीं। अब थोड़ी ही देर में सिपाही आने लग जायेंगे। सारी-की-सारी कंजरियाँ तम्बुआँ में तैयार हो रही थीं। उनकी तैयारी कोई प्रसाधन नहीं था। मन की चाह-मात्र थी। उसी समय सुधीर उबर से निकला। मोती ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया। सुहैल ने पल भर को देखा और फिर दौड़कर दूसरा हाथ पकड़ लिया।

सुधीर बोला—‘क्या है, क्या है?’ उसको परेशान देखकर उनकी हिम्मत और भी बढ़ गयी। मोती ने कहा—‘बाबू! एक अठन्नी देजा! ऐ बाबू तेरा पैर धोऊँ! ऐ बाबू तेरा.....’

सुधीर भीख माँगने के इस नये तरीके पर स्तब्ध रह गया। उसने जब मैं हाथ डाला। केवल एक इकन्नी थी। उसने दोनों की ओर देखा दोनों में से योवन की गंध आ रही थी। देखने से ही लगता था कि यह ब्रियाँ केवल इसीलिये हैं कि इनसे कोई ऐसी ही वासनात्मक बात की जाय। न जाने कितने युगों के संकोच ने उसके हृदय को जकड़ लिया। उसने अपने को छुड़ाते हुए इकन्नी फेंक दी। सुहैल ने झुक कर उठा ली। किन्तु मोती ने कहा—‘ऐ बाबू मुझे! मुझे भी कुछ देजा!’

सुधीर ने कहा—‘एक को दे दी । अब मुझे तुझे क्या ?’

मोती ने एक बार हुमका मार कर हँस दी । उसने अपनी आँख मिचका दी । कोई देख न ले इस संकोचसे सुधीर पानी-पानी होकर लाज में गड़ गया । सुहैल ठहाका मार कर हँस दी ।

सुधीर ने कमरे में आकर जब उस तरफ़ झाँका, उसने देखा उसकी इकब्री झुककर उठने वाली स्त्री अपने भारी लहँगे को नीचे से दो जगह पकड़े उसे फैलाये हुए खड़ी थी । लहँगा नीचे से चाँद की तरह गोल फैल गया था और पर्दा बनाने का प्रयत्न कर रहा था । फिर भी अपर्याप्त था । पीछे की भाड़ी के पीछे दो स्त्री के पैर थे और दो बड़े-बड़े सिपाहियों के बूट पहने ।

सुधीर ने देखा और घृणा और अपमान से विवृण्ण होकर भीतर लौट गया । वे वास्तव में बिल्कुल पशु थे । उसका हृदय इसे देखकर उद्विग्न-सा एक बार भीतर-ही-भीतर हाहाकार कर उठा । कुछ ही दूर पीछे कुछ लड़कियाँ नाच रहीं थीं । उनका गीत आसमान में भँवर मारता काँप रहा था । किन्तु नारी का यह मोल देखकर उसकी अंतरात्मा में शूल-सा चुभने लगा । जिनके न लज्जा थी, न संकोच, न पवित्रता, न अन्य ही कोई भाव—वे पशु नहीं तो क्या हैं ? किन्तु न जाने कहाँ से सुधीर के मन में एक कदणा जाग उठी । उसने कहा—वे पशु हैं क्यों—कि वे अशिक्षित हैं, दरिद्र हैं और संसार उनकी मजबूरियों को लूटता रहा है और सुधीर उदास हो गया ।



दिन में ही घने बादल छा गये । लच्छो ने देखकर बाहर धूप में फैले गेहूँ उठाकर भीतर टाट बिछा लिया और बैठकर बीनने लगी । रामचंद्र को बुखार था । वह चुपचाप खोल ओढ़कर पड़ा था । मार-वाड़िन दर्द से कराह रही थी । घीसा की माँ उसके पास बैठी थी ।

मास्टर साहब बादलों को देख-देखकर मगन हो रहे थे। सुधीर चुपचाप बैठा था।

दोपहर ढले नन्हीं-नन्हीं फुहारें आने लगीं। पेड़ पत्ते जमीन आसमान सब धीरे-धीरे भीगने लगे। दूर कञ्जर गीत गा रहे थे। उनके बूढ़े उठ-उठकर तम्बुओं में चले गये। युवतियों का गीत प्रबल और चुभीला बनकर आसमान में गूँज रहा था।

चिड़ियाँ चहचहाती हुई घोंसलों को लौट चलीं। हवा सनसनाने लगी। हरदयाल एक बने हुए कमरे में बैठा काम देख रहा था। मज़दूर काम पर से हटने लगे। उसने गरज कर कहा—‘क्रिये जाओ काम। खबरदार जो हाथ हटाया है। मुफ्त की मजूरी नहीं मिलेगी। ऐसी क्या कोई बाढ़ आ गयी है?’

धीसा फिर काम करने लगा। हरगोविन्द तथा अन्य सब भी फिर काम में लग गये, किन्तु पानी का वेग बढ़ता गया। मुँह पर बौछार पड़ने लगी। तमाम बदन भीग गया। तब वे लोग भागकर अपनी अपनी कोठरियों में आ गये। हरदयाल छतरी लगाये अपनी कोठरी में जा घुसा। पानी बरसता रहा। उस भयानक वर्षा में आसपास के घर गिरने लगे।

थोड़ी देर को पानी रुक गया। किन्तु फिर जब वह बरसने लगा तो एक धार। रात बीत गई, दूसरा दिन भी बीत गया। तीसरे दिन सब लोगों के दिल बैठने लगे। घरों में खाने का सामान खत्म हो गया था। बाहर जाने की कोई राह न थी। पानी बरस रहा था, एकधार।

आज उन दलितों को अपनी-अपनी चीजों से मोह हो रहा था। वर्षा का पानी धीरे-धीरे बढ़ता देखकर उनका हृदय स्तब्ध हो रहा था। बिदिया अपने दोनों बच्चों का मुँह देख-देखकर काँप उठती थी। महरी ने पन्ना को खींचकर अपने पास कर लिया और रोते हुए बोली—‘पन्ना बेटा, अब क्या होगा?’ किन्तु उसने कुछ नहीं कहा।

सुधीर तीन दिन से दफ्तर नहीं जा सका था। मास्टर बार-बार कहता था—‘सुधीर बाबू, हेडमास्टर तो कहेगा हमें कुछ नहीं मालूम। नहीं आना था तो इत्तला क्यों न दी?’

सुधीर सुनता और चुप हो रहता। नीचे की मंज़िल-भर में शायद दो एक चूल्हे जल सके थे। सारे कंडे और लकड़ियाँ गीली हो गयी थीं। बाहर मैदान के तम्बू हवा से तितर-बितर होकर उड़ गये थे। कञ्जर उन्हें खोच-खींचकर फिर घर बनाने का प्रयत्न करते थे; किन्तु आँधी में उनका सब कुछ उड़ा जा रहा था।

चारों तरफ पानी भर गया था। पानी की भयंकरबाढ़ अट्टहास करती हुई तिर पर गरज रही थी। बच्चे रो रहे थे, औरतें सिसक रही थीं। जिस समय नरक के प्राणी आकाश की शरण में जा रहे थे उस समय भगवान् अप्सराओं को गोद में लिए आसव पी रहा था और उसके न्यायदण्ड को लेकर लक्ष्मी नंगी नाच रही थी। इसके बाद ऊपर की मंज़िल से धोमा-सा संगीत पानी के गर्जन में हिलोरें भर उठा। सुधीर लूटा-सा, गमगीन-सा देखता रहा। उसका हृदय खोया-सा, सकपकाया-सा बिल्कुल चुप था। जब नीचे की मंज़िल में पानी भरने लगा, दोड़-दोड़कर नीचे से लोग ऊपर जाने लगे। जङ्गल में आग लग गयी थी। शेरनी और बकरी साथ-साथ आ खड़े हुए थे। औरतें अपनी छाती खोलकर बच्चों के मुँह से लगालगा देती थीं, किन्तु बच्चे दूध पीते हैं, खून नहीं। मुहर्म्म के धर्मान्ध मुसलमान जैसे हा-हा करके छाती पीटते हैं उससे भी भयानक स्वर मच रहा था। तमाम काम बंद था। जीवन की सत्ता बनाये रखने वाले निर्जिव दकियानूसी प्राणी आज उदास और पराजित-से बैठे थे।

आसमान में बादल भीषण गर्जन कर रहे थे, ऐसा गर्जन कि नवोद्गा त्रिसे सुनकर थर्रा उठती है।

इतने में ऊपर की मंज़िल से एक जबरदस्त ठहाका लगा। न जाने

वह किस रईस का अभिमान था कि नाचने वाली की पायल बजती ही चली गयी। उस ठहाके की प्रतिध्वनि आसपास सब कहीं गूँज उठी। सुधीर ने सुना, जैसे रोम जल रहा था और नीरो अपने फिडिल पर लगातार अपनी उँगलियों को चला-चलाकर अट्टहास कर रहा था। जैसे चंगेज लाखों के सिर काटकर तलवारों की झनझनाहट में उन्माद से हँस रहा हो। पानी की भीषण ठोकड़ों और बादलों की गरज ने उस ठहाके को वीभत्स बना दिया। बादलों के रुई-से बदन पर बिजलियों के कोड़े पड़ रहे थे और वह भयंकर स्वर से आर्त्तनाद कर उठते थे।

सुधीर ने देखा, जिन्दगी का घर डूब रहा था किन्तु वे सर्वहारा अब भी नहीं मरे थे। उसने देखा कञ्जरां की बस्ती बह गयी थी और वे सब इधर ही भागे आ रहे थे। आज उनके पास कुछ भी नहीं था। कल तक जो टूटे फूटे तम्बू थे वह भी अब नहीं रहे। अनेक दिनों के भूखे वे कञ्जर कुत्तों के भुण्ड की तरह इधर ही भागे आ रहे थे। उनकी इस भगदड़ ने सबको शंकित कर दिया। लोगों ने दौड़-दौड़कर उनके पथ में बाधा उपस्थित करने को दरवाजे लगा दिये

कञ्जर और कञ्जरियाँ कुछ देर पानी में इधर-उधर भागते रहे। जब उन्हें कोई जगह नहीं मिली वे ऊपर चढ़ने को भागे। भीषण वर्षा में कई फिसल गये और गिरकर कराहने लगे, किन्तु फिर भी उन लोगों के लिए किसी ने भी द्वार नहीं खोला। वे वहीं पानी में भीगते हुए खड़े रहे। उनके छोटे-छोटे बच्चे पेड़ों के नीचे तनों को पकड़े खड़े थे। हवा से उनके दाँत बज-बज उठते थे। पानी घुटने-घुटने बह रहा था। औरतों के कपड़े भीगकर उनके शरीर से चिपक गये थे। वे प्रायः नंगी-सी प्रतीत हो रही थीं बूढ़ों को कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। वे पानी में खड़े केवल चिल्ला रहे थे। आकाश में कभी-कभी बिजली कड़क उठती थी जिसको सुनकर कञ्जरियाँ आर्त्तस्वर से चिल्ला उठती थीं और बच्चों की तरफ दौड़ती किन्तु ठोकर खा-खाकर गिर जाती थीं।

और तब ही अचानक कोठरी में हरदयाल अपने रुपये गिनने लगा। सुधीर ने सुना रुपये का महानाद खन-खन करके गूँज उठा। यह रुपया नहीं था, गरीबों की हड्डियाँ कड़कड़ा रही थीं, यह रुपये की आवाज नहीं थी, यह पोम्पियाई की सल्तनत लुढ़क रही थी। यह खनखन की मधुर तान नहीं थी, यह मौत के घण्टे का ढन-ढन शब्द तुमुल कोलाहल कर रहा था। आदमी के जीवन का कोई मोल नहीं था। यह रुपया नहीं था, यह जीते जागते आदमी का कफन था। यह दौलत नहीं थी, यह खोखली पीठवाली उभरी छाती थी। यह माँ नहीं थी, यह सरे बाजार जोबन बेचने वाली हरजाई थी।

किन्तु वे असहाय थे। उनके सामने इस भीषण समुद्र में कोई ध्रुव-तारा नहीं था। वे ऐसे भयभीत और बेजबान थे जैसे दुनिया के शुरू के वन-मानव खोहों और पहाड़ों में विशालकाय मोटी खालवाले अजदहे को देखकर चट्टानों में दुबकते थे और वह उनकी तरफ हँकार-गरज कर दुम फटकारता बढ़ा आता था।

कज्जरों ने सुना। एकाएक उनके सामने बिजली-सी कौंध उठी। पानी निरन्तर भरता जा रहा था। बच्चे तो प्रायः डूबने लगे थे। वे लोग एक साथ हरदयाल की कोठरी की ओर दूट पड़े। ऊपर से बाड़े के लोग देखते रहे। ऊँची-ऊँची मञ्जिल वालों ने भी घबराकर इधर ही देखना शुरू किया। किसी का भी साहस नहीं हुआ कि बाहर आए।

कज्जरों ने बल करके दरवाजे को तोड़ दिया और उन्होंने हरदयाल का रुपया ऐसे लूट लिया जैसे वारन हेस्टिंग्स ने बेगमों की लुटी हुई इज्जत को लूटा था, जैसे करोड़ों भूखे हिन्दुस्तानियों ने अङ्गरेजों के न्याय को लूट लिया है।

लूटकर वे लोग भाग चले। घायल हरदयाल पड़ा-छुटपटा रहा

था । बाहर तूफान गरज रहा था । भीषण हवा की प्रतिध्वनि हो रही थी—सूँ...साँ.....

सांभ के शिकारी

समुद्रतीर पर वह शांत सा होटल, जिसके पावां के सामने मनोहर सिकता है । दिन होने के कारण लोग सिकता पर कम चलते हैं, होटल में कम आते हैं । होटल में घुसते ही एक बड़ा कमरा है । उसमें मेज कुर्सियाँ सजो हुई हैं, जिा पर बैठ कर लोग चाय, कॉफी, पी सकते हैं । बाईं ओर एक बराम्दा है । बराम्दे के सामने भी सिकता है । कमरा बहुत साफ़ है । एकदम नीरव । और उस नीरवता में केवल दुबला पतला, गेहुँए रङ्ग का कृष्णन् सूट पहने बैठा था । ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा था । उसके मुख पर घबराहट भी थी स्थिरता भी, जैसे वह कोई अपनी समझ में बहुत बड़ा काम करने वाला था और इसीलिये बात खुल जाने के भय से खामोश था ।

वेटर ने प्रवेश किया । ग्राहक को देख कर कहा—सर ?

कृष्णन् ने उसकी ओर बिना देखे ही उत्तर दिया—‘कॉफी, टोस्ट, उपमाव । ठीक, टोस्ट नहीं, उपमाव ही ले आओ ।’

वेटर भीतर चला गया । उसी समय कृष्णन् ने देखा द्वार पर एक निम्न श्रेणी का मुसलमान खड़ा था ।

कृष्णन् ने इशारे से बुलाया । कहा—ए भाई । यहाँ ज़रा सुनो ।

वह आदमी पास आ गया । बोला—जी, बाबू ?

कृष्णन् ने व्यंग से पूछा—इस होटल में सब लोग अपनी बोली भूल गये हैं ! सब...सब अंगरेजी बोलते हैं ? क्या नाम है तुम्हारा ?

‘हुजूर मुझे इशरत कहते हैं। वह तो आप लोगों का फैशन है।’

कृष्णन् हँसा। कहा—अच्छा। ठीक रहे।

इशरत ने पूछा—बाबू कहाँ रहते हैं ?

‘त्यागरायनगर’

‘तब तो पटनम (महानगर) में ही ?

‘हाँ, हाँ, मदरास में हो।’

वेटर भीतर आ गया। पहले प्याला रख दिया फिर शीशे की तश्तरी में उपमाव। और इशरत को घूर कर कहा—तू यहाँ क्या कर रहा है ? चल निकल यहाँ से।

कृष्णन् ने देखा कि इशरत दबा हुआ सा कमरे के बाहर हो गया। कृष्णन् खाने लगा।

‘हुजूर।’

कृष्णन् ने वेटर को देखा।

‘इस बदमाश से सौ दफ़ा कह दिया यहाँ न आया कर तेरे आने से होटल बदनाम होता है। मगर मानता ही नहीं।’

‘पर आखिर बात क्या है ?’ कृष्णन् ने पूछा।

‘हुजूर, यह, हुजूर.....ठीक नहीं है....दलाल है.....’

वेटर कहते-कहते रुक गया। तीन विद्यार्थी होटल में घुस आये थे। वे एक मेज़ के चारों ओर बैठ गये।

एक ने कहा—देखो जी सारंगपाणि ! हम ज्यादा देर तक यहाँ नहीं बैठ सकते।’

घबराये क्यों जाते हो यार ! अभी सबहुआ जाता है और मुड़ कर आवाज दी—‘वेटर !’

वेटर ने आगे बढ़ कर कहा—सर !’

सारंगपाणि ने चपलता से कहा—‘चीम ! फौरन ! और फौरन से पेशतर !’

बेटर चला गया । तीसरे लड़के अशोक ने दूसरे लड़के से कहा 'हाँ भाई श्रीनिवासन् । तो फिर क्या तय रहा ?'

'यही कि वे दोनों यहीं आते होंगे ।'

'फिर भागेंगे ?'

'कहाँ भाग कर जा सकेंगे वह ?'

क्यों, अशोक ने पूछा—मैसूर कैसा रहेगा । रियासत है ।

श्रीनिवासन् ने सिर हिला कर कहा—कोई बुराई नहीं ।

लेकिन, सारंगपाणि ने टांका—उनके लिये कोई जगह खतरे से खाली नहीं ।

क्या मतलब ? श्रीनिवासन् की भौं तन गई, अशोक को भी तो बोलने दो ? और उसने अशोक की ओर देखकर कहा हाँ फिर ?

रात को, अशोक ने कहा, वे मेरे पास आये, सीधे कालीकट से भाग कर । देखा तो अचरज हुआ । तुम बताओ, तुम सोच सकते थे कि उस बोधे बालकृष्णन् में ऐसा साहस होगा ? साथ में ही कमला थी । समझ में नहीं आता उस काले पर वह रीझ कैसे गई ?

अरे उसका क्या ? श्रीनिवासन् ने हँस कर कहा—दस नवेल पद डाले । मार दिया कस कर कलम का हाथ । प्रेम हो गया । लग हाथों दिमाग आस्मान पर चढ़ गया कि अब तो नई दुनिया बसायेंगे, भाग निकले ।

सारंगपाणि ने व्यंग की व्यथा को समझते हुए कहा—आपको शायद अफसोस है कि आप न हुए ।

सब हँस पड़े । अशोक ने कहा—रात को मैंने उसका बिस्तर ज़नाने में लगवा दिया और बालकृष्णन् नीचे सोने लगा, मगर वह तो बोली कि मैं भी नीचे ही सोऊँगी । औरतों ने जीभ काट ली शर्म हया कुछ बाकी नहीं रहा ।

अजी उसे डर था श्रीनिवासन् ने सिर हिला कर कहा—कहीं रात को ही छोड़ कर न भाग जाये ।

अशोक ने हाथ मेज़ पर मार कर कहा—बिल्कुल ! मैंने देखा था छिप कर, वह रो रहा था, वह ढाड़स दे रही थी ।

हाथ की उँगलियाँ ऊपर की ओर खोल कर श्रीनिवासन् ने कहा, उसका क्या है ? वह तो लौट कर घर भी जा सकता है । पर वह तो नहीं घुस सकती अब ?

फिर भी किन्तु बात पूरी करने के पहले ही याद आ गया और सारंगपाणि ने आवाज़ दी—वेटर !

वेटर द्वार पर दिखाई दिया । उसके हाथ में टूँ थी । मेज़ पर उसने चाय रख दी । सारंगपाणि ने बात पूरी की—बड़ी देर लगाई तुमने ?

वेटर उत्तर दिये बिना ही चला गया ।

श्रीनिवासन् ने प्यालों में चाय उँडेलते हुए कहा—डर लगता है वह बेवकूफ़ कहीं उसकी ज़िन्दगी न बिगाड़ दे ।

दूध मिलाते हुए अशोक ने कहा—लेकिन डर से कुछ होता तो नहीं इस वक्त हिम्मत की ज़रूरत है । शादी तो हो नहीं सकती ।

श्रीनिवासन् चोनी डाल रहा था । चम्मच छिटक कर कुछ चीनी बिखर गई, पर उसने पूछा—क्यों ?

पैसा नहीं है अशोक ने मुस्करा कर कहा—कहीं भी पकड़े जाने का डर है । और रजिस्ट्रेशन भी नहीं हो सकता क्योंकि...

शायद लड़की छोटी है ? सारंगपाणि ने पूछा ।

बिल्कुल । अशोक ने कहा—वह इक्कीस की नहीं है । सिविल सर्जन कह देते हैं कि नहीं वह इक्कीस की है, पर उस के लिये रुपया खर्च करना पड़ता है सो है नहीं.....

ब्रात लम्बी थी । श्रीनिवासन् ने कहा—चाय भी पीते चलो न ?

अरे हाँ, दोनों ने एक साथ कहा और अपने अपने प्याले उठा लिए। एक घूँट लेकर श्रीनिवासन् ने कहा—फिर अब क्या करना है ?

‘उन्हें मदरास के बाहर कर देना है

तीनों चुपचाप चाय पीने लगे। समस्या बहुत बड़ी थी। अपना खाली प्याला मेज पर रखते हुए श्रीनिवासन् ने आवाज दी—वेटर !

वेटर ने प्रवेश करके कहा—सर !

बिल ।

वेटर ट्रे पर चाय के प्याले आदि रख कर भीतर चला गया। अलग बैठे कृष्णन् ने ऊब कर अंगड़ाई ली। वेटर बिल प्लेट में लाकर पेश किया। श्रीनिवास ने दो आने अधिक रख दिये। वेटर सलाम करके लौट गया।

अरे ! अशोक ने चौंक कहा—उनका तो बहुत पहले आने का वायदा था। अभी तक नहीं आये ?

हम स्वयं आधे घण्टे बाद आये हैं, कहीं वे लोग आकर चले तो नहीं गये ?

पूछो तो।

अशोक ने अलग बैठे कृष्णन् से मुड़कर कहा—जन्ट्लमन ! क्षमा करिये।

कृष्णन् ने ठंडे स्वर से कहा—जी।

क्या आप बताने की कृपा करेंगे कि आप यहाँ कितनी देर से बैठे हैं, यदि आप बुरा न मानें तो.....

कृष्णन् ने काट कर कहा—आप पुलिस ?

देखिये, अशोक ने हिचकिचा कर कहा—यह बात नहीं। क्या आपने लड़के को एक लड़की के साथ देखा था ?

जी हाँ कृष्णन् ने कहा—जब मैं होटल में घुस रहा था। मैंने उस

पर्दे के हट जाने से लड़की को देखा था। वह कण्ठे ठीक कर रही थी और आदमी उसके पास खड़ा था.....

जी, जी, अशोक ने सन्तोष से सिर हिला कर पूछा—वह लड़की गोरी थी ?

कृष्णन् ने कहा—गोरी ? वह तो थी ही गोरी ! एंग्लोइंडियन ।

श्रीनिवासन् जोर से हँसकर कह उठा—अरे मैं भी क्या सोच रहा था कहीं बालकृष्णन् ने इतनी उतावली न की हो ।

हटात् कृष्णन् ने बाहर के द्वार की ओर हाथ उठा कर कहा—देखिये वही आ रही है । अब के उसके साथ एक लड़की है ।

श्रीनिवासन् ने मुड़ कर कहा—अरे यह तो डारोथी है । यह, यह तो.....

बात पूरी नहीं हो पाई । लड़कियाँ आकर बैठ गईं । सारंगपाणी ने उठते हुये कहा—तो फिर चला जाय । वह लोग अभी तक नहीं आये । कहीं पकड़े तो नहीं गये ?

अशोक और श्रीनिवासन् ने एक साथ मिश्रित दृष्टि से देखा । और अशोक ने उठते हुए स्वीकार किया—ग्रच्छा चला जाय ।

श्रीनिवासन् लाचार सा उठ खड़ा हुआ । उसने देखा । डारोथी मुस्करा रही थी ।

—२—

जब वे तीनों चले गये कृष्णन् ने आवाज दी—वेटर !

वेटर ने प्रवेश किया ।

कौन थे ये लोग ?

बृद्ध का मुख गंभीर हो गया । उसने विरक्त स्वर से कहा—साँभ के शिकारी । दुनिया को बेवकूफ समझते हैं । एक औरत भगा दी है उस पर इतना धमड़ । समाज.....समाज.....सुधार ! सुधार ! दिन भर लड़कियों का चक्कर, उसने यह कहा, उसने वह कहा, किसी की

आख अच्छी है किसी के कान अच्छे हैं, बहुत हुआ ब्रिज का जोर मारा और घर जाकर माँ बाप को उल्लू बनाया। और क्या? हराम का मिलता है जो?

कृष्णन् ने हँसकर कहा—तुम बूढ़े हो न? तभी तुम्हें यह बातें नहीं सुहाती। एक कप काफ़ी और ला दो।

‘यस सर!’ वेटर के स्वर में हठात् दूसरी गंभीरता आ गई। वह चला गया।’

उस समय एक लड़की ने कहा—मारगेरेट! ओह डियर मी! मैं बहुत थक गई हूँ।

मारगेरेट ने मुस्करा कर कहा—तुम्हारा दोस्त! मुझे तो उसका यकीन नहीं.....

‘उससे पहला तो... उफ... उफ.....’

‘वह तो जानवर था।’

‘वह सीधा है।’

‘बहुत पैसा है इसके पास। शादी क्यों नहीं कर लेती?’

‘निमेगी नहीं; डारोथी ने उदासी से कहा—‘यह सिड़ी भी तो है.....’

‘क्यों?’ मारगेरेट ने उत्सुकता से पूछा—भगड़ा हुआ है कभी?’

‘हो सकता है।’

‘चुप-चुप,’ मारगेरेट ने धीरे से कहा—‘वह आदमी सुन रहा है।’

डारोथी हँसी। कहा—यह मुझे कपड़े ठीक करते देख चुका है। उससे क्या छिपाना?

उठकर उसके पास चली गयी। मारगेरेट ने घबरा कर आवाज दी—डारोथी!

किन्तु डारोथी ने नहीं सुना। उसने कृष्णन् से कहा—जन्टलमन! आप हमारी बातें सुन रहे थे?

कृष्णन् ने अचकचा कर देखा और उसके मुँह से निकल गया—
औह नो । लेडी नो !

वेटर कॉफी ले आया था ।

‘आप पीजिये ।’

ओह, नो थैंक्स । कहती हुई डॉरोथी वहीं बैठ गई । कृष्णन् ने कहा—‘वेटर ! दो प्याले और ले आओ ! मुड़कर डॉरोथी से कहा—
उन्हें भी ठुला लीजिये न ?’

डॉरोथी ने कहा—मारगेरेट !

मारगेरेट आकर पास बैठ गई । वेटर दो प्याले और ले आया ।
उसके मुख पर असंतोष था । जब वह चला गया कृष्णन् ने कहा—लोग
काफी काँच के गिलासों में पीते हैं मुझे वह पसंद नहीं । और मारगेरेट
से कहा—आप कुछ नाराज लगती हैं । पीजिये ?

नही तो, मारगेरेट ने कहा—आपको यह शक क्यों हुआ मैं सोच
रही थी कि जरा बाजार जाती ।

चलियेगा । मोटर बाहर खड़ी है ।

गुड; डॉरोथी ने स्वीकार किया, तुम जाना मारगेरेट लेकिन मैं नहीं
जा सकूँगी । मुझे काम है ।

मारगेरेट ने कॉफी पीते हुये कहा—आप पहली बार इधर आये हैं ?
कल आइयेगा ?

‘क्यों ?’ कृष्णन् ने उत्सुकता से पूछा ।

‘मारगेरेट’ डॉरोथी ने ऊबे हुए स्वर से कहा—‘तुम्हें सदा नये
आदमियों को सिनेमा दिखाने की सूझती है ।’

‘तो आज ही चलिये न ?’ कृष्णन् ने स्वर का आनन्द छिपाते हुए
कहा—‘वहीं से चलेंगे ।’

‘भभी, नाराज होंगी ।’ मारगेरेट ने अबोध आँखें उठाते हुये कहा ।

ओह ! कोई बात नहीं । मैं समझा दूँगी डॉरोथी ने कहा—एक शरीफ आदमी के साथ जाने में क्या हर्ज है ।

‘तो चलिये न ?’ मारगरेट उठ खड़ी हुई ।

लेकिन, कृष्णन् ने कहा—बिल तो मँगा लूँ ?

मैं बाहर ही दे दूँगी ।

कृष्णन् का हृदय गद्गद् हो गया । उसने मारगरेट के साथ बाहर चलते हुए डॉरोथी की ओर मुड़कर कहा—बाई, बाई.....

डॉरोथी ने हाथ उठा कर हिलाया । कुछ देर वह चुपचाप सिगरेट जला कर धुँआ छोड़ती रही । बगल के द्वार से इशरत घुस आया । उसने पास आकर कहा—मिसी बाबा !

डॉरोथी का ध्यान टूटा । उसने कहा—मारगरेट तो गई । उसमें अभी बड़ी चकाचौंध है ।

आप भी तो.....

इशरत की बात को काट कर डॉरोथी ने डाट कर कहा—‘चुप रहो बेवकूफ ! क्या है ?’

मिसी बाबा ! इस बाबू का पता बताया है । इनाम !

यू डॉग ! डॉरोथी ने एक रुपया बटुए में से निकाल कर मेज़ पर डाल दिया । इशरत ने रुपया उठा कर सलाम किया । डॉरोथी उठ खड़ी हुई । इशरत ने धीरे से कहा—हुजूर !

‘क्या है ?’

‘हुजूर’ उसने हिचकिचा कर कहा—‘एक अर्ज है ।’

डॉरोथी जैसे समझ गई पर अनजान बन कर कहा—क्या है ? बोलो ।

‘हुजूर, कसूर माफ हो ।’

‘बोलो । क्या बात है ? और पैसा चाहिये ?’

‘हुजूर, पैसे की क्या कमी है ? आपकी खिदमत में किसी चीज की ज़रूरत नहीं पड़ती ।’

‘तो फिर कहता क्यों नहीं ?’

‘हुजूर डर लगता है । आप नाराज हो जाएँगी ।’

‘ओह, तो ! तुम हमारा आदमी है ।’

‘हुजूर ! इशरत ने एक बार निगाह भर कर डॉरोथी को देखा । भिर आँखें भुंक गई—‘आप बहुत खूबसूरत हैं ।’

हुजूर, साफ कपड़े पहन कर यह काम करने में शर्म लगती है । मैं उस वक्त साफ कपड़े पहन कर आऊँगा ।

डॉरोथी हंस दी । जैसे वह सोच रही थी ।

‘हुजूर मैं आपका गुलाम हूँ ।’

डॉरोथी एक बार मुस्कराई फिर चली गई । इशरत गद्गद् सा खड़ा रहा । पगचाप सुन कर उसने आँखें उठाई । एक घबराई सी लड़की ने प्रवेश किया । इशरत सावधान हो गया ।

‘तुमने यहाँ’ लड़की ने हाँफते हुए कहा—‘एक आदमी को देखा ?’

‘बोबी ! यहाँ आदमियों के अलावा सिर्फ औरतें आती हैं । आप किसे पूछ रही हैं ?’

‘मेरा मतलब बालकृष्णन् से है । वह मुझ से रास्ते में कह कर गया था कि अभी आता हूँ । सो अभी तक नहीं आया ।’

‘तो वह अब आवेगा भी नहीं ।’ इशरत ने सिर हिला कर कहा — ‘वह आपको छोड़कर भाग गया है । कौन था ?’

‘वह मेरा पते होने वाला था ।’ लड़की का मुख विवर्ण हो चला था ।

‘होने को तो मैं भी जाने क्या होने वाला था । लेकिन आज-कुछ भी नहीं हूँ ।’

हाथ ! अब मेरा क्या होगा न इधर की रही, न उधर की, मेरा तो कहीं भी कोई न रहा.....

लड़की बैठ कर रोने लगी । उसके मुँह से अस्फुट शब्द फूट रहे थे जिन्हें शायद दाब सकने में वह अब असमर्थ हो गई थी—अब मैं दुनिया को अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी । कहाँ जायगी तू कमला ? ।

वेटर ने आवाज सुनकर प्रवेश किया । कटोर दृष्टि से इशरत को घूरते हुए कहा—इशरत ? क्यों छेड़ रहा है, शरीफ औरत को ? होटल की इज्जत का सवाल है ।

‘मैं क्या कर रहा हूँ’ इशरत ने द्वार की ओर हटते हुए कहा—‘तुम जानो, तुम्हारा होटल । बीबी कह रही थीं कि अब वे कहीं की नहीं रही । बेकार घर छोड़ कर भाग आई ।

‘भाग आई ?’ वेटर ने चौंक कर कहा ।

‘शरीफ औरत है.....’ इशरत के मुख पर मुस्कराहट काँप उठी ।

‘भाग जा बदमाश’ वेटर ने तड़प कर कहा—क्या देख रहा है खड़ा खड़ा । रंडियों का दलाल । साले तू सड़-सड़ कर मरेगा ।

‘तेरी तरह नौकर तो नहीं हूँ ?’ इशरत ने ताना मारा ।

‘निकल यहाँ से ।’ वेटर ने फूत्कार किया ।

‘अरे जा तो रहा हूँ बूढ़े । क्यों खाये जा रहा है ।’

लड़की को घूरते हुए वह चला गया । वेटर के हाँठ घृणा से काँप उठे । उस नीरवता में लड़की का रुदन गूँज उठा ।

—३—

वेटर ने लड़की के पास जाकर पूछा—‘तुम कौन हो ?’

मैं, मैं पापिनी हूँ, लड़की ने रोते हुए कहा, हाथ मैं कहीं की भी नहीं रही । क्यों नहीं फट जाती यह धरती ? जो औरत का जनम लेकर अब भी जी रही हूँ.....

वेटर किंकर्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रहा। लड़की रोती रही। इसी समय कृष्णन् घबराया-सा भीतर घुस आया।

‘वेटर!’ उसने तेज़ी से कहा।

‘सर?’

‘हमारा मनीबैग कहाँ है?’ एक तीव्र दृष्टि ने अपनी कुर्सी के ऊपर नीचे देखा और मुड़ कर कहा—‘कहाँ है बताओ?’

वेटर चुप खड़ा रहा। जैसे कोई बड़ी बात नहीं हुई। फिर धीरज से पूछा—आपने बाहर दाम नहीं दिये?

‘बिल तो उस लड़की ने चुकाया था न? वह लड़की रास्ते में एक जरूरी काम बताकर मुझे छोड़कर मोटर से उतर गई। दूर पहुँच कर मैंने जेब में हाथ डालकर देखा...पर्स नहीं था...स्वर भिच गया। वेटर ने मुस्करा कर पूछा—वह लड़की कौन थी? क्या आपकी होने वाली बीबी...’

कृष्णन् चिल्ला उठा—चुप रहो। बेवकूफ़।

‘बाबू,’ वेटर ने हाथ से इशारा करके कहा—‘बेवकूफ़ तो वह आपको बना गई।’

बना गई? कृष्णन् ने भौं सिकोड़ कर कहा—तुम सब बदमाश हो। तुमने होटल के नाम पर चकला खोल रखा है। मैं यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। कम्पनी ने मुझे हजारों रुपया औरतों के पीछे फूँकने को नही दिया था। आज तक कई लड़कियाँ मिलीं, लेकिन ऐसी कोई नहीं थी।

वेटर ने मुस्करा कर फिर पूछा—‘आपको उसने कुछ नहीं दिया?’

‘दिया? कृष्णन् ने गुर्ग कर कहा—क्या देती वह मुझे? रंडी किसी को क्या दे सकती है? उसमें नौ-सौ रुपये थे, नौ-सौ।’

स्वर में दृढ़ता थी। वेटर ने चौंक कर दुहराया—‘नौ सौ!’

‘तुम सोच भी नहीं सकते, क्यों?’ कृष्णन् ने होंठ चबा कर कहा—

‘तुम होते तो तीन जगह गश खाते और अभी तक तो दम तोड़ दिया होता। भिखमंगे। लेकिन मैं शादी करने वाला हूँ। आज मुझे एक नेकनेस खरीदने जाना था। और अब मुझसे मनीबेग खो गया है। क्या कहूँगा मैं चंद्रमणि से? कितनी खुश होती वह उस नेकनेस को पाकर.....’

वेटर को जैसे होश आया। उसने कहा—सर आप पुलिस...

कृष्णन् ने काट कर पूछा—क्या वह लड़की यही की रहने वाली है?

वेटर ने निराश स्वर से कहा—‘मुझे नहीं मालूम।’

कृष्णन् कराह उठा—‘उफ़! जाऊँ! कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? कुछ भी समझ में नहीं आता।’

लड़की ने सिर उठा कर कहा—आपका तो सिर्फ़ रुपया खोया है, लेकिन मेरा तो सब कुछ खो गया है...

‘आपका? क्या खो गया आपका शुभ नाम?’

‘कमला।’ लड़की ने कठिनता से कहा।

‘कमला!’ कृष्णन् चौंका। फिर पूछा—‘आपका दोस्त कहाँ है?’

‘वह छोड़ गया,’ बाँध टूट गया। लड़की फिर रोने लगी।

‘आप उस बदमाश के साथ भाग क्यों आई? कृष्णन् ने तित्त स्वर से कहा—‘मुझे आप से हमदर्दी है। लेकिन मैं आपकी कोई मदद भी तो नहीं कर सकता? आप सचमुच नादान हैं। आपने अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी नहीं मारी, अपने माँ बाप की इज्जत खाक में मिलादी...’

कमला ने हाथों में ग्लानि से मुँह छिपा लिया। ‘मैं क्या करूँ?’ वह रोते हुए कह उठी—‘वह बड़ी-बड़ी बातें करता था। एकदम धोखा दे गया...’

‘मैं अपना भोगूँ, आप अपना भोगिये।’ कृष्णन् वेग से चला गया। कमला ने अत्यन्त करुण कंठ से कहा—चला गया। यह तक न

पूछा कि क्या करेगी । कितना निष्ठुर है यह संसार ! कोई सहारा नहीं, कोई ठिकाना नहीं...'

वेटर ने धीरे से कहा—बीबी !

वेटर !

'बीबी,' वेटर ने उपेक्षा से कहा—'यहाँ पुलिस आ सकती है । आप चली जाएँ, तो अच्छा हो ।

'पुलिस !!' कमला भय से काँप उठी । 'लेकिन मैं कहाँ जाऊँ वेटर ? मेरा तो कोई नहीं है ।'

'आप अभी बच्ची हैं । घर लौट जाइये । माँ बाप कैसे भी हों । आखिर माँ बाप हैं । वैसे काम तो आपने ऐसा किया है कि गला घोंट कर मार डालना चाहिये ।'

वृद्ध का स्वर काँप उठा । लड़की ने रोते हुए ही कहा—'हाँ मैंने पाप किया है । पर पाप तो सब ही करते हैं । फिर... फिर मुझे ही क्षमा नहीं किया जा सकता ?'

आप औरत हैं, वृद्ध का स्वर कठोर हो गया, 'और औरत का पाप कोई क्षमा नहीं करता । औरत की जात ही अगर ढङ्ग से नहीं रहेगी तो मर्दों का क्या होगा ?'

'तो जाऊँ ?' कमला ने आर्द्र कंठ से कहा—'क्या कहूँ घर जाकर ? वेटर तुम बूढ़े हो । तुम मेरे बाप के बराबर हो । घर कैसे जाऊँ ? वे लोग मुझे मारते थे । यह देखो... वेटर... यह देखो तुम समझते हो वे लोग आदमी हैं ।'

वृद्ध ने देखा । हाथों पर नील पड़ी थी । उसने धीरे से कहा—'लेकिन तुम्हारी माँ, फिर भी तुम्हारी माँ है ?'

'माँ,' मैं नहीं जानती संसार में सब माँ को इतना अच्छा क्यों मानते हैं । मैं तो अपनी माँ को फूटी आँखों भी नहीं सुहाती । मेरे मरने से शायद उसे जितनी खुशी होगी उतनी और किसी चीज़ से नहीं ।'

‘वह तुम्हारी असली माँ है।’

‘नहीं,’ वह तो देवी थी। मुझे बहुत प्यार करती थी। यह मेरी दूसरी माँ है।’

वृद्ध चुप होकर सोचने लगा। लड़की हाथों में मुँह छिपाये भीतर ही भीतर सिसकने लगी। एकाएक द्वार पर कोई दिखाई दिया। वृद्ध उधर ही चला। अशोक और सारंगपाणि घबराये हुए भीतर घुस आये। उनके हाँठ सूख रहे थे।

‘क्या फ़ायदा ऐसे प्रेम से’ अशोक ने सारंगपाणि को बैठते हुए देखकर कुर्सी खींचकर उत्तेजित स्वर से कहा—‘न आप रहान दूसरों को ही कुछ दे सका। क्या कहेगी अब उसकी माँ?’

‘मरना ही था तो,’ सारंगपाणि ने भौं उठाकर कहा—कमबख्त ने ऐसी हिम्मत ही क्यों की? तब तो आँखों में ऐसे डोरे पड़े कि सब कुछ गुलाबी दिखने लगा?

‘कोई बात हुई! एक लड़की भगा लाये। जब हिम्मत नहीं हुई तो उसे कहीं छोड़कर मोटर के नीचे गिरकर आत्महत्या कर ली। वेटर! चाय!’

वेटर भीतर चला गया।

‘तुम उसकी लाश के पास भी नहीं गये?’

अजी जाओ। ऐसे कायर के पास जाना तो क्या उसको देखना भी प्रेम जैसी पवित्र वस्तु का अपमान करना है...

अशोक का मुख विकृत हो गया। सारंगपाणि ने सोचते हुए कहा—प्रेम वस्तु तो नहीं अशोक। एक भावना अवश्य हो सकती है।

‘और अपना एक उदाहरण और छोड़ गये?’

‘सारा अपराध तो बालकृष्ण का नहीं। कुछ तो कमला ने ऐसा अवश्य किया होगा। ऐसी लड़कियाँ जो प्रेम का स्वाँग करती हैं, गोली

मार देने काबिल होती हैं, लेकिन अशोक ! बालकृष्णन् कायर था, बिल्कुल कायर !

अशोक ने हड़ता से पूरा किया—परले सिरे का ।

अपना नाम सुन कर लड़की ने सिर उठाया । अशोक कहता गया—कमला के साथ जो उसने किया है वह बिल्कुल अनुचित है । अब वह लड़की कहाँ रहेगी ?

एकाएक सारंगपाणि लड़की को देख कर चिल्ला उठा—कमला तुम यहाँ भी ? क्या एक की हत्या से मन नहीं भरा : भर भरके उसके कान, तुमने माँ बाप का इकलौता बेटा उनसे छुड़वा दिया और अब उसका सर्वनाश करके यहाँ रोने का बहाना कर रही हो ?

लड़की के नेत्र गम से फट गये । उसने कहा—क्या-क्या...वे... ।

अशोक ने संवेदना से कहा—मोटर के नीचे जाकर दब गया ।

लड़की जोर से चिल्ला पड़ी—‘हाय ! मेरे भगवान् ! यह तूने क्या किया ? राह की भिखारिन बना दिया मुझे । मर गये ? सच कहो, तुम भूँठ तो नहीं कहते ?’

‘भूँठ नहीं कमला,’ अशोक से उदास स्वर से कहा—‘मैं ठीक कह रहा हूँ । तुम्हारा होने वाला पति मर चुका है ।’

और सारंगपाणि ने कठोर स्वर से कहा—मर चुका है वह जो तुम्हारे पीछे कुछ भूल कर अंधा हो गया था । जिसने उनकी परवाह की जिन्होंने अपना पेट काट कर उसे इतने दिन तक पाला था ।

‘चुप रहो’, लड़की चिल्ला उठी —‘मैं पागल हो जाऊँगी । वह नहीं मर सकते, वह इतने कायर नहीं हो सकते । उन्होंने कहा था वे जीवन भर मेरा साथ देंगे.....मर गये ? मैं शादी से पहले ही विधवा हो गई हूँ । मेरा कोई नहीं ? सारा संसार.....मेरे दिल में आग लग रही है... मैं नहीं, मैं नहीं...कितना !...कितना !.....’

कमला मूर्छित होकर गिर गई । अशोक और सारंगपाणि विस्मित

से खड़े हो गये । प्रवेश करके वेटर ने धीरे से कहा—सर, मैं बूढ़ा हूँ...
अगर आप बुरा न मानें तो यहाँ से चले जाएँ ।

‘क्यों ?’ अशोक ने चौंक कर पूछा ।

‘यहाँ पुलिस आने वाली है ।’

‘पुलिस ! ! !’ दोनों बोल उठे ।

‘जी !’ वेटर ने सिर झुका लिया ।

‘चलो अशोक’ सारंगपाणि ने घबराये स्वर से कहा—जो होना था
सो गया । अब क्या होगा ! बेकार की इज्जत में पड़ने से फायदा ?

‘लेकिन कमला ?’ अशोक ने पूछा ।

‘एक तो मर ही चुका । अब क्या दो को जेल भी जाना चाहिये ?
चलो । यहीं रह कर क्या होगा ?’

अशोक उठ खड़ा हुआ । वेटर ने टोक कर कहा—सर ! आपने
चाय का आर्डर दिया था । चाय तैयार है । ठंडी हो रही है ।

सारंगपाणि ने जल्दी में एक रुपया उसके हाथ पर रखते हुए
कहा—आज सब ठंडा हो रहा है वेटर । आदमों के भीतर की यह गर्मी
ही सारी आपत्तों की जड़ है...

वेटर ने रुपया मुठी में दबा कर सलाम किया । दोनों चले गये ।
वेटर देर तक मूर्छित कमला को देखता रहा फिर भीतर चला गया ।

जब काफी देर बाद कमला को होश आया उसने इधर-उधर
देख कर करुण स्वर से कहा—कोई नहीं ! इस अबला की रक्षा के
लिये कोई नहीं ?

उसने सुना—मेरे साथ चलो । बेइज्जत जिन्दगी को इज्जत के धोखे
में बिता दोगी...मैं सिर्फ इतना कर सकता हूँ...

देखा । द्वार पर इशरत खड़ा था ।

अधूरी मूरत

मैं जिस छोटी सी दूकान में नौकर था वह दूकान शहर के उस हिस्से में बसी हुई थी जो बहुत ही पुराना था। बड़ी सड़कों की रौनक वहाँ घुस ही नहीं सकती थी; क्योंकि उनके लिये हाथ पाँव पैलाने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। इसी से यह सोचना कोई कठिन काम नहीं है कि वहाँ कितने आराम चैन से काम होता था।

मुहल्ला क्या था ! एक ज़माने में वहाँ के लोगों के सामने बड़े-बड़े मुसव्विर घुटने टेक देते थे। फ़ितावों के ढेर में हिसाब लिखते-लिखते जब मैं सिर उठाकर बाहर देखता तो उस सामंतीय युगीन नगर के पुरानेपन की वह स्नेहमयी सांत्वना मेरे हलचल से भरे हृदय में एक व्यक्तिगत संतोष बन कर उतर जाती। मुझे लगता यह उस जीवन का एक खंडहर है जिसके विपादों के ऊपर जिसकी ममता की एकांगिता है, जिसके धुंधल के ऊपर किसी की प्रतीक्षा में जलते हुए दीपक का कोमल प्रकाश है, जिसकी दासता में भी सुहागिन का छोह भरा प्यार है।

और फिर पत्थर की मूर्तियाँ बनाने वाले दस्तकारों का वह अथक परिश्रम जैसे उस पृष्ठभूमि में एक बहुत ही करुण तन्मयता थी जिसकी विवशता ही जीने की इच्छामात्र का वरदान बन कर अपने आप ही पत्थर पर तेज आरी बनकर घिस-घिस कर काटा करती थी।

बूढ़ा हरचरन सामने ही बैठा। उसके दो जवान लड़के, एक दस बारह बरस का नाती, बगल में कमरे के जंगले से बँधी गाय, जो कभी बैठकर जुगाली करती, या उठकर सानी में रह-रह कर मुँह चलाती। पत्थर, सफेद, मटमैले। हरचरन की श्वेत दाढ़ी के बाल उसके वक्षस्थल को ढँक देते, सिर प्रायः गंजा हो चुका था और आंखों पर काले फ़्रेम का चश्मा

लगाकर वह चुपचाप पत्थरों की मूर्ति को आखिरी उस्तादी हाथ लगाता, लड़के मूर्तियां गढ़ते नाती अभी केवल पत्थर ही काटता। उस घर में स्त्रियां भी हैं, छोटे-छोटे बच्चे भी हैं, जैसे गाय के साथ बछड़ा भी है... और एक अनवरत धार सा चलता यह जीवन, जैसे समय एक तेज आरारी है जो जीवन के कठोर पत्थर को काट देती है और फिर मनुष्य प्रयत्न करके उन टुकड़ों को नवजीवन देने का प्रयत्न करता है।

आज मुझे नौकरी करो अनेक दिन बीत गये हैं, मुझे अपने जीवन से उतना ही असंतोष है, जितना इस पथ को मोटरों का अभाव है, भेद है तो केवल इतना कि यह पथ जानते ही नहीं कि मोटर है क्या, और मैं दुर्भाग्य से कल्पना भी करने का आदी हो चला हूँ।

वृद्ध हरचरन ने मुझे स्नेह से देखा था और कहा था—जब मन करे तब चले आया करो बाबू।

और मेरा दफ्तर, जिसे अपनी तपस्या का गर्व है कि वह भी संघर्ष के इस विराटचक्र से अपना दाँत गड़ा कर अपना आस्तित्व बता देना चाहता है..... और हरचरन की वह दूकान जिस पर एक सुबह की किरन आती है, दिन भर कमरे में रेंगती है और साँभ हुए भारी कोहरे में ऐसे छिप जाती है जैसे गहरे कपड़ों में कोई गोरा बदलन लाज से लिपट कर मुँह छिपा लेता है।

बूढ़ा हरचरन पुकार कर कहता—बाबू ! क्या हो रहा है ?

‘क्या बना रहे हो ?’ मैंने उस दिन केवल बात बदलने के लिये पूछा।

‘कुछ नहीं बाबू’ वृद्ध ने उठ कर आगे आते हुए कहा—‘वह हैं न सक्सेना बाबू’ अमरीकनों के दफ्तर में नौकरी कर ली है न ? सो एक तस्वीर दे गये हैं कि ऐसी मूरत बना दो। किसी गोरे को देंगे। वह ही बना रहा था।

उठ कर मैंने देखा। तस्वीर अमरीका की प्रसिद्ध ‘आज़ादी की मूर्ति’ थी। हाथ में मशाल उठाये।

‘बनाई कुछ ?’ मैंने पूछा ।

‘चेहरा तो बनाया है ।’

देखा । वह मुख स्पष्ट ही भारतीय था । मैंने हँस कर कहा—लेकिन चेहरा तो हिंदुस्तानी है ।

वृद्ध अप्रतिभ होने लगा । मेरे मुख से निकला—तो क्या हुआ ? हिन्दुस्तानी आज़ादी की मूरत सही ।

वृद्ध ने सुना फिर धीरे से कहा—लेकिन बाबू यहाँ लेगा कौन ? शब्द मेरे कानों में वज्र की कड़क-की भाँति गूँज उठे । और एक कलाकार कह रहा था.....!!

दोहर का वक्त था । जाड़े की धूप की वह नीरव तन्द्रा मध्य-कालीन संस्कृति की मुझे बार-बार याद दिला देती थी । इसी समय मेरा ध्यान टूट गया । अजनबी के स्वर ने प्यासे दिल का तार छुआ । और गूँज भनभनाती हुई फैल गई । मैंने देखा वृद्ध बैठा अपना सितार टुनटुना रहा था । उस दलित जाति के उस दरिद्र कलाकार को देखकर न जाने क्यों मेरा मन भीतर ही भीतर रो उठा । युगों की संस्कृति को किस राख ने ढँक दिया है आज जो उसके भीतर के शोले को बुझा देना चाहती है किन्तु यह उस कंठे की आग है जो धूप में सूख कर कड़े हुए शरीर में तपिश बन कर समाई हुई है जो बुझेगी नहीं, नहीं बुझेगी, धुँआँ देती रहेगी, सुलगती रहेगी ।

सितार पर वह उँगलियाँ लल रही हैं मुझे लग रहा है कि सामने रखा पत्थर का टुकड़ा अब शीघ्र ही गा उठेगा । और वृद्ध मग्न होकर गा रहा था—

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो,
समदरसी है नाम तिहारो
चाहे तो पार करो.....

स्वर चढ़ता है, स्वर उतरता है। उस अरोहन अवरोहन में जाने मनुष्य की कौन सी पीड़ा कसक-कसक कर रो रही है कि मेरी इस नीरसता की आधुनेकता को आज भारत की युग-युग की संस्कृति आत्मा का रोदन बनकर बार-बार कँपा रही है जैसे वृद्ध की उँगलियाँ उस तार को, और दोनों की वह अज्ञात पुकार शून्य के निर्मल प्रसार में धीरे-धीरे घुली जा रही है, मिली जा रही है।

मेरी आँखों के सामने उस शांति का भव्य चित्र खिचता जा रहा है जिसमें अपनी सीमात तृष्णा ही सन्तोष बनकर दीपक के नीचे का आँधेरा बनकर सिमट कर रह गई थी।

गीत रुक गया। वृद्ध ने मुस्करा कर कहा—क्यों मियाँ करीम ?

एक मुसलमान हाथ में साइकिल लिये द्वार पर खड़ा था। हैडिल में दो थैले लटके थे।

आगंतुक ने कहा—वह तो खूब बिकी कल।

‘कौन सरस्वती ?’ वृद्ध ने सिर उठा कर पूछा।

‘खूब बनाई है गुरु’ करीम ने कहा—कल तो आफ़ताब साहब भी फड़क उठे देख कर। पहले कहा करते थे कोई मुसलमान मूरत लाओ क्या रोज-रोज हिंदू मूरत ले आते हो। गुरु मैं कहता था कि मुसलमानों के यहाँ रिवाज़ ही नहीं है। और फिर पत्थरों में क्या हिंदू, क्या मुसलमान.....

वृद्ध गर्व से मुस्कराया जैसे उसके हाथ में पत्थर भी किसी संस्कृति का द्योतक है। मैंने अनुभवमात्र किया। नहीं जानता वृद्ध क्या सोच रहा था। उसने धीरे से कहा—करीम मियाँ ! यह हवा बढ़ती जा रही है। हम तो ताजमहल भी बनाते हैं। सोचते ही नहीं कि यह किसी मुसलमान जगह की मूरत है।

करीम ने कहा—बकने दो गुरु ! करीम को तो हिंदू मूरत पैसा देती हैं।

‘और’ वृद्ध ने हँस कर कहा—न. कहोगे हरचरन ताज पर पलता है ! दोनों हँसे ।

‘तो’ करीम ने सोचते हुए कहा—

‘तीन और देना बैसी ।’

वृद्ध ने नाती की ओर देखा । नाती उठा । तीन सरस्वती की छोटी छोटी मूर्तियाँ निकाल लाया अलमारी से । करीम ने उन्हें सहेज कर थैले में रख लिया और कहा—फिर मिलेंगे इन्शा अल्ला.....

वृद्ध ने सितार फिर उठा लिया और गा उठा—

समदरसी है नाम तिहारो.....गीत अपने आप में पूर्ण है, क्यों-कि मन की अतृप्ति उसका आधार है क्योंकि जो टीस है वही रागिणी है, जो गूँज है वही उसका प्रसार है.....

‘एक नदी है’ एक नाला है जिसमें मैला नीर भरा है, किन्तु जब दोनों मिल जाते हैं, तब उनका नाम सुरसरि धार पड़ जाता है.....

और मेरे अतीत की वह आत्म-विह्वलता आज विश्वास बनकर गरज उठना चाहती है क्योंकि यह मनुष्य की उस सतह की बात है जहाँ मनुष्य अपने संकोचों में पड़कर मनुष्य से मनुष्य की तो क्या, अपने सम्बन्धों में आये पत्थर तक से घृणा नहीं करता क्योंकि दोनों के मनुष्यत्व को कायम रखने वाली रोटी का सवाल है.....भूख के सम्राट के अश्वमेध को रोकने का युद्ध है.....

मैंने एक अंगड़ाई लेकर अपनी उदासी को दूर करने का प्रयत्न किया । वृद्ध उस समय गंभीर होकर कुछ सोच रहा था । उसकी उस भव्य आकृति को देखकर मुझे कुछ क्षण के लिए मनुष्य की केवल एक झलक दिखाई दी, जिस सिर को काटकर थाल में रख दिया जाये तो पता भी न चले कि यह किसी प्राचीन ऋषी का है, या किसी प्रेम विह्वल सूफी का, या मनुष्य की अपराजित चेतना के प्रतीक गुरुदेव का.....

सामने वही अधूरी मूरत रखी है । वही भारतीय मुख है । धीरे-धीरे

ऊपर उठा हाथ बनता जा रहा है। एक दिन इसमें मशाल बन जायेगी और फिर आज़ादी की यह मूरत.....

किसी ने कहा—बाबू ?

देखा। एक औरत है। जवान है। लेकिन मन नहीं किया देखने को। उसकी जवानी उसकी बाढ़ सी वृद्धावस्था के हाथों में एक धरोहर मात्र है जैसे महाजन के पास किसान का वह खेत, जो है किसान के ही नाम लेकिन जिनकी फसल पर उसका अपना कोई अधिकार नहीं है।

वह पैसा माँग रही है, देख रही है, इधर-उधर किसी को न पाकर जैसे मेरी जवानी पर रहम खाकर मुस्करा रही है, फिर माँग रही है, किन्तु कोई उत्तर न पाकर चली जा रही है, वैसी ही जैसे कि यहाँ कहीं से इसी तरह, या किसी की ठोकर खाकर, गाली खाकर चलती चली आ रही है और आने-जाने की मेहनत पर आत्म सन्मान-हीनता का मुलम्मा चढ़ाने के कारण ही जिसके पेट के भीतर की साँपिन को रोटी नाम का वह जहर मिलता है, जिसको चर के, निगल के वह फुंकारती है और इंसानियत के घमण्ड करने वालों की सभ्यता पर बार-बार फन मारती है, पटकती है।

चलते-चलते उसका हाथ उठ रहा है, वह उसकी ओर दिखा रही है जिसके लिये पूर्वजों ने लिखा था कि वह हर जगह है लेकिन वास्तव में जो कहीं नहीं है। उसका वक्षस्थल खुल गया है क्योंकि कपड़े उसके शरीर को जीवितावस्था में भी नहीं ढंक सकते जैसे कि मुर्दे को कफ़न...

और वह मुझे लगा जैसे वह भी हाथ में मशाल उठाये एक अधूरी मूरत थी जिसको लेने को कोई तैयार न था क्योंकि इसके भी एक भारतीय चेहरा था.....

मैंने देखा। वृद्ध ऐसा बैठा है जैसे वह किसी घोर चिन्ता में पड़ गया है। उसके सफेद बालों पर धूल का एक छोटा सांधे में से छनता गोला चमक रहा है। लड़कों के पाँव घुटनों तक पत्थर के बुरादे से सफेद

हो चुके हैं, नाती का मुँह तक सफेद लग रहा है और सामने अधूरी मूरत रखकर कलाकार कुछ सोच रहा है, कुछ देख रहा है और न वह कुछ सोच ही पाता है, न देख ही; क्योंकि वह शायद भूल गया है कि उसे पत्थर काटना है, पिघलाना नहीं है, गलाना नहीं है.....

साम हो गई थी। मैं बस्ती के पिछवाड़े के एक तालाब के पास की छतरी में बैठा था। देखा बूढ़ा हरचरन साम की उठती धूलि में धीरे-धीरे पत्थर की उन दसियों बरस पुरानी सीढ़ियों पर टहल रहा था। उतरते अंधकार में पीछे बसे कुम्हारों के कच्चे मकानों के छप्परों में छन छन करता सा धुआँ मिलकर सारे गगन को उदास-उदास सा कर देता था। बगल में एक फूज बाटिका है ऐसी जैसी राजपूत मुगल मिश्रित चित्रकला का कोई नमूना हो, जिसके बीच बारहद्वारी, एक शिवालय, एक कुआँ और फिर उसमें कोई एकांत बस्ती। तालाब का पानी गंदला है।

वही भिखारिन वहाँ चुल्ह से भर-भर कर पानी पी रही है। इस समय वह एक आवारं के साथ है जो उसे बच्चे के रूप में शायद भोख माँगने का एक नया बहाना रात उतरते ही सीढ़ियों पर ही दे जायेगा और भिखारिन समझेगी कि इसके वाला सिर्फ दुअर्री दे गया है, बाकी तो सब परमात्मा की देन है।

मैंने देखा वृद्ध उन्मन सा घूम रहा था। मैंने कहा—क्यों गुरु कैसी रही ?

वृद्ध ने मुझे चौंककर देखा। कहा—बदल गया बाबू। जमाना उनके हाथ नहीं रहा जिन्होंने उसे पाल-पोसे कर इतना बड़ा किया था।

मे नहीं समझा। वृद्ध छतरी पर आ बैठा। उस प्रशांत संध्या की नीरवता में पत्तियों की लौटती गुंजार का कलरव, फिर अनंत आकाश के प्रभार का वह दाहक सूनापन, और अंधकार के थपेड़ों में कांपता निस्वन प्रकाश—जिसके सामने वह भव्य वृद्ध, जिसकी उदासीनता युग की

दुरुह उज्ज्वल के समान मुझे ही विह्वल कर उठी जैसे एक दिन नचि-केता यम के सामने उस जीवन और मृत्यु के प्रश्न करते समय अपने भावों से व्याकुल हो उठा होगा ।

वृद्ध ने कहा—एक दिन हम इसी ताल पर खेले हैं, यहीं जवानी में हमने भङ्ग घोटी है, देवी के पाठ किये हैं, नौटंक्रियाँ हुई हैं । जब यहाँ चाँदी की पाड़ें बाँधी थीं, रात-रात भर भगत होती थी.....

और एक दीर्घ निश्वास ।

‘कहाँ गईं वे सब गुरु ?’ मैंने पूछा ।

‘कहाँ गई ?’ वृद्ध ने धीरता से कहा । ‘वही तो तुम नहीं समझ सकने बेटा । वह तुम्हारे पैदा होने के पहले ही गोरा मालिक ले गया । तुम तो कोचड़ में पैदा हुये हो.....’

मुझे लगा जैसे मैं उस गंदे जल पर भन-भनाने वाला केवल एक मच्छर हूँ और वृद्ध वह पुराना पेड़ है जो अपनी अनेक जटाओं को लटका कर जल पर ल्ला रहा है ।

‘वह दूर कैसी रोशनी है ?’ वृद्ध ने पूछा ।

‘वहाँ आज कोई नेता जेल से छूटकर आये हैं । सेठ ने दावत दी है ।’ मैंने कहा ।

‘मगर सेठ तो लड़ाई के एक टेके में लाखों कमा गया । अच्छा ही है । बड़े नेता, पैसेवालों को ढूँढ़ रहे हैं जो पैसे देगा वही ताकत पायेगा ।’

मैंने देखा बूढ़ा एक बहुत बड़ा सत्य कह रहा था । लेकिन मन नहीं माना । नेता तो हमने बनाया है । सेठ तो कल सरकार के साथ था, मुँह से लड़ाई की निन्दा करता था छिपकर, रुपये कमा रहा था लड़ाई के बल पर खुलकर, हमीं तो कल भी नेता के लिये तड़प रहे थे । नेता हमारा है आज तक हम से लिया है । फिर ले ले । आज तक हमने अपना खून दिया है । आज हड्डियाँ देने को तैयार है । सेठ तो वह नफा

देगा जो उसने मजदूरों का पेट काटकर बचाया है, चोर बाजारी करके निकाला है। हम पैसा देंगे हमारी सरकार बनेगी।

वृद्ध ने फिर कहा—बाबू ! दिन बड़े खराब आ रहे हैं।

मैंने कहा—गुरु बुरा न मानना। जब से होश सँभाला है तब से तुज्जों को यही कहते सुना है। न जाने अच्छे दिन कब आयेंगे ?

वृद्ध ने अन्यमनस्क होकर कहा—यही तो रोना है कि अब वे शायद कभी नहीं आयेंगे।

मैंने देखा। आकाश और पृथ्वी, पेड़, छतरी, ताल, मैं, वृद्ध सब अंशकार में डूब गए थे। सबको जैसे समदरसी ने एक कर दिया था। किन्तु कैसी साम्राज्यशाही सी है यह समदरसिता जिसके लिए इतने अंशकार की आवश्यकता है। क्यों हम अभी तक केवल एक मैला नीर भरा नाला हैं...क्या हमारा नाम कभी भी सुरसरि नहीं पड़ेगा, क्या सदा ही जीवन ऐसे विभक्त होकर बहता रहेगा ?

और फिर कुम्हारों की बस्ती से किसी औरत के रोने की आवाज ! वह आवाज ऐसी चोंका गई जैसे एकदम अंतराल में काँप कर दीपक फक करके बुझ जाये और मनुष्य को लगे कि वह आकाश से पृथ्वी पर गिर गया है।

मैंने कहा—गुरु कौन रोती है ?

‘बही होगी’ वृद्ध ने विचलित स्वरसे कहा—‘मुलुआ की माँ ! मुलुआ कटौती के खिलाफ मिल के हड़ताली मजदूरों में था न ? आज पुलिस ने गोली चलाई। जखमी हुआ था। मर गया होगा।’

जैसे यह मौत का वर्णन उस घोर विवशता का दूसरा रूप है जिसे क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स की देशभक्ति कह-कह कर गोरे हर्ष से ताली पीटते हैं।

मैंने देखा। पूछा—पुलिस को बुलाया, आपस में समझौता नहीं किया ? इससे तो अपना नुकसान है न ?

‘बीच में हिन्दू मुसलमान का सवाल उठा दिया’ वृद्ध ने रोककर कहा ।

मैं काँप उठा । कहा—लेकिन गुरु यह तो फूट का रास्ता है । हम सब तबाह हो जायेंगे ।

वृद्ध ने कहा—और मैंने कहा ही क्या है मेरे दुधनुँहें ! तेरा वक्त था कि तेरी हथेलियाँ गुलाबी रहतीं और देखता हूँ आज हिन्दुस्तान की जवानी की हालत, तो मन करता है नाखूनों से सीना फाड़कर बाहर नाली में फेंक दूँ कि मैं यह सब नहीं देख सकता, नहीं देख सकता.....

सीढ़ियों पर शायद कुछ हलचल है । अँधेरा है, भिखारिन हैं, इक्केवाला है.....

और रात है, वृद्ध का हृदय इसलिये रो रहा है कि मैं जवान हूँ जब मुझे किसी लड़की से प्रेम करना चाहिये, लेकिन मैं गुलाम हूँ और मेरा यह अधिकार भी छीन लिया गया है.....

और अँधेरा छा रहा है । क्योंकि समझौता करने का मतलब किसी के सत्ता-स्वार्थ पर चोट है, और फिर हराम का बच्चा पैदा नहीं हो सकेगा, ऐश की भूख बाप न बनेगी, औरत का माँ होना पाप होगा और वह बच्चा होगी गरीबी... उस पर इंसानियत की भैंप मिटाने का ढोंग—भीख, और अँधेरा गहरा होता जा रहा है ।

दीपक का धुँधला प्रकाश कमरे की दीवारों पर काँप रहा था । दरवाजे जाड़े के मारे बन्द कर लिये थे !

मैं कुछ देर बैठा, फिर धीरे से मैंने पूछा—तो गुरु मूरत तो अभी अधूरी पड़ी है ! आखिर पूरी होगी भी या यों ही पड़ी रहेगी ?

वृद्ध ने उदासीनता से कहा—हो जाएगी ।

मैंने फिर कहा—अपने आप हो जाएगी ?

वृद्ध चुप रहा । कमरे में सन्नाटा वैसे ही हिल उठा जैसे दीवारों पर छायाएँ हिल रही थीं । पत्थरों के कोने चमक रहे हैं उनमें एक उज्ज्वलता

जैसे मुस्करा रही है वे कुछ कहना चाहते हैं, जैसे गुलामी भी, जो कुछ कराहना चाहती है आज खिले होठों से क्योंकि हर एक आसूवही तपिश है जिसे निकाल कर इंसान ने आज एक दूसरे पर जुल्म करने के लिए परमाणु बम बनाया है और वह उसे पिघला कर फिर से आसू नहीं बनाना चाहता क्योंकि उल्लुओं को जागीरें देने से कहीं कठिन है इंसान के लिए एक भोंपड़ी बना देना ।

वृद्ध ने चौंक कर कहा—बाबू ! मुझे नहीं मालूम मुझे क्या हो गया है, लेकिन पूरी करने को मन नहीं करता ।

‘यह पत्थर सफेद होता तो कहीं ज्यादा अच्छा लगता । कुछ मट-मैजा है । सफेद क्यों नहीं लेते ?’

वृद्ध ने मुझे घूर कर देखा । शब्द बहुत सध कर निकले—सफेद पत्थर गोरा मालिक अपने काम में लाता है, तभी उसकी मूरत भी अच्छी होती है ।’ वृद्ध चुप हो गया । भीतर कोई बच्चा रो रहा है । बाहर सन्नाटे की लाश पर कफ़न बन कर कोहरा अपनी सिमटनों को मिटाता जा रहा है क्योंकि लाश बढ़ती जा रही है, क्योंकि यह मुर्दापन भी किसी नये जीवन के लिए संघर्ष कर रहा है, जिसमें यह मजबूरियाँ किसी उगने वाले सूरज का इन्तज़ार कर रही हैं.....

मैंने कहा—लेकिन मूरत अधूरी क्यों रहेगी ?

वृद्ध ने खाँस कर कहा—अगर मूरत पूरी करने में रह जाऊँगा तो खाँऊँगा क्या ?

बात मुझे कचोट उठी । मैंने कहा तो क्या गणेश वणेश ही बनाते रहोगे ? रटी रटाइ चीजें, सिर्फ इसलिए कि पैसा मिलता है ?

वृद्ध ने मुड़ कर दूसरी ओर देख कर कहा; बच्चे हो न तभी ऐसी बातें करते हो ? मैं मजदूर हूँ । जो पैसा देगा उसका काम करूँगा ।

‘मैंने मना किया ?’ मैंने पूछा—लेकिन जिसका दाम सेठ और महाजन देगा वह सेठ और महाजन की चीज होगी । वही जिसमें तुम

सिर्फ रोटियों के गुलाम रहो, उसकी हिम्मत पर, और जिसके पसं पर तुम होगे, वह तुम्हारी चीज होगी, जिसके पीछे तुम्हारी वह कुर्बानी होगी जो किसी अखबार में नहीं निकालेगी लेकिन तुम उस अधूरी चीज को पूरा कर सकोगे जिसको यदि नही करोगे तो बेकार है तुम्हारे हाथों की वह मेहनत जिसके पीछे तुम्हारे ईमान की कसम है।

वृद्ध ने मेरी ओर तीव्र दृष्टि से देखा और कहा—हिम्मत नही पड़ती।

मैं हँस उठा। पूछा—तो क्या इस मूरत की हिन्दुस्तान को कोई जरूरत नहीं! हिन्दू-मुसलमानों में से कोई भी नही खरीदेगा?

वृद्ध चुप ही रहा। दीपक नहीं हिल रहा था; पर हिलती लौ की हिलती छाया के कारण, दीपक तो क्या, लगता है जैसे सारा कमरा थर्रा उठा है।

वृद्ध का वदन एक बार तिहर उठा जैसे वह कुछ भी नही सोच पा रहा था।

मैंने कहा तो क्या तुम्हारी कला तुम्हारे हुनर के मुँह से यही आवाज निकाल रही है?

वृद्ध कुछ नहीं बोला। उसने अपनी डाढ़ी पर हाथ फेरा। आज शायद वह एक क्षण अपनी लम्बी यात्रा का एक अल्प त्वरित सिंहावलोकन कर रहा था—समय की वह धूप जिसमें ईंसान का सारा काला पन आज दुखों में पक-पक कर सफेद हो चुका है पवित्र...स्निग्ध...

मैंने उठते हुए कहा—एक बार गोरा मालिक देखता कि जिसका हकदार वह अपने को समझता था आज हम उसी के घर में उसी को ललकार रहे हैं।

‘लेकिन घर तो हमारा लुट रहा है,’ कहते हुए वृद्ध ने काँपते हाथ से मेरा हाथ पकड़ लिया। देर तक मुझे देखा और वृद्ध के आकुल कंठ से निकला—लेकिन मूरत अधूरी नही रहेगी.....

और भीतर बच्चा हँस रहा था।

कुछ नहीं

२७ मौनीगली

कूचा लाला माधोलाल

प्रिय प्रकाश,

तुम्हारा पत्र आया । और यह भी समझ लिया कि भाभी से तुम्हारी बिल्कुल नहीं पटती । लेकिन यह भी समझ में नहीं आता कि विवाह का आखिर मतलब क्या है ? कहने को तो तुम बहुत कुछ कह जाओगे और मैं बिना दिलचस्पी लिये भी सुनूँगा ही, लेकिन बात इतने ही से सुलझने से रही । विवाह की कहानियाँ यदि कोई सुनाने बैठ जाय तो भूतों की कहानियाँ भी इतनी अच्छी नहीं लगेंगी । कुँवारी लड़कियों का लड़कों से प्रेम, प्रेम को ही सब कुछ समझने का पागलपन या पति-पत्नी का सम्बन्ध, न जाने कितनी उल्टी-सीधी बातें हैं; और जो कहीं छिपा चोरी किसी की पत्नी या किसी के पति का सम्बन्ध हो तो भला क्या कहने ? एक पूरा चिन्ता ही समझो ।

लेकिन हाल में एक घटना हो गयी है । हिन्दू धर्म खतरे में पड़ गया है । मेरी राय में बेचारा हिन्दू धर्म तो क्या, दुनिया का कोई धर्म नहीं जो इस हरकत से लड़खड़ा न उठा हो । मेरी नज़र में बात एक मामूली सी है । फिर भी तुम्हारे जीवन में नया कोण उपस्थित हो सके इसकी सम्भावना से ही तुम्हें लिख रहा हूँ । तुम जानते हो मैं लड़कियों को कोई अजीब चीज़ समझने से हमेशा ही इन्कार करता रहा हूँ ।

परसों मैं शाम को घूमने जा रहा था । राह में देखा एक औरत खड़ी रो रही थी देखने में वह किसी क्लर्क की पत्नी लगती थी । और थी भी वह सचमुच ही वही जो मैंने सोचा था । मैं रुक गया । लांगों

से पूछने पर पता लगा कि उसका पति उसे रोज़ मारता है और घर से निकालना चाहता है। इस लिए वह उसे पागल करार देना चाहता है। स्त्री कहती थी वह बादमाश है, भूठा है। सचमुच स्त्री उन्माद में थी। शकल की बुरी रङ्ग की काली, और तुरा यह कि वह गर्भवती भी थी। सोच सकते हो कितनी भद्दी होगी ? खैर हम कुछ लोग मिलकर उसके पति के पास गये। पति एक क्लर्क था। कुछ पढ़ रहा था। हमने जाकर दरवाज़ा खटखटाया।

स्त्री को देखकर मुझे यही विस्मय हुआ कि वह कितनी उन्मत्त थी। देखने में उसका कामातुर रूप वास्तव में असन्तुष्ट-सा हाहाकार कर रहा था। पुरुष का शरीर उसके मूल्य का मापदण्ड नहीं होता। नारी का अपना शरीर ही इस समाज में उसका एकमात्र सहायक है। सौन्दर्य और वासना का मेल ही यह संसार सह सकता है। वह स्त्री जो विवाह के बन्धन में पति को सब कुछ अर्पित कर देती है उसका आधार ठोस और भौतिक है। कल्पना की सुन्दरियों से प्रेम करने वाले अपने नैतिक व्यभिचार को छिपाने के लिए ही संसार को माया कहते हैं। स्त्री की वह अतृप्ति ही कदाचित् उसके नारीत्व का एक सत्य था जिसे वह खोलने में भैपती हुई अपने पति के यहाँ दासीत्व का अपना अधिकार माँग रही थी। हमारा समाज उसे वह भी नहीं दे सकता क्योंकि उसके पास कुछ भी नहीं है। वह स्वयं कंगाल है किन्तु उसे अपनी दुर्गन्ध पर ही भीषण अभिमान है।

सामने खड़खड़ हुई। उसके पति ने दरवाज़ा खोलकर हम लोगों को बिठा लिया और अंगरेज़ी में बातचीत करने लगा। औरत इस पर क्रोध से पागल होकर ऊलजलूल बकने लगी कि मैं तेरा खून पी जाऊँगी मैं तुझे जान से मार डालूँगी। तू कमा-कमा के रंडियों का पेट भरता है तभी मुझे निकालना चाहता है। मैं तेरा भण्डा फोड़ दूँगी। आदि-

आदि । पति ने सुना और मुस्कराकर मुझे अङ्गरेजी में कहा—‘आपने सुना ? क्या यह औरत आपको पागल नहीं लगती ?’

तुम बताओ प्रकाश, मैं क्या जवाब देता ? न मैं पति को जानता था न पत्नी को । पति की तरफ से बोलता तो सब कहते मर्द कुछ करे कोई कुछ नहीं कहता, और स्त्री की तरफ से उठता तो पच्चीस उँगलियाँ उठतीं कि औरत मिली और झट उसके साथ हो लिये । जैसे उसका पति कुछ है ही नहीं !

उस रात स्त्री ने अपने आपको उसकी दया पर पलने वाली भिखारिणी कहने में जो संकोच किया उसे देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि नारी भी नर की भाँति ही अपना स्वाभिमान रख सकती है । युगान्तर से जो उसे पुरुष की छाया बना दिया गया है उससे वह अपना अस्तित्व, अपनी मर्यादा भूल गयी है । यह तो जीवन का कोई कार्यवान रूप नहीं कि दोनों का एक दूसरे की उपेक्षा करना ही उनकी सत्ता की पूरी परख है । मैं जानता हूँ यह संघर्ष केवल इसीलिए है कि विश्वासों का अहाता ऐसी गलत जगहों से बाँधा गया है जिसने तारतम्य और सामंजस्य को जगह-जगह अनुचित रूप से काट दिया है । किन्तु जिसके पास लागत नहीं है वह कभी नया घर नहीं बना सकता । परन्तु इतिहास ने कभी पाँव को रोका नहीं ।

लड़-भगड़कर अन्त में स्त्री ने एक कोठरी बन्द करके भीतर से ताला लगा लिया क्योंकि उसे भय था कहीं सबके चले जाने पर वह उसे फिर मारे नहीं । भीतर से वह गालियाँ देती रही और पति ने मुस्कराकर कहा—‘आपकी सेवाओं के लिए धन्यवाद ! मैं तो उसे निकालता नहीं । जब उसे छिर्द उठती है तब भाग जाती है, आपने अच्छा किया कि मेरी पत्नी फिर मुझे सौंप दी ।’

मुझे उसकी आकृति पर कुटिल रेखा सरकती दिखायी दी । मैं

लौट आया। उस रात भर स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का घोर विवेचन जीवन में इतनी तन्मयता से मैंने पहली बार किया।

दूसरे दिन घर लौटते समय एक अजीब बात फिर देखी। तुम्हें याद होगा अमरनाथ एक अघेड़ आदमी है। सब उसका मज़ाक उड़ाते थे कि अभी तक उसका ब्याह ही नहीं हो सका था। योरप में क्वारण रहना एक गर्व की बात समझी जाती थी। हमारे देश में स्त्रियाँ उसे आदमी नहीं समझतीं जिसके कोई पत्नी न हो। पुरुष जब तक स्त्री को अपने अधिकार में नहीं रख सकता, स्त्रियाँ उस पर हँसती हैं। जङ्गली पशु को जंजीरों से बाँधकर ही पालतू बनाया जाता है। हमारे देश में एक समझदार वर्ग भी है, जिस वर्ग के सदस्य सिर झुकाकर, हारकर समझौता करने को सदैव तत्पर रहते हैं। उन्होंने देखा है कि जिन आधारों पर वे खड़े हैं वह केवल अपनी सत्ता-मात्र रखता है। यदि उसमें परिवर्तन किया जा सकता है तो वह चित्र ही मिट जाता है जिसका रूप अभी तक वे अपने मस्तिष्क में चरम सत्य के रूप में ग्रहण किये हुए हैं। जब तक मनुष्य समाज को रिश्वत नहीं देता तब तक उसे भीख का अधिकार भी नहीं मिलता। अब संसार कहता है उसके क्या नहीं हुआ। पारसाल उसकी शादी हो गयी। मुहल्ले में एक लड़की थी करीब सोलह-सत्रह वर्ष की। एक उसके छोटा भाई था। मां-बाप मर चुके थे। चाचा ने पाला था। चाची कर्कशा थी। बचपन से ही लड़की भूखी रखी गयी। किसी ने उसकी चिन्ता नहीं की। मुहल्ले के आवारे लड़कों ने उसे पहले से भाँग रखा था। इधर वह चौदह की हुई नहीं कि यारों ने उसके सामने मिठाई के दोने सजा दिये। आज तक की जितनी सतियों की कहानियाँ मिलती हैं उनमें वे स्त्रियाँ या तो राजघराने की थीं या पूज्य ब्राह्मणों की रिश्तेदार। कभी तुमने बचपन से ही गरीब और अपमानित लड़की को भी सती होते सुना है? हुआ वही जो होना था। लड़की का तो इस तरह पेट मज़े से

भरने लगा। बांत धीरे-धीरे मुहल्ले में फैल गयी। चाचा भूक मारते रह गये, कल तक भतीजी को भूखा मारने में जिनकी आत्मा ने तनिक भी कसक नहीं खायी आज उनकी मांस की नाक के मौजूद रहते भी इज्जतवाली नाक कट गयी। यह नाक तब नहीं कटी जब अफ़सरो के सामने उन्होंने उसे रगड़ दिया। इसलिए कि यदि वह यही नहीं करते तो उनका पेट कैसे भरता। पेट है तो उन्हीं का है। लड़की को उसे भरने के लिए कोई भी अधिकार वे नहीं दे सकते। देश की स्वतन्त्रता बेचकर वे अपना ईमान बनाये रखना चाहते हैं। कहाँ है ऐसी पददलित नारकीय सत्ता का न्याय? कहाँ है मनुष्यता का अपना सहेजा परम्परा का दुलार? कुछ नहीं, केवल पराजय, झूठ, एक दूसरे को धोखा देने की छलना। गँदले पानी में रहने वाले मेंढक क्या जानें कि पानी का स्वच्छ प्रवाह क्या है? आँख खुले से मुँदे तक जिनका जीवन एक वास्तविकता को दूर रखने का पाखंड है वे दीवाल तोड़कर खिड़की क्या बनायेंगे? और लड़की तन भी नहीं बेच सकती? उनकी स्त्री ने और किया ही क्या है? एक दासीमात्र ही तो है वह! वही चाची भी शर्मा कर चुप हो गयी। लेकिन लड़की को तो व्याहना था। क्या जाने किस दिन चाचा नवासे का मुँह देखते और जमाई का पता नहीं चलता। उन्हीं दिनों अमरनाथ दिल्ली से आगरे आया था। चार साल बाद जब वह लौटा तो चाचा ने उससे दोस्ती की। हम उम्र थे, कुछ देर भी नहीं लगी। घर ले गये लड़की दिखायी। वह बेचारा पसन्द-नापसन्द क्या करता? उसे तो क्वारपन तो मिटाना था। तैयार हो गया। शादी हो गयी। मुहल्ले के लोगों ने उसे खूब भड़काया भी मगर वह यही समझता रहा कि मुझे क्वार बनाये रखने के लिए बदमाशों ने गिरोह बाँधकर धड़्यन्त्र रचा है।

विवाह के समय वह पैंतालीस साल का था। बाल सफेद होने लगे थे, बल्कि महाशय आगे से गंजे भी थे। शरीर की गठन लटक

गयी थी। बीबी सोलह-एक की जिसका यौवन इतना लुटकर भी अगणित रत्नों से भरे कोप के समान था। समय अपने हाथों से जिसे लूट रहा हो, उसे मनुष्य, यह निर्बल जन्तु, क्या छीन सकेगा? पुरुष अपने को स्वामी बनाकर भी जब अपनी प्राकृतिक वासना से उसके सामने धिधियाता है तब उससे बढ़कर कौन-सा प्राणी है जिसे तुम वृणित समझ सकने का असम्भव काम कर सकते हो?

आज वह सोलह वर्ष की लड़की अपनी जवानी का जवानी से संतुलन नहीं कर सकती। दान का पशु बंधा रहने को है जैसे कोई गाय। जब मालिक की मर्जी हुई गाभिन करा ली अन्यथा कुछ नहीं का यह अभिशाप हमारे संस्कारों का सबसे बड़ा मोल है। गर्म-गर्म वासनाओं पर ठंडा पानी डालकर उससे कहा गया है कि भाग नहीं निकलनी चाहिए क्योंकि भाग में शक्ति होती है जो इस्पात को फाड़कर बाहर निकल जाती है।

और लड़की चुपचाप सब मानकर अपने कर्मों को पाप समझकर ग्लानि से दबी जाती थी। मुहल्ले का हर लड़का उसे देखकर किच-किचाता था और अब वह सबके सामने आखें झुकाती थी। उसका छोटा भाई फिर भी सड़क पर मारा-मारा घूमता था और किसी ने दो पैसे दिये नहीं कि वह उसी का खत बहिन के हाथ पर रख देता। बहिन पीटती, वह रो देता और फिर सड़क पर भाग आता। छोटा-सा बच्चा है, सात आठ साल का।

मुहल्ले में गज्जू नाम आज से नहीं सात साल से मशहूर गुण्डों में लिया जाता है। उसने उस लड़की को कहीं भी देखा नहीं कि बकना शुरू कर देता। अब भूल गयी है महारानी? कल तक तो हमने नहीं देखा तो खाँस-खाँस के बुलाया करती थी!

वह सुनती और सर झुकाए चली जाती। शादी के पहले उसको दो प्रेमियों को लड़ा देने में खास मज़ा आता था। किसी भी धर्म के

हिसाब से वह पाप था। क्योंकि धर्म का आधार नारी की शारीरिक पवित्रता है। यह पवित्रता वास्तव में पुरुष का कुटुम्ब बनाये रखने का मूलमन्त्र है। जब स्त्री उच्छृङ्खल हो उठती है तब शृङ्खलाएँ तड़तड़ाकर चटक जाती हैं। किन्तु जहाज जब समुद्र में अकेला चल निकलता है तब उसे पानी की अधिक शक्ति सहनी पड़ती है। मैं उन लोगों को भी जानता हूँ जो कहते हैं कि नारी ने आराम से रहने के लिए पुरुष को इतने अधिकार दिये हैं। हिन्दुस्तानियों ने भी आराम से रहने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य पर इतना भार छोड़ दिया है। सम्भयता सिखाने की आड़ बनाने वाले यह अंधकार के प्रेत वास्तव में एक दूसरे का गला घोट सका है, क्योंकि उनमें उनके स्वार्थ लित रहते हैं। और कुछ नहीं। यह कुछ नहीं मुझे पागल बना रही है क्योंकि शून्य पर टकटकी लगाकर साधना करने के व्यक्तिगत मोक्ष से मैं घृणा करने लगा हूँ। धार्मिक रूप और नीति से सती बनी रहने के लिये उसे जीवित रहने का कोई साधन ही न था। मैं पूछता हूँ क्या जवानी बेचना पाप है या कुत्ते की तरह निरीह ग्वा-पीकर मर जाना? तुम कहोगे रूखा-रूखा ग्वाकर और पवित्र रहना ही मनुष्य का सर्वोच्च आचरण है। लेकिन जो ऐसा उपदेश देते हैं वे न भुग्व की व्यथा जानते हैं न यही समझते हैं कि भुग्व की जो अनुचित प्रेरणा होती है उसमें, उचित साधनों से प्राप्त आनन्द में, कहीं अधिक बल और उत्तेजना होती है।

और कल वही गजो वही कही ताक लगाये बैठा रहा होगा। लड़की घर में अकेली थी। अमरनाथ कही गया था। जबर्दस्ती गजो उसके घर में घुस गया और उसे दबाने लगा। पहले तो लड़की मना करती रही, लेकिन बाद को जब वह यह धमकी देने लगा कि तमाम पुराना किस्सा खोल देगा तो वह काँप गयी। समझती थी कि अमरनाथ को कुछ भी नहीं मालूम। अब उसे शोक होता : क्यों दुख सहकर भी उसने इस चादर को कोरा रखा? हिन्दू समाज में बहुत-सी जवान

विधवा नहीं होती ? यदि अमरनाथ जान जायगा तब वह क्या करेगा ? वह उसे घर से लात मारकर निकाल देगा । और संसार कहेगा ठीक है । ठीक तो शायद वह स्वयं कहेगी । परम्परा का मैल क्या शीघ्र हो जा सकता है ?

आज यदि वह पवित्र बनने का प्रयत्न भी करे तो उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा । सारे पाप धुल सकते हैं, एक यही पाप नहीं धुल सकता ? यद्यपि इसका पीछे कोई चिन्ह तक नहीं रहता । क्षण भर का वह शारीरिक आनन्द ही जिसकी चरम अभिव्यक्ति है वह आत्मा का पाप कैसे हो सकता है ।

गजो ने धमकी दी कि वह उसकी पहली पाला का काला चिह्न सब के सामने लुटा कर बँटवा देगा । वह झुक गयी । गजो के दोस्तों को माजूम था ही । इन जलन से कि गजो फिर गोता मारकर मोती निकाल लाया उन्होंने बाहर से कुण्डी चढ़ा दी । हाल के हाल में मुहल्ले वाले बिरादरी वाला की भोड़ इकट्ठी हो गयी ।

परसा वाला क्लर्क भी आ गया । आगिर दरवाजा खोला गया । गजो निकला । अब क्या था ? घर-घर खबर बिजली की तरह फैल गयी । औरतों के मुँड के मुँड आने लगे । क्लर्क साहब ने आगे बढ़कर उस लड़की का अपराध सब के सामने खोल दिया । क्लर्क साहब का चरित्र अच्छा समझा जाता था । इसी समय अमरनाथ भी लौट आया । उसने भी सुना और क्रोध से पागल हो उठा । तीर की तरह भीतर घुसा, जैसे जान से मार डालेगा । मगर भीतर घुसकर देखा तो चुप रह गया । लड़की निस्सहाय-सी बैठी थी । अमरनाथ ठिठक गया । उसने देखा जैसे वह लड़की बिजली से चोट खाकर स्तब्ध सी सुन्न पड़ गयी थी । एक बार उसने अपनी ओर देखा, एक बार उसकी ओर । मुहल्ला बाहर इकट्ठा हो गया था, जैसे इससे बढ़कर स्त्री के लिये कोई पाप नहीं हो सकता ।

हमारा पाप-पुण्य परखने का नैतिक ज्ञान इतना कतुषित और संकुचित हो गया है कि एक स्त्री-पुरुष के मौन सम्बन्ध पर ही धर्म की दीवार खड़ी करते हैं। अमरनाथ को एक-एक कर याद आया। मुहल्ले की चार भाभियाँ एक बार जब वह क्वारा था तब उसकी क्या न थीं ? और आज भी कोई गजो से कुछ नहीं कहता ! फिर इस लड़की ने ही ऐसा क्या अपराध किया है। आखिर बचपन में ऐसी भूल कौन नहीं करता ?

उसने देखा वह फूट-फूट कर रो रही थी। उसने उससे कुछ भी नहीं कहा। जाने क्या उसका मन पसीज उठा। इतने दिनों में वह उस लड़की के बारे में सब कुछ सुन चुका था। घृणा के स्थान पर उसे सदा उस पर करुणा ही आयी।

बाहर लोगों ने तय किया कि अमरनाथ को अगर बिरादरी में रहना हो तो वह उस लड़की को घर से निकाल दे। अमरनाथ बाहर आया और उसको देखकर क्लर्क साहब ने घोषणा को दुहरा दिया। मुन्नू की बूढ़ी बूआ है न, उसका कथन देव वाक्य की तरह स्त्रियों में चलता है। उसने सीधे-सीधे शब्दों में अमरनाथ से इन्हीं शर्तों को दुहरा दिया। लेकिन अमरनाथ ने थोड़ी देर तक कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसने सिर उठा कर देखा। लोगों के मुख पर घृणा, तिरस्कार, और विद्वोभ के चिन्ह थे। वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। इतनी बड़ी बात उस पर ऐसे फिसल गयी जैसे चिकने घड़े पर से पानी। आज उस पर अधिकारी होने का दायित्व था। उसकी बुद्धि पर एक लड़की का जीवन था। क्या उसका मान एक स्त्री के वेश्या होने पर जीवित रह सकेगा ? जब वह गर्माँ और सजाक में तड़प-तड़प कर जान देगी उस समय किस मुख से वह स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ सकेगा ? संसार की कोई स्त्री उससे विवाह करने को तत्पर न थी। वह एक फँस

गयी ही-सी जो उस पर आश्रित है उसे वह कुचल दे क्योंकि उसे इसका अधिकार मिल गया है ?

सामने क्लक खड़ा था । अमरनाथ जानता था कि इस लम्पट के भीतर का विष ही ऊपर पुरण के ये भाग बरसा रहा है । इन घड़ों के मुँह इतने सँकरे हैं कि भीतर हाथ देकर अच्छी तरह इन्हें माँजा भी नहीं जा सकता । और वह खड़ा रहा जैसे कुछ नहीं हुआ । उसने कहा—‘जो हो गया सो हो गया । अब अपने-अपने घर जाइये ।’

‘नहीं’ बूआ गरजों, ‘तुम्हें उस कुलटा को निकालना पड़ेगा । ऐसी भी लुगाई की क्या गुलामी ?’

किन्तु अमरनाथ ने कड़क कर कहा—‘जाओ, जाओ, घर जाओ अपने, समझीं ! जब तुमने मुझ बूढ़े से इसकी शादी करायी थी तब वह जायज था ? और अब इस छोटी-सी गलती पर इसे मैं निकाल दूँ तो इसका क्या होगा ? दर-दर मारी-मारी न फिरेगी ? आजो, जाओ ! वह मेरी बहू है, किसी का क्या लेन-देन है ?’

इस पर सबने दाँतों से जीभ काट ली । मगर क्लक साहब बोल उठे—‘चलो ठीक है । तुम बूढ़े हो, तुम्हें तो रसोई दारिन चाहिए थी, सो मिल गयी । बीबी की सब इच्छायें पूरी करने के लिए तुमने व्याह ही कब किया था !’

पाप की यह पुकार एक षड्यन्त्र है । इसमें हमारा खोखलापन सारे आदर्शों को ठोकर मार कर नङ्गा नाचने लगता है । आये कोई और अपनी प्रशस्त के रक्त लिखित गीत सुनाये । आज मानव का सम्पूर्ण षतन हो गया है । इस वेदो पर नरबलि के अतिरिक्त किसी की भी प्रशंसा नहीं की जा सकती ।

अमरनाथ ने सुना और भीतर-ही-भीतर वह लजा ने सिकुड़ गया । जिस पौरुष पर बच्चा पैदा-भर करने को गर्व करके भारतीय डींग मारते हैं, उसका आजकल एक मात्र उपयोग समझते हैं, वह भी उससे छीन

लिया गया था। जिसके बल पर नारी मुँह खायी-सी भालू की तरह उसके पोछे दौड़ती है, उस पर ही इस क्लर्क ने घोर प्रहार किया था।

सामने यह एक विचित्र व्यक्ति था जो पाप को घर में देखकर भी उसे पालकर बढ़ा रहा था जैसे उस लड़की ने कुछ नहीं किया।

जन-समाज ठठा कर हँस पड़ा। लोग अपने-अपने घर जाने लगे। उनकी इच्छाएँ पूरी नहीं हुईं। शाम तक सब के मुँह पर यही बात रही। भगवान् राम तक यह नहीं कर सके थे। भीष्म पितामह तक के पुत्रपार्थ को शिगुपाल ने नपुंसकता कहा था।

तुम क्या सोचते हो ? इस दाम्पत्य जीवन का प्रेम कहाँ है ? यदि प्रेम दया है अथवा बाँट तौल है तो वह न रहस्य है न कोई अद्भुत कल्पना। क्या अमरनाथ बनना कठिन है या क्लर्क साहब ? मैं तो दोनों को ही कोई बड़ी बात नहीं समझता। हमारे पास कुछ है ही नहीं जिससे हम मन बहलायें अतः यही एक चक्कर है जिसमें निरंतर दोड़ते रहते हैं, मगर बाहर नहीं निकल पाते और अपनी ही पग ध्वनि से डर कर बार-बार मूर्छित हो जाते हैं।

लिखते लिखते थक गया हूँ, फिर कभी लिखूँगा। भाभी से नमस्ते कहना। मेरी राय है तुम पहले प्रेम न करके कैदियों की तरह ही सही, साथ-साथ रहने लायक समझोता कर लो, वर्ना छोड़छाड़ दोग तो जानते ही हो क्या होगा ! प्रेम तो एक लाचारी का मसविदा है। अब नहीं है तो कल हो जायगा और कुछ नहीं है तो वही करना होगा। थोड़े दिन बाद तुम्हारे अनुसार प्रेम की नयी परिभाषाएँ बन जायँगी।

शेष सब कुशल है। एक बात अवश्य है। कैसा भी माननीय समझौता हो वह परोक्ष रूप में होता पराजय ही है। उत्तर देना।

तुम्हारा ही
सोमनाथ

धर्म का दांव

मुल्लाजी ने हाथ उठाकर चिड़ियों को उड़ाने के लिए किया—
श ! श !

चिड़ियों ने कोठरी में दो चक्कर लगाये और फुर्र हो गयीं । खोंम्चे वाले गबदू ने हँसकर कहा—क्यों मुल्लाजी, तुमने घर नहीं बसाया तो जमाने में किसी को भी नहीं बसाने दोगे ?

उसके स्वर में व्यंग था ।

‘अमां भला क्या कोई बात है ? जब देखो तब, ली जरा सी रुई और उड़ गयीं घोंसले की तरफ । इतना ही नामा होता तो खुद न गिरस्ती बसाते ! जी, जी, करके तो लड़ाई काटी है, उसका नाम, यहाँ इन्हें दिल्लगी सूभी है !

‘तो क्या हो गया ?’ गबदू ने एक नजर बगल में रखे खोंम्चे पर मारी और फिर लुज्जे पर धिसी ईंट से खाने काढ़ने लगा ।

मुल्लाजी ने देखा । ‘मतलब है, हम अपने रोज़गार को थोड़ी देर के लिये टाल रहे हैं, लिहाजा आप भी आइये ।’

हाथ की रुई वहीं छोड़ दी और खांस कर बाहर आ बैठे ।

गबदू ने गिट्टियाँ बाँट दी ।

‘देखो मुल्लाजी गबदू ने कहा—तुम्हारी लाल रहीं न ?’

‘अबे हमें क्या बता रहा है ! हमने तुम्हें खेलना सिखाया है ।’

‘भगवान् कसम ! ये अच्छी दिल्लगी है ।’

‘खेल शुरू हुआ । गबदू ने कहा—अब तो जाड़े आ गये हैं मुल्लाजी ! खूब काम चलता होगा ?’

‘चलता ही है । हमारा काम भी कोई काम है । दुनिया को गबदू

रखते हैं।' मुल्लाजी हँसे और हाथ बढ़ाकर भीतर से हुक्का खींचकर बाहर धर लिया और दो कश खींचे।

‘तुम ने सुना?’ गबदू ने चिलम को हाथ पर उठाते हुए कहा?’

‘क्या?’

‘यही कि कारखाने टूट रहे हैं?’

‘अमां नहीं!’

‘क्यों लड़ाई तो खतम हो गई है। यह सरकार अब हाथी क्यों पालेगी?’

‘तो क्या होगा?’

‘मजदूर निकाले जा रहे हैं! बड़े साले मस्ता रहे थे। अब देखेंगे, क्या होता है?’

उसके स्वर में एक व्यंग मिश्रित प्रसन्नता थी। एकाएक किसी ने पीछे से कहा—मुल्लाजी राम राम।

‘राम राम भैया’ मुड़ कर देखा। गोविन्द खड़ा है। कंधे पर तीन साल की लड़की चिपकी है।

‘आओ बैठो।’ मुल्लाजी लुज्जे की ओर इंगित करके कहते हैं। ‘क्यों क्या बात है? अमा! लुगाई से हो गई?’

गबदू हँसा। भला कोई ना है?

‘क्यों? आखिर कुछ बात भी तो हो। यह मुर्दनी? यह जवानी? कोई बात भी होगी ही।’

‘बात तो कुछ नहीं मुल्लाजी’, गोविन्द लुज्जे पर उखरू बैठकर बोला। गमछे से मुँह का पसीना पोंछा। लड़की ने तंग कर रखा है।’

‘क्यों? क्यों? मुल्लाजी ने उत्सुक होकर पूछा। बच्ची के गाल फूले-फूले थे, ऐसे जैसे कि उस उम्र के बच्चों के नहीं होने चाहिये। लेकिन बाप तन्दुरुस्त है, एक भुलक एक रोज माँ की भी देखी ही है। फिर बालक अच्छा हो तो क्या ताजुब?

बालिका ने उल्टे हाथ से आँखों को मसला; मिचमिचायी और नीचे का ओठ जैसे अपने आप खदक उठा।

‘क्या बात है बेटी बिल्लो ! मुल्लाजी चुमकार कर पूछते हैं। ‘हम तुमको मिठाई देंगे। रोती क्यों है, बता न ?’

बस बच्ची ने जोर से रोना शुरू कर दिया। मुल्लाजी नहीं जानते, बालकों का दिमाग कैसा होता है। चक्कर में पड़कर उधर देखा। गबदू ने कहा, कहो गोविन्द जमेगी ? परसों दिवाली है न ?

‘अब के तो जरूर खेलूँगा मैया, नहीं तो काम कैसे चलेगा। अब रोजगार खतम ही हो गया। तब इसकी मैया ने रोज-रोज इसे जलेबी की आदत डाल दी थी। अब सूखी रोटी की बात है। गले के नीचे राँड़ के उतरती ही नहीं। बस दिन रात ‘रें रें’ लगी रहती है। कुछ भी हो, अब के तो किस्मत अजमानी ही होगी।’

मुल्लाजी ने फिर सोलह कौड़ी पर नजर जमायी। गबदू हँसा। बोला पक्की ?

‘पक्की।’ गोविन्द ने उत्तर दिया। मुल्लाजी ने उपेक्षा से कहा, अब चलोगे भी ?

गबदू फिर खेल पर झुक गया।

—२—

घर-घर में दीये जल रहे थे। सड़कें जगमगा रही थीं। यह इस साल की दूसरी दिवाली थी। पहली जर्मनी की हार पर मनवाई गई थी, दूसरी अब धर्म के कारण मनाई जा रही थी। सड़कों पर लोग रोशनी देखने के लिए घूम रहे थे।

मुल्लाजी की कोठरी में जुआ हो रहा था। पांसा फेंका जा रहा था।

गबदू ने जोर से फेंक कर कहा, पौ बारहा।

‘टिंडे !’ गोविन्द ने अँगूठा दिखाकर कहा—देख बेटा। मैं जानूँ, अभी पूरी तरह से तो नहीं फूटीं ?

मुल्लाजी ने झुक कर देखा और कहा—दुग्गी ।

गबदू का हाथ काँपा । गोविन्द ने हाथ पसार कर कहा—बढ़ा इधर ।

दबा लिये पैरों के नीचे पैसे । और आँख मीचकर फिर पांसे को उठाकर कहा—हार जाऊँ तो एक-न-एक खून होना लाजमी है । पौ बारा...!

स्वर जब लौटकर पांसे पर आ टिका, सचमुच पौ बारा था ।

गोविन्द की आँखों के सामने एक बार पत्नी का चित्र घूम गया । आज वह उसकी खँगवारी गिरवी रखकर रुपये लाया था । लेकिन अब वह तीन बनवा सकता है । मन-ही-मन सोचता—मजाल है कि हार जाऊँ ! पंडित का भेजा फोड दूँगा सालेका । सीधा दिया है, चार आने दच्छिना के धरे हैं । कोई दिल्लगी है ? हार कैसे जाऊँगा । पंडित ने कहा था कि दौज तक मिट्टी को छूले तो सोना हो जायेगा और उसके बाद...

उसके बाद की ऐसी की तैसी । उसके बाद जुआ खेला तो चूल्हे में जला दूँगा उस हाथ को । बैठी होगी बेचारी बड़ी आस से । जै माँ लच्छमी....

मुल्ला और गबदू हारे बैठे थे । उदास होकर मुल्ला ने गबदू की ओर देखा । गबदू खिसिया रहा था । बोला—बस ? बटोर के चल दिये ? जैसे दिवाली खतम हो गयी ।

‘कसम है गोविन्द ! दगा मत करना । यारी में खलल आ जायेगा । यारों के बिना जहान सूना है । समझ लो लुगाई का, क्या भरोसा । पेट भरोगे, गहना, दोगे, तब तक रहेगी, नहीं किसी और के जा बैठेगी ।

गबदू ने ताव से कहा—अजी हो लो मुल्लाजी । हमें न मालूम था,

वरना हम नहीं आते तुम्हारे यहाँ। सौगन्ध है, नत्था के यहाँ जाते तो कलेजा भी तर रहता।

‘अब रोता क्यों है?’ गोविन्द ने आगे सरक कर कहा—‘मैंने तो सोचा कि यारों के ज्यादा चूना नहीं लगाना चाहिये। कहीं और जाकर खेलो। मेरा तो भाग जाग गया है; कसम से। एक भी दाँव हारा हूँ?’

‘नहीं तो—गबदू ने काँप कर पूछा।’

‘मैंने पंडित से पूछा था।’

‘तो तू आज शहर के बड़े सेठों में क्यों नहीं गया? वहाँ तो छत्रके छुड़ा देता।’

एक बार आशा काँप उठी। क्या यह नहीं हो सकता?

‘मगर’ मुल्लाजी ने कहा—‘घुसने कौन देगा? शुरू में भी तो हजार दो हजार होने चाहिये?’

‘देवा कसम’ गबदू ने तैश में आकर कहा—‘तुम भी चुगद हो मुल्लाजी।’ वह प्रातःकाल जब खोंम्चा लगा कर बेचता है तो आकर्षित करने के लिए जलेबी गरम के स्थान पर आवाज देता है—जलेवा गरम। इसी से जोश में उसके मुँह से ‘देवी’ की जगह ‘देवा’ निकल गया।

पल भर को गोविन्द की आँखों के सामने समा बँध गया। वह कपड़े बदलकर सेठों में घुसा है और जुआ हो रहा है। फिर याद आये किस्से। एक बार एक बाबू सेठ के यहाँ गया, सेठ बैठा कुछ सोच रहा था। पूछा—‘क्यों आये हो बाबू?’

‘जुआ खेलने।’

‘अएटी में क्या है?’ सेठ ने पूछा।

‘पाँच हजार।’

सेठ हिकारत की हँसी हँसा। जूती उठाकर बोला—‘शर्त्त बदते हो?’ जुआ तो इसके बाद होगा।

‘किसकी?’ बाबू ने सहम कर पूछा।

‘बोलो, कल जापानी बम पड़ेंगे कलकत्ते पर कि नहीं ?’

‘पड़ेंगे ।’

‘तो देखो कल पड़ गये तो पन्द्रह हजार ले जाना ; नहीं तो पाँच हजार दे जाना ।’

जूती उलटी पड़ी ; तब तो पड़ेंगे ।

कहते हैं, बम नहीं गिरे और बाबू भी नहीं लौटा ।

वह मन-ही-मन काँप उठा । कही उसके साथ भी नहीं पड़े तो वह क्या खाकर लौटेगा ?

सेठों को क्या दस हजार की रिश्वत देते हैं, एक लाख इधर से उधर करते हैं ।

उसी समय गबदू ने फिर कहा—‘उसका नाम हो जायेगा और ठाठ हो जायेंगे । लड़ाई नहीं रही, न सही; मगर कस्ट्रोल तो नहीं हटा । पौ बारा.....’

गोविन्द काँप उठा । यह नहीं हो सकता । बाहर नौकर ही नहीं घुसने देंगे । सेठ की क्या बेइज्जती नहीं है कि वह हमसे खेलेगा ?

मुल्लाजी को कोई दिलचस्पी नहीं थी । रुई के पेशगी रुपये ले लिये क्या किया जाये ?

गबदू की बात से गोविन्द का हृदय बल्लियों उछला । मोटरें चलेंगी भगवान् का क्या ठीक ! कब छुप्पर फाड़ दे । दो ही दिन की बात है, फिर वही अंधेरा । अब के असली दिवाली आयी है । कमबख्त लड़ाई जरा और चल जाती, तो उसने भी लाखों कमा लिये होते । लाखों.....

वह स्वयं अपनी वास्तविकता भूल गया । मुल्लाजी ने अन्तिम दांव मारा । कहा—अब के आ जाओ ?

‘देखो ! समझ लो ।’

‘समझ लिया सब ।’

‘मर्जी तुम्हारी । बीच में नहीं उठने दूँगा । पूरा खेलना होगा । सारी रकम लगा दी है तुमने । दूकान धरते हो !

रुकते स्वरसे मुल्लाजी ने कहा—अच्छा ।

‘अच्छा-अच्छा नहीं । पहले कसम है । रहम का काम नहीं । पहले सोच लो ।’

मुल्लाजी ने सिर हिलाया ।

गोविन्द ने पासा फेंककर कहा—मारा है । पौ बारहा ।

भुक्कर देखा । विश्वास नहीं हुआ । बड़ा हुआ हाथ मुल्ला ने पीछे खींच लिया ।

‘देख लो फिर कहोगे मैंने छू दिया है ।’

देखा । गोविन्द ने आँख फाड़कर देखा । फिर उठाया । हाथ काँप रहा था । गबदू ने उल्लूककर कहा—सो रुपये । बेटा, एक नहीं ले जाने दूँगा । फिर दुग्गी ? मुल्ला और गबदू ठठाकर हँसे ।

‘निकाल दे सब खोल दे अंटी ।’

मारा जाऊँगा कसम से, बहू की खंगवारी है । मर जायेगी । गबदू देख, लौंडिया भूख से तड़प-तड़प कर मर जायेगी !

लेकिन गबदू हँसकर पैसे गिन रहा था ।

क्रोध से व्याकुल होकर गोविन्द ने कहा—मैं पण्डित का रून कर दूँगा ।

दोनों ठठाकर हँस पड़े । मुल्लाजी ने कहा—फाँसी चढ़ जायेगा । फिर तेरे बीबी बच्चों का क्या होगा ?

गोविन्द को चक्कर आया और अपनी सल्तन के खंडहर पर अपने आप बे-जान-सा बैठा रहा ।

मुल्लाजी कह रहे थे—गबदू ! जा बे, दो आने के दीये तो ले आ लक्ष्मी माई ने आज जान बचाया है । दिये तो जला दूँ ।

गबदू रुपये अंटी में खोस रहा था। बोला—मारो गोली मुल्लाजी !
इस भगवान का भी क्या भरोसा !

—३—

दीये बुझ चले थे। चारों तरफ फिर सन्नाटा छा गया था।

मुल्लाजी बराबर धुन रहे थे। रुई उड़-उड़कर इधर-उधर छितर रही थी। उन्होंने द्वार बन्द कर लिया था। एकाएक द्वार पर किसी ने आहट की। आवाज दी—कौन है ?

कोई नहीं बोला। मुँह पर का कपड़ा उतार कर दरवाजे का कुंडी उतारी। बाहर देखा—कुछ नहीं। कुत्ता पीठ खुजा रहा था। उफ़ ! क्या सोचा था, क्या हो गया। गोविन्द नहीं आयेगा।

लौटकर फिर मुँह और नाक पर कपड़ा बाँधा। और धुनने में लग गये। आवाज भुर्र भट भट, भुर्र भट भट करके कोठरी में गूँजने लगी और रुई का, छितरी हुई मुलायम रुई का ढेर सामने बढ़ता ही चला जा रहा था।

दिवाली भी हो गयी। दीये भी बुझ गये। मिठाइयाँ भी खतम हो गयी होंगी। लोग सो रहे हैं.....

भुर्र भुट भुट, भुर्र भुट भुट.....

एकाएक हाथ रुक गया। लेकिन गोविन्द की दिवाली ? कैसी मनी होगी उसकी दिवाली ?

हृदय में एक टीस हुई। अपने ऊपर एकाएक एक विलोभ हुआ। किसलिए चाहिये उन्हें वह पैसा ? भूखी होगी बेचारी बिल्लो। रो न दिया होगा माँ का दिल आज बेचारी बच्ची को दो बताशों के लिए तड़पता हुआ देखकर !

किन्तु हाथ फिर चलने लगा। मन का भार एक रुई है, जिसे आज वह धुन देना चाहता है; क्योंकि उसका अन्त जानकर भी अपना माध्यम वे नहीं समझ पाये हैं।

मुल्लाजी ने व्यथित होकर हाथ फिर रोक दिया । एक बार बाहर आ गये । आसमान में तारे अब भी छिटक रहे थे, जैसे किसी ने मुद्धियों में भर-भर कर खील बिखेर दी हो । याद न आती होगी उस बेचारी बच्ची को कि भगवान ने आसमान तक में आज खील बिखेरी है, फिर हमारे ही घर ने क्या बिगाड़ा है ? क्या कहा होगा गोविन्द ने घर जाकर ! कैसे घुसा होगा वह भीतर !

और फिर मुल्ला की चेतना में किसी ने गर्म लोहे का स्पर्श किया । किन आँखों से देखा होगा उस औरत ने अपने शौहर की बरवादी को ? किस अरमान से उतारी होगी उसने अपने गले से वह खंगवारी । नहीं दिया अल्लाह ने, कहर गिरा दिया । पिघले हुए सीसे से भी भयानक होंगे उसके आँसू, जिसमें इंसान की नफरत और औरत की कसम, अरे वह माँ की ममता, सब मिलकर चिल्ला उठे होंगे । वही, जिन्हें यारों के पत्थर दिल ने ऐसे कुचल दिया, जैसे कसाई के हाथ जिन्दी मुर्गी का गला उमेंठकर आधा काटकर तड़फड़ाने के लिए फेंक देते हैं और खर न गले से निकलते हैं, न बदन में इतना खून ही रहता है कि कुछ नहीं तो कमबख्त आँसू ही बनकर लहराता हुआ घुमड़ आये, अरमान का मवाद बनकर वह निकले ।

मुल्लाजी भीतर लौट गये । गिनकर देखे । ३२ रुपये थे । उठाकर मुट्ठी में बाँध लिये । एक बार हाथ खोलकर नजर डाली दीये की धुँधली रोशनी में भी कैसे चमक रहे हैं ? कैसी तड़प हैं ! कितना पानी ! सारी बीमारियों की एक मात्र दवा ! सारे दुख दूर हो जाते हैं । स्नेह से, फिर मुट्ठी बाँध ली, जैसे बाबर ने हुमायूँ के लिये अपनी जान की कुर्बानी देने तक में हिचक नहीं दिखायी थी ।

पड़ोस में किसी बालक के रोने का शब्द सुनाई दिया । याद आई फिर वह दो मुलायम नजरें । कितनी मासूम, भोली व निर्मल !

मुल्लाजी की मुट्ठी ढीली पड़ गयी । सामने ही रुई पड़ी है—साछे

जिन्दगी बीत गयी । फिर यह रौनक कितने रोज की है ? इस दफ्तीने का क्या होगा, जिस पर किसी की देवसी का साँप अपना जहर उगल रहा है ।

रात के उस सूनेपन में जब मुल्ला ने दरवाजे पर थपकी दी, भीतर जागने के स्पष्ट लक्षण थे ।

एक औरत ने द्वार खोला ।

‘कौन है ?’

‘मैं हूँ । गोविन्द है ?’

‘क्या है ?’ औरत ने रुखे स्वर से पूछा ।

‘यह रुपये दे देना उसे । कहना मुल्ला को जुए के रुपये नहीं चाहिये । वह कोई बनिया नहीं है कि दूसरों का गला काट कर चिराग जलाये । गोविन्द की बच्ची भूखी रहे और मुल्ला खुशियाँ मनाये, यह नहीं हो सकता ।’

‘लेकिन उन्हें आ जाने दो । तभी रुपये दे देना ।

‘कहाँ गया है ?’

‘जुआ खेलने ।’ स्वर में भयानक करुणा का अथाह—त्रस्त-विश्व रुदन कसक रहा था ।

‘जुआ खेलने ?’ मुल्ला ने विस्मय से पूछा—‘पैसा ?’

‘अब के मेरी बिड़िया ले गये हैं ।’

‘परवर दिगार !’ मुल्ला का स्वर गिड़गिड़ा उठा । स्त्री देखती रही । मुल्ला लौट पड़ा । उसे हाथ में रुपये ऐसे लग रहे थे, जैसे उसने जलते तये पर हाथ रख दिया हो और छुड़ाये न छूटता हो । उसका हृदय तेजी से धड़क रहा था ।

एकाएक मुल्ला चिल्ला उठा—गोविन्द !

सड़क पर पड़े हुए आदमी में तनिक भी चेष्टा नहीं हुई । मुल्ला ने देखा, उस समय गोविन्द के मुँह से बू आ रही थी । उन्हें ऐसा लगा,

जैसे वह आज सारे जीवन का जुआ हार चुके हों। रुपया चुपचाप उसकी जेब में रख दिये और सिर झुकाये हुए बढ़ गये, जैसे जवानी में वेश्या के कोठे से उतर कर भेंपते हुए चले जाते थे।

मृग-तृष्णा

ईद की बहार में जीवन का दुख जैसे समाप्त हो गया। चारों ओर ऊधम-सा मच उठा। वृद्ध सत्तार अपनी कोठरी से बाहर निकल आया। उसके सिर पर पट्टे कढ़े हुए थे। शरीर पर पुराना सिकुड़नदार मैला-सा कुर्ता था।

पड़ोस में खाँ साहब का मकान था। बगल में ही राशनिङ्ग के दारोगा थे। मैदान बाजार के पिछवाड़े से घिरा हुआ था। उधर जीवन विकृता है, बराबर शोर होता है, यहाँ तक कि हाहाकार में आदमी अपने को आदमी समझना छोड़ देता है, इधर सन्नाटा। उस सन्नाटे में मैले-कुचैले कपड़े पहनने वाले ताशेवालों का सूखा पंजर ताशों के घोर अट्टहास में अपने आपको पीटे चला जा रहा है। समझ नहीं आता कि यदि यह कोलाहल भी उसके जीवन की हलचल नहीं है, तो फिर किस मर्यादा के चरणों पर सिर कटा देने के लिए समस्त अभिलाषाएँ अभी जीवित हैं? और, स्वर प्राचीन मुगलिया दीवारों से लौट कर उठता है, और मैदान के ऊपर गुम्बज-सा छा जाता है। बच्चे खेल रहे हैं। उनके कपड़े अत्यन्त चमकदार हैं। उन्हें आज सिमइयों के प्राप्त करने की खुशी हो रही है। वह मिहतरानी हिन्दू है तो क्या, सिमइयों के लिए प्रातः से ही अपने बच्चों को खाँ साहब के द्वार पर छोड़ गई है।

सत्तार के जीवन ने भी कभी हलचल देखी होगी। आज सब उसे

भूल गये है। अब सत्तार की सत्ता का एक मात्र अपेक्षणीय अन्त है—मृत्यु।

वृद्ध सत्तार खाँस उठा। बालकों में कैसा उन्माद है। उसके शरीर में बहते गर्म रुधिर के लिए इसी कोलाहल की आवश्यकता थी, क्योंकि उनके मन का कोई भी भाग जर्जर नहीं है। सब कुछ चाहिए, यह सारी दुनिया उन्हीं के लिए है। और, सत्तार ने महसूस किया कि वह उस कुत्ते के समान है, जो घूरे पर से उठकर चाँद की ओर देखकर भूँक भी चुका है; किन्तु जिसका कोई परिणाम नहीं निकला। स्वर एक तीर की भाँति देखते-देखते उठकर कहीं अपने-आप खो गया।

वृद्ध बड़बड़ा उठा—‘पहले.....’ फिर मन ही मन दोहराया—

‘पहले आती थी हाले दिल पर हँसी, अब किसी बात पर नहीं आती।’

वृद्ध ने आँखें पोंछ ली। कभी-कभी वह शोर थम जाता, फिर मचने लगता। उस अनवरत बहती घुटन में जैसे एक कशमकश थी; जैसे धिल्ली की गर्दन दाबने पर वह तड़पती हुई पंजे फेंकती है, या कि छिप-किली की कटी हुई दुम अपनी जिन्दगी के पाप के कारण असह्य रूप से छुटपटाती है।

वृद्ध उठकर कोठरी में गया। आवखोरे से पानी पिया। बाकी को फिर सुराही में डाल दिया। नल तो दूर है। बुढ़ापे में पानी भर कर लाना कोई हँसी-ठठ्ठा नहीं। जितनी देर चल जाये उतना ही अच्छा। उसने टण्ड महसूस की। अपनी पुरानी वासकट पहन ली।

बाहर आकर देखा, मैदान में एक कुर्सी पड़ी है, जिस पर दारोगा साहब बैठे हुए गरज रहे हैं और सामने चपरासी एक बहुत ही गंदे मरियल आदमी को लिए खड़ा है। उस आदमी का चारखाने का तहमद है; दाढ़ी है, सिर घुटा हुआ। बदन पर बनियान है। और कुछ नहीं।

दारोगा साहब ने कहा—‘हाँ जी, क्या कहा ?’ फिर मुड़कर उस आदमी से बोले—‘तो गोया हम भख मारने के लिए तैनात किये गये हैं । आपकी यह तो है हुलिया, जिस पर चोर-बाजार भी करेंगे और नफ़ाखोरी भी । सपने तो रातियों के देख रहे हैं साहबजादे अशफ़ाक ?’

‘जी हुजूर !’ चपरासी ने झुक कर कहा ।

‘चालान करो इसका ।’

‘हुजूर !’ उस दूकानदार ने कहा—‘दो पैसे ही की तो बात है । दलियों में मेरा गला न कटाइये । ईद का दिन है, अल्लाह आपको...’

दारोगा साहब ने कर्कश स्वर से कहा—‘हरामजादे ! जानता नहीं, यह तू ने जेल जाने का काम किया है ?’

‘माई बाप,’ वह व्यक्ति गिड़गिड़ा कर बोल उठा—‘मारा जाऊँगा हुजूर ! बाल-बच्चे भूखे मर जायेंगे ।’

दारोगा साहब ठठा कर हँसे । जोरसे पलट कर कहा—‘सुना आपने खाँ साहब ?’

आराम-कुर्सी पर लेटे हुक्का गुड़गुड़ाते हुये खाँ साहब ने कहा—‘क्या हुआ जनावमन, गरीब से कुछ खता हुई ?’

‘वल्लाह !’ दारोगा भारी स्वर से हँसे—‘ईद के दिन बेईमानी कर रहा था ।’

‘कौन है ?’

‘अपने आपको मुसलमान कहता है तिस पर.....’

‘शैतान की मार हो ज़ालिम पर ।’ खाँ साहब ने तुनुक कर कहा । फिर उनकी खाँसी का कठोर स्वर गूँज गया ।

दारोगा साहब फिर जोर से बोले—‘कहता है, बीबी बच्चे भूखे मर जायेंगे ।’

‘खुदा न करे, दारोगा साहब ! सरकार ने आपको इन्साफ़ करने के

लिये इंसपेक्टर बनाया है.....।' फिर खखार कर थूकने का शब्द । तब तक दारोगा साहब की सुनने में तन्मयता ।

‘ईद का दिन है । आपकी तालीम का कायल हूँ ।’

‘आप उम्रदराज़ हों । मैं एक अर्ज करता हूँ । ईद के दिन जिसने बेईमानी की, अल्लाह उसे माफ़ न करेगा फिर कमबख्त अपने घर को भी खींचकर फंसा लेना चाहता है । उन्होंने क्या जुर्म किया है ?’

‘खाँ साहब !’ बूढ़े सिद्दीक ने कहा — ‘छोड़िये भी ।’

और फिर बात बदल गई । दारोगा साहब उठकर खाँ साहब की बैठक में चले गये । कसाई जैसी गठीली देह वाले उनके चपरासी ने उस दूकानदार को चटाक-चटाक दो चांटे जड़ दिये ।

छोटी बच्चियाँ ऊपर से भाँक रही थीं । एकाएक खिल-खिला कर हँस पड़ीं । एक की पुकार एक दम गूँज उठी—‘अग्मीजान ! बेचारे को मारा है ।’

कहने वाली बच्ची उतर कर जल्दी-जल्दी नीचे आ गई और खड़ी देखने लगी ।

बूढ़े सत्तार ने एक सर्द आह खींची और आसमान की तरफ देखा यह भी देखना था । अल्लाह ! दादाजान गोदी में बैठा कर सुनाते कि तब मुग़लों का राज्य था, तब फिरङ्गी मिर्फ़ सौदागर थे.....और सन् ५७ में हिन्दू-मुसलमान एक हो उठे थे, कि अङ्गरेजों के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई थी । उसे एकदम क्रोध हो आया । क्यों नहीं फिर से एक हो जाते ? बावले ! भूखे.....

और देखा, दूकानदार अब भी काँप रहा था । पिटकर भी उसे क्रुद्ध होने का अधिकार नहीं है । ईद के दिन ! कितना मैला !

चपरासी ने कहा—‘बोल क्या कहता है ?’

बच्ची ने पूछा—‘तेरा नाम क्या है ?’

‘शमशीर, बीबी । उसका गला भर आया, जैसे बालिक में उसे

अपनी बच्ची की प्रतिकृति दिखाई दे गई हो, जो गंदी होगी, गलीज़ होगी, जिसमें सड़ांध होगी और जो यदि घर बनी तो बनी अन्यथा बाजार से कुल्हड़ में खरीद लाएगी और तब तक चाट-चाट कर सब सिमई समाप्त करके मानेगी, जब तक कि नाखून सफेद न पड़ जायें, और फिर किसी के घर के आगे बजते ताशे के सामने शोर सुनने को जा खड़ी होगी—ऐसे ही जैसे यह बच्ची खड़ी थी.....।

‘शमशीर !’ बालिका ने कहा । उदास हो गई और बूढ़े मत्तार के पास जाकर कहा—‘बड़े मियां ! तुम तो कहते थे कि शमशीर का चलना खेल नहीं, जब चलती है तो दोनों तरफ रास्ता साफ हो जाता है ?’

वृद्ध सत्तार ने स्नेह से बालिका के सिर पर हाथ फेर कर कहा—‘मेरी बच्ची ! ईद मुबारक हो.....।’

‘मुबारक हो, मुबारक हो ।’ बच्ची ने हँसते हुए ताली पीट कर कहा । वह अपनी बात भूल गई ।

वृद्ध ने उसकी बात का उत्तर देना ठीक नहीं समझा । वह जानता था कि यही सरकारी चपरासी पुलिस से पहले रिश्वत खाकर शहर में दंगे मचा दिया करता था । इसी ने एक बार एक शिया औरत पर हमला किया था । और, यह वह शमशीर भी कहाँ जो चले ? चले तो वह जिसकी धार पर पानी हो, जिसकी लचक में फौलाद की भनभनाहट काँपा करे ।

फिर कहा—‘हमारी अच्छी कुलसुम ने यह बालों में नीला फीता कैसे बाँधा है ?’

‘यह ?’ कुलसुम ने कहा—‘हमें रशीद मियां ने लाकर दिया है । वे बड़े अच्छे हैं ।’

‘लेकिन बेटी, यह तुम्हें अच्छा नहीं लगता ।’

‘क्यों ?’ बालिका ने उदास हो पूछा ।

‘इसलिये कि तुम एक ऊँचे खानदान की हो। यह तो फिरंगियों की नकल है। तुम्हें तो सोना पहनना चाहिए।’

‘ओहो बड़े मियाँ,.....।’

फिर कठोर स्वर सुनाई दिया—

‘मुअर के बच्चे चला जा यहाँ से।’

मुड़ कर देखा, चपरासी साइकिल पर बैठा शमशीर को पैर से हटा रहा था। और सच ही शमशीर बैठा रहा। चपरासी चला गया था।

कुलसुम ने कहा—‘देखो बड़े मियाँ, एक बात कहें.....?’

‘कहो बेटी !’

एकाएक भारी स्वर सुनाई दिया—‘बीबी कुलसुम, कहाँ चली गई तुम ? इधर आओ।’

कुलसुम ने भयभीत दृष्टि से इधर-उधर देखा और फिर आसमान में उड़ते हवाई जहाज को देखती हुई सहमी-सी भीतर लौट गई।

वृद्ध ने माथे पर हाथ फेर कर एक बार जैसे यादगारों को उभड़ने से रोकने का प्रयत्न किया और चुप होकर नीचे देखने लगा।

शमशीर ने देखा और जब कोई नहीं दिखा तब सत्तार के पास आ बैठा।

वृद्ध ने ऊँची हुई दृष्टि से देखा। वह जानता था, यह भी एक नई दुख की कहानी होगी, जिसका अन्त पेट की आग से होगा। न होता पेट, न शमशीर आज मिट्टी के मानिन्द चटकती। और न टूटे कुल्हड़ की तरह उसे कूड़े हर फेंका ही जाता।

शमशीर रो रहा था। उसने कहा—‘बाप मानिन्द हैं आप। क्या यह इन्साफ है?’

सत्तार मन ही मन हँसा—‘हिकारत की हँसी। कैसा बेवकूफ है ? इतनी हिमाकत कि इसे भी इन्साफ की जरूरत है ? इन्साफ को भेलने

के लिये बादशाह की दूरत जिस चाँदी पर, जिस कागज पर हो, उसकी जरूरत है ।

इसी समय एक मोटे से आदमी ने आवाज दी—‘दारोगा साहब ! ईद-मुबारक । आप कहाँ छिपे बैठे हो ?’

आगन्तुक कोई सेठ था । सफेद कपड़े पहने, सिर पर खदर की टोपी लगाये । गले में सोने की जंजीर, एक लड़ी दो लड़ी.....

भीतर से आवाज आई—‘मुबारक हो आपको भी । आया सेठ साहब ।’

सेठ भीतर चले गये । कौन नहीं जानता कि वे सैकड़ों हजारों का माल हाथ की सफाई से इधर से उधर करते हैं और दारोगा साहब से उनकी पक्की दोस्ती है । पहली छोटी तनख्वाह देकर सरकार डाँट मारती है, मगर अधिकार सौंपती है । दूसरी तनख्वाह देकर सेठ जी दारोगा की खुशामद करते हैं, और यदि अधिकार नहीं दे सकते, तो उन्हें दारोगा की जगह डिप्टी कलक्टरों के ठाट देते हैं । और आज ईद की मुबारकबादी देने आये हैं ।

सत्तार फिर हँसा । सारा जमाना एक जाहिल और कमीनी भूठ की बुनियाद पर खड़ा है । वह रोज कालेज के होस्टलों में जाकर भूठ बोलता था । इसी बीच एक बहुत ही मैले कपड़े में रोगन भर कर कहता है—‘हुजूर के दरवाजे, खिड़कियों पर पालिश.....’

‘नहीं, नहीं आगे जाओ.....’

और फिर सत्तार गिड़गिड़ा कर कहता—‘मालिक, बच्चे भूखे हैं ।’

मिल ही जाता कुछ न कुछ । कहाँ हैं इस कोठरी में बच्चे ! शायद चूहे के भी न होंगे । मगर बच्चों के नाम पर ही तो थोड़ी-सी इन्सानियत बाकी बची है, वरना बूढ़ों को खुदकुशी कर लेनी चाहिए । अगर अल्लाह का नाम कुछ नहीं दे सकता, तो बच्चों का ही सही.....

और उसने कहा—‘अमाँ ! बात क्या है ?’

‘बात तो मालिक कुछ नहीं’, शमशीर ने कहा—‘सड़क पर बैठता

हूँ। टुकड़े बेचता हूँ यह चपरासी आया। मुझे क्या खबर थी? दो पैसे ज्यादा दाम बता दिये। अल्ला-कसम तुमसे भूठ कहें तो ईद के दिन दोजख मिले। पेट नहीं भरता कसम से। सो, यह यहाँ पकड़ लाया। अब कपड़े जव्त, मुहर लगा दी है और अब पैसे माँगते हैं, नहीं तो मुकदमा.....

‘तो,’ सत्तार ने कहा—‘तू भी तो रिआया का गला काटता है?’

‘खुदा की मार हो,’ शमशीर ने कहा—‘बड़े-बड़े सेठ भूखा मारते हैं, तब दारोगा कुछ नहीं कहते। यहाँ दो डबल पर ही इन्साफ की तलवार झूल गई।’

‘अबे, वे साढ़ू हैं एक दूसरे के समझा? वे भी बचने का रुपया खर्च करते हैं।’

‘वे तो मुसलमान हैं?’

‘होंगे! मगर इस्लाम से रोटी नहीं मिलती। रोटी सरकार और सेठ देते हैं। वे और हैं, हम और हैं। और बेटा, तू कौवा होकर हंस की चाल चलेगा, तो यही होगा।’

शमशीर उदास-सा चला गया। उसकी वह विषाद-सिक्त-श्वास बाजार की विराट दीवारों के बीच से ऐसे निकल गयी, जैसे छोटे पटाखे अपना ऊपर का बख्तर छोड़ कर निकल जाते हैं—जगमगाते हुए और फिर आसमान में जाकर फूट जाते हैं, लय हो जाते हैं।

वृद्ध सत्तार ने टूटा मोढ़ा एक और खिसका लिया और देखा, सामने औरतें खड़ी लड़ रही थी। वह हँसा। उस हँसी में कितना व्यङ्ग था, कितना विषाद, जैसे आज सब कुछ लड़ रहा था। दो दिन से वह गेहूँ नहीं पा सका था। राशन की भीड़ में घुसना उसके लिए असम्भव था। लेकिन यह भूख भी पार करनी है, क्योंकि जीना है; क्योंकि सलतनतों का उजड़ना एक मजहबी बात है, जैसे भरते-भरते घड़ा फूट जाता है...और वह फिर गुनगुना उठा—

‘पहले आती थी हाले दिल की हँसी,’ ।

[आँख उठाकर देखा, जैसे अब सब पर आ रही थी ।]

देवोत्थान

भोर हुई, जागरण हुआ । नन्दन वन में सुरभित समीर अलसाकर गूँजा उठा । मादक परिमल की हिलोर से स्निग्ध प्रकाश झिलमिला रहा था । शतदल शय्या पर इन्द्राणी अँगड़ाई भर उठी । सहसा उन युगों की शान्ति को घरघराहट की भीषण ध्वनि ने तोड़ दिया । चौककर मेनका उठ बैठी । इन्द्राणी ने उसकी ओर देखा और भयभीत-सी दोनों इन्द्र के वक्ष से चिपक गयीं ।

‘देव, वृत्र आ रहा है ।’

देवराज ठठाकर हँस पड़े । बोले, ‘देवी, यह वृत्र नहीं, बर्बर फ्रासिस्टों के वायुयान द्यावा के वक्षस्थल को चीर कर गरज रहे हैं ।’

‘ओह’, प्राणों को धैर्य ने आश्वासन दिया । सिंहद्वार पर दुन्दुभी बजने लगी । गन्धर्वों ने वीणा के तारों पर उँगलियाँ फेरों । बही अजस्र-विलास का महानद उमड़ पड़ा ।

इन्द्र ने वज्र को उठाते हुये कहा—‘देवी, एक दिन यह वज्र अभेद्य था, पर न जाने मानव ने इससे भी अभेद्य अस्त्रों का आविष्कार कैसे कर लिया । यह त्याग का वरदान आज न जाने मुझे जीवन से इतनी दूर कैसे खींच लाया ?’

दो काली छायाएँ आकर इन्द्र के चरणों पर लेट गयी ।

एक ने कहा—‘देव, मैं अभी तक आपके शासन का प्रतिनिधित्व कर रहा था ।’

दूसरे ने कहा—‘देव, मैं आर्थिक रूप से इसकी सहायता कर रहा था ।’

उर्वशी मुसकराई। उसने पूछा—‘तुम कौन हो, इतने जर्जर?’

एक ने कहा—‘मैं अन्धविश्वास हूँ। अपनी-अपनी कमर में डोर बाँधकर दूसरा छोर मानव-विश्व में बाँधकर यहाँ तक उड़कर आये हैं।’

दूसरे ने कहा—‘देव, मैं साम्राज्यवाद हूँ। जर्जर विच्छिन्न हो गया हूँ। अब रहा नहीं जाता। मेरी रक्षा करिये। मेरे अन्त के साथ आपका भी तो नाश है।’

इन्द्राणी बोल उठी—‘किन्तु तुमने हमारे नाम पर शोषण और अत्याचार क्यों किया?’

साम्राज्यवाद पुकार उठा—‘देव, यह मानव तो अब पुरानी लीकों को बिल्कुल छोड़ देना चाहता है। महाराजाधिराज, इन अनीश्वरवादी राज्ञों को समाप्त क्यों नहीं कर दिया जाता?’

वरुण ने दौड़कर यम से कहा—‘चलिये वहाँ कुछ लोगों को दण्ड दीजिये।’

यम ने कहा—‘मगर यह तो कलियुग है! मेरी शक्ति तो क्षीण हो गयी है। क्या करूँ, गुस्सा तो बहुत आता है। रुद्र से कहो न कि वे ध्वंस करें?’

देवताओं ने समवेत-स्वर से आवाहन किया—‘हे मृत्युञ्जय, नृत्यकरो!’

महारुद्र ने चरण उठाया, किन्तु युद्ध की भीषणता से काँपती पृथ्वी पर उनका चरण काँप गया। पार्वती दौड़कर उनके गले से लग गयीं। बोलीं—‘रहने दो। तुम्हीं एक भोले-भाले मिल जाते हो सबको! यह क्या, पाँव लहलुहान हो गया?’

रक्त से पाँव लाल था।

यम ने कहा—‘यह तो मृत्युलोक में मानव का बहा हुआ रक्त है!’

सरस्वती बोलीं—‘ओह, मेरी वीणा का नाद कोई नहीं सुनता!’

स्वर्ग में कोलाहल मच उठा। त्राहि माम् त्राहि माम् के स्वर से इन्द्र भी विचलित हो गये।

उनके मुख से सहसा निकल गया—‘यह क्या ?’
 ‘देव !’ चीत्कार हुआ । स्वर्ग पृथ्वी से दूर हो चला है ।
 अन्ध विश्वास और साम्राज्यवाद क्रोध और भय से काँपने लगे ।
 वे बोले—‘महाराजाधिराज, कोई इस डोरी के मानव-विश्व में बँधे
 छोर को काट रहा है ।’

‘लौट जाओ ! लौट जाओ !!’ इन्द्राणी चिल्लायीं ।

इन्द्र ने कहा—‘चलो मैं पहुँचा आता हूँ ।’ वरुण और सूर्य भी
 साथ चले । इन्द्र ने एक जर्मन वायुयान में बैठने के लिये बुलाया; किन्तु
 उसी समय रूस के ऐन्टी-एयरक्रैफ्ट गन के वार से वह हवाई जहाज
 गिरकर जलने लगा । वरुण काँप उठे । बोले—‘बाल-बाल बचे ! अरे
 इन्द्र, कहाँ आ गये ? कमबख्त लड़ते हैं, लड़ने दो ! कौन अपना नुकसान
 हो रहा है ? पूजा के समय खाने आ जायेंगे ! चलो ।’

इन्द्रने कहा—‘नहीं सूर्य, तपो, तपो ! कि यह अनीश्वरवादी भस्म
 हो जायँ ! सूर्य लाचारी के स्वर में बोल उठे—‘क्या बताऊँ ? आप
 कहेंगे कि पौरुष नहीं रहा । मगर सृष्टि का नियम ही ऐसा है कि मैं दिन
 पर दिन ठन्डा हुआ जा रहा हूँ और उधर रूस की बर्फ पर मेरा कुछ
 असर भी नहीं होता ।’

‘यह कौन मंत्रोच्चारण कर रहे हैं ?’ इन्द्र ने पूछा ।

साम्राज्यवाद ने कहा—‘आर्य्यपुत्र हिटलर और सूर्यपुत्र जापान
 पूजा कर रहे हैं ।’

‘और यह क्या है ?’ वरुण ने पूछा । साम्राज्यवाद ने खिसिया कर
 कहा—‘श्रीमान्, यह स्तालिनवाद है । नाक रगड़ कर मर गया, मगर
 इसे नहीं जीत पाया । यहाँ लोक-शक्ति इतनी प्रबल है ! समझ के परे
 की-सी बात है । मुझे कभी-कभी संदेह होता है कि आप तो कहीं इन्हें
 सहायता नहीं दे रहे ।’

‘अजी राम भजो भाई साम्राज्यवाद !’ इन्द्र ने कहा—‘यह क्या

कर रहे हो ? देवताओं पर अविश्वास ? तब तो तुम्हारा नाश अवश्यम्भावी है ।’

‘मेरे साथ आपके साम्राज्य का भी तो नाश है ।’

यह सुनकर इंद्र असमञ्जस में पड़ गये । वरुण ने इधर-उधर देखा । सहसा वह पुकार उठा—‘इंद्र वह देखो स्वर्ग कितना धुंधला, संकुचित और क्षीण होकर न जाने कहाँ दूर उड़ता चला जा रहा है ?’

इंद्र ने देखा ।

वरुण ने फिर कहा—‘अब अपना स्वर्ग सँभालियेगा कि यह पृथ्वी ?’

इंद्र ने कहा—‘चलो ।’

इन्द्र और वरुण उड़ चले । सूर्य ने रथ को बढ़ाया । साम्राज्यवाद चीख उठा—‘मौके पर दगा दे रहे हो ?’

दूर से आवाज़ आयी—‘बाज़ आये तुम्हारी दुनिया से ।’

साम्राज्यवाद पुकार उठा—‘मैं लुट गया !’

देवताओं का क्षीण उत्तर सुनायी पड़ा—‘मानव जन शक्ति अपार है ।’

साम्राज्यवाद ने रोर उठायी—‘यह सिंहासन, यह महल, यह मदिरा, यह अप्सरा.....’

शब्द हवा में तैर उठे—‘किसान मजदूरों से मुँह कौन लगे !’

साम्राज्यवाद गरज उठा—‘मेरी रक्षा करो.....’

प्रतिध्वनि वायु में विलीन हो गयी—‘हमें अपनी इज्जत प्यारी है । आज से तुम्हारी दुनिया से नाता ही टूट गया.....’

अन्धविश्वास अब तक चुप था । अब सूर्य से बोल उठा—‘कहाँ जा रहे हो ? सुनो तो !’

सूर्य ने कहा—‘प्रातः सन्ध्या मैं जिस भारत भूमि से अर्घ्य पाता हूँ उसका क्या हाल है ?’

साम्राज्यवाद किटकिटाकर बोला—‘वह गुलामी में जकड़ी है। भूख, हत्या, बलात्कार और नङ्गापन मेरा साम्राज्य चला रहे हैं।’

सूर्य ने विस्मित होकर पूछा—‘भीम और अर्जुन के देश में?’

साम्राज्यवाद ने कहा—‘वे तो मर गये। अब वहाँ आपसे भी अधिक मेरा राज्य है?’

सूर्य ने रथ बढ़ाते-बढ़ाते पूछा—‘यह कब हुआ?’

अन्धविश्वास ने कहा—‘तब देवता सो रहे थे।’

सूर्य ने कहा—‘तो क्या चाहते हो?’

‘जापान और जर्मनी का नाश। और गुप्त रूप से चाहते हैं कि रूस भी अधिक न बढ़ने पाए।’

सूर्य बोला—‘यह क्या? कहते हो कि बराबरी के लिए, धर्म के लिए, मानवता के लिए लड़ते हैं, और हिन्दुस्तान को आज़ाद नहीं करते? यह कैसी स्वार्थ और अन्धकार-भरी बात है?’

साम्राज्यवाद बोल उठा—‘हाँ तुम भी चले जाओ। जब तक जान रहेगी तब तक गुलामी को रखेंगे.....’

एक हँसिया नीचे से आकर अन्धविश्वास के लगा। वह गिर गया। सहसा नीचे से भीषण गरज उठी। उस हुंकार से साम्राज्यवाद काप उठा।

सूर्य ने दूर से पूछा—‘यह क्या हुआ?’

‘हिन्दुस्तान में एका हो गया। अब कहाँ बचूँ? उन्होंने गुलामी की जंजीरों को तोड़ दिया है।’

पृथ्वी से भीषण जनगान ध्वनि उठ रही थी—

हम मज़लूसों की मेहनत से

था स्वर्ग बना साम्राज्य बना,

है आज लिया बदला हमने

ऐ भंडे लाल सलाम तुम्हें।

साम्राज्यवाद के पैर लड़खड़ाये और वह मूर्छित होकर गिर गया । आकाश भँडा फहर-फहर पूछ उठा—सुना करते थे यहाँ कोई स्वर्ग था ? कहां है वह स्वर्ग ? पृथ्वी से भी अच्छा वह स्वर्ग कहां है ?

ऐयाश मुर्दे

फकीर चुपचाप चला जा रहा था । यमुना में पानी भयंकर वेग से घोर नाद करता हुआ बह रहा था । आकाश में रेतिया रङ्ग छाया हुआ था । शाह के मजार पर रुक कर फकीर बैठ गया । दूर कहीं 'अल्ला हो अकबर, अल्ला हो अकबर' का शब्द गूँज उठा । उसके बाद 'जल्लहान' या अल्लाह तेरा नाम सच्चा है का दूसरा गंभीर, लहराता, विनादित स्वर सुनाई पड़ा । शब्द टकरा कर यमुना की भीषण खादों में लय हो गया और समीरण का तीव्र निश्वास हरे-भरे पेड़ों और झाड़ियों में खेल उठा । फकीर ने सुना, कोई कह रहा था—दुनिया अजीब है और आदमी उससे भी ज्यादा अजीब ! कल का शाहंशाह आज धूल है, कल का मलका मुअज्जमा आज साढ़े तीन हाथ के महल में बन्द है । वह नूरजहाँ जिसके इशारों पर दुनिया हिलती थी, रेगिस्तान की वह अनाथ बालिका, आज जमीन में कैद है । कोई उसे छुड़ा नहीं सकता मर्जिये अल्लाह ।

फकीर के हृदय में एक अशांति जाग उठी । दुनिया एक दौड़ सी लगाती चली जा रही है । लड़ती, भगड़ती, लेकिन कोई चैन लेने का नाम नहीं लेता । परवर्दिगार । तेरी यही मर्जी है । तू नहीं चाहता वह खुश हो । खुश होकर शायद यह नाचीज़ तुझे भूल जायगा । इसीलिये तो तूने इतने दुःख, इतने दर्द दुनिया में फैला दिया है !

दो-तीन औरतें बुर्का ओढ़े आईं और मजार की परिक्रमा करके

दिया जला कर, कुछ मिठाई रख कर ठहर गईं। आड़ में से निकल बूढ़े रहमत फकीर ने उनके सर पर हाथ रखकर उन्हें दुआ दी। औरतें गईं। बूढ़ा रहमत नमाज़ पढ़ने लगा।

फकीर उसी तरह चुप बैठा रहा। दूर एक डोंगी चली जा रही थी। कोई आदमी उसे खा रहा था, और सामने एक सुन्दर-सी स्त्री बैठी थी। फकीर ने मुँह फेर लिया। बूढ़ा रहमत नमाज़ समाप्त कर चुका था। फकीर ने देखा, रहमत के मुख पर दिव्य ज्योति उतर आई थी। उसने फिर भी कुछ नहीं कहा। बूढ़े ने खाँसकर कहा—मेरे अजीज़ ! तू जवानी में ही जिन्दगी से क्यों मुँह मोड़ उठा ?

फकीर ने धीरे से कुछ कहा। बूढ़ा उसे सुन नहीं सका।

रहमत ने फिर कहा—तू पाक परवदिगार की गोद में आ गया है ! मैं कहता हूँ कि अभी से इस राह पर न आ, क्योंकि जवानी दीवानी है। फिसल जाने पर खुदा का दिया लिबास बदनाम हो जाता है। देख वह तूर का जलवा.....

बूढ़े ने फुर्ती से हाथ का इशारा किया। फकीर चुप बैठा रहा। हिला नहीं। बूढ़े ने कहा—देखा नहीं नादान ?

फकीर ने कहा—रसूले खुदा मज़ाक करना पसंद नहीं करते। तूर क्या है ? यह दुनिया खुद तूर है।

बूढ़े ने कहा—शाबाश ! इस मज़ार पर मुझे औरतों और बच्चों को गंडे ताबीज देते हुये बरसों हो गये, लेकिन मेरे चले सादुल्ला और रज़्जाक ने ऐसी बात कभी भी नहीं कही। यहाँ हर तरह की औरत आती है, मनौती मानती है, दुआ करती है, लेकिन वे दोनों कभी पाक बातें नहीं करते। तू कौन था।

फकीर ने कहा—मैं एक रफूगर का बेटा हूँ। घर में कोई नहीं बचा, दिल उचट गया। तभी से फकीर हूँ। जामा मस्जिद की छाया में सोता हूँ, राह चलते मुझे खाने को दे जाते हैं।

रहमत ने कहा—चल, अब तू यहीं रहा कर और खैरात किया कर ।
 फ़कीर ने सुना और देखा की बूढ़ा रहमत गाता हुआ एक ओर
 चल पड़ा । फ़कीर सुनता रहा और फिर वहीं लेट गया ।

बूढ़े का गाना अब भी सुनाई दे रहा था—अगर तुझे नाज़ है तो
 सुन कि महल आज वीरान खंडहर बने पड़े हैं । हमने राजा और
 भिखारी को मरघट में साथ-साथ जलते हुये देखा है । पागल ! आग से
 खेल कर कब तक बचा पायेगा ? यह मेला केवल दो साँसों का है
 नादान ! यह बुखार भी उतर जायगा ।

बुढ़ापे की वह कण्ठ भर्राहट धीरे-धीरे दूर होती-होती शून्य में
 लय हो गई । फ़कीर ऊँघने लगा ।

[२]

रज़्ज़ाक ने एक बार सादुल्ला की तरफ़ आँख मारी और फ़कीर से
 कहा—अमाँ तुम तो एकदम साईं बन गये । इतने दिनों में तो अल्लाह-
 कसम फ़रिश्ते भी बोल पड़ते ।

सादुल्ला ने टोककर कहा—चुप बे । हाँ तो नहीं । सुनाने दे उन्हें ।

फ़कीर ने कहा—तुम दोनों को हमेशा मज़ाक सूझती है !

सादुल्ला ने कहा—आप कह रहे थे, आपकी वालदा बड़ी अच्छी
 हैं । फिर आप उनके पास तो कभी नहीं जाते ।

फ़कीर ने उत्तर दिया—क्या जाऊँ ? दुनिया में जितना पैर रखोगे
 उतना ही फँसोगे । दूर ही दूर रहना अच्छा है । वालिद ने मुझे रफू का
 काम सिखाया था, मगर उनके गाहक हमेशा कहते थे—मियाँ क्या रफू
 किया । यह तो सब फट चला ? वालिद हँसकर कहते थे—अरे बाबू
 साहब रफूगर तभी तो दर्ज़ों से कम समझा जाता है, वनाँ आप भी नया
 ही न सिलवा लेते ?

रज़्ज़ाक ठठा कर हँस पड़ा । उसने कहा—अल्लाह कसम ! क्या
 बात कही है । यह न होता तो क्या हमारे पुराने पीर तुम्हें गद्दी देकर

जाते ? भला करे उसका जिसने तुम्हारे आने के लिये यह रास्ता दिखाया । आज से हम तुम्हारे गुलाम हैं ।

फ़कीर के होठों पर एक फीकी सी मुस्कराहट तैर गई । रज्जाक और सादुल्ला मज़ार से पीछे की ओर जाकर सोने लगे । फ़कीर चुपचाप बैठा रहा ।

एक औरत आकर कुछ दुआ माँगने लगी । उसने अपना मुँह खोल दिया । फ़कीर ने देखा । उसके गोरे मुँह पर काली जुल्फें काँप रही थीं । फ़कीर का दम घुटने लगा । औरत दुआ माँगकर चली गई । फ़कीर इस औरत को आज तीन दिन से इसी तरह आता देख रहा था । वह आकर कुछ दुआ माँगती और चली जाती । फ़कीर प्रायः निर्विकार सा बैठा रहता किन्तु आज उसका मन हिल उठा । जैसे शमा की लौ हिलते ही चारों तरफ का अँधेरा हिलकर उसे खाने दौड़ता है, उसी प्रकार आज उसके मन में वासना गूँज़ उठी । फ़कीर उसे देखता रहा, तब तक, जब तक कि वह दूर भाड़ियों के पार नहीं हो गई ।

उसके बाद वह उद्विग्न सा टहलने लगा । उसके हृदय में बेचैनी-सी भर गई । उसने बैठकर वहीं नमाज़ पढ़नी शुरू कर दी ।

[३]

फ़कीर को देखकर उस स्त्री ने बुर्का मुँह पर खींच लिया, वह एक दम सकपका गई । फ़कीर ने गंभीर स्वर में पूछा—तू क्यों आती है यहाँ रोज़ ?

औरत ने धीमे स्वर में कहा—बाबा ! मनौती मनाती हूँ ।

फ़कीर ने पूछा—किस लिये दुआ करती है तू ?

औरत ने उत्तर दिया—बाबा । मैं औलाद चाहती हूँ, मेरे कोई औलाद नहीं होती ।

‘औलाद’ ? फ़कीर ने बैठते हुए कहा, ‘औलाद के लिये किस्मत चाहिए ।’

‘मैंने बड़ी मनौतियाँ मानीं ? दर्जनों कब्रों पर दीपक जलाये, ताज़ियों का साया किया, पीरों के मज़ारों पर लोहबान दिया । मगर कुछ भी नहीं हुआ । कल्लन की माँ ने कहा था कि शाह के मज़ार जा, वहाँ एक फ़कीर हैं जो गीली मुलतानी में आग लगा दें, पानी पत्थर कर दें ।’

‘इस मज़ार पर तो मैं हूँ ।’ फ़कीर ने सिर उठाकर कहा—‘लेकिन मैं तो कभी गंडा ताबीज़ नहीं बांटता ?’

‘आप नहीं जानते ?’ स्त्री ने उत्सुकता से पूछा ।’

फ़कीर का दिल धड़क उठा । उसने कहा—जानता ? जा-जा, अपने घर जा । यहां कोई ऐसा काम नहीं होता । समझी ? अल्लाह की दुआ कर । अपनी-अपनी किस्मत ! या परवर्दिगार !

उसने ध्यान में मग्न होकर आंखें बन्द कर लीं । स्त्री मन ही मन प्रसन्न हो गई । उसने आगे बढ़कर फ़कीर के पैर पकड़ लिये । फ़कीर ने कहा—क्या है ? तू गई नहीं ?

औरत ने धिधिया कर कहा—आप मालिक हैं, अगर आप अपने बंदों पर रहम नहीं खायेंगे तो हमारा, हम गरीबों का, और कौन है ?

फ़कीर देखता रहा । औरत फिर कहने लगी—क़सम है मेरे सिर की मेरे रसूल ! वह तो चुड़ैल मुंतो है जो मेरे मरद पर डोरे डाल रही है । मैं कहीं की न रहूँगी मेरे मालिक ! अगर मेरे बच्चा नहीं हुआ वह मुझे छोड़कर मुंतो को बसा लेगा । फिर तो यह एक वक्त की रोटी भी न मिलेगी । आप पर खुदा का हाथ है; अभागों पर उसका साया पड़ जाय तो सारी तकलीफें मिट जायें ।

फ़कीर फिर भी चुप रहा । वह कुछ सोचने लगा । पाप और पुण्य का भीषण संघर्ष उसके हृदय में उथल-पुथल मचा रहा था । उसने सिर उठा कर देखा, स्त्री की आंखों में आंसू छलक आये थे । फ़कीर ने गंभीर स्वर में कहा—तो दिया बले आ जाना ।

स्त्री सिर झुका कर चली गई । फ़कीर बौराया सा इधर-उधर घूमने

लगा । मज़ार के चारों तरफ तो चक्कर लगा कर देखा, सादुल्ला और रज्ज़ाक कोई भी वहाँ नहीं था । उसने सन्तोष से एक लम्बी साँस ली और फिर वहाँ लौट आया ।

[४]

रात हो गई । चारों ओर अन्धकार छा गया । फ़कीर ने फूँक मार कर मज़ार पर जलते चिराग को बुझा दिया । हवा धीरे-धीरे काँपती हुई भाग रही थी । आस्मान में अनेक तारे निकल आये थे । बसंती ग्रन्धकार में यौवन की सुलगान कूक उठी थी । फ़कीर आतुर सा देख रहा था । एकाएक वह उठ खड़ा हुआ । स्त्री सामने खड़ी थी । फ़कीर ग्रन्धकार में उसको धूरने लगा । स्त्री ने कहा—बाबा ? मैं आ गई हूँ ।

फ़कीर ने धीरे से कहा—‘यहाँ बैठ कर दुआ माँग !

स्त्री धुटने के बल बैठ गई और प्रार्थना करने लगी । फ़कीर देखता रहा । जब वह उठ खड़ी हुई, फ़कीर ने कहा—अब यह बुर्का उतार दे । अल्लाह चाहेगा तो तू जल्द ही माँ हो जायगी ।

स्त्री का मन पुलक उठा । उसने निःशंक होकर बुर्का उतार दिया । फ़कीर ने देखा, बुर्का एक कफ़न था जिसमें उसे ज़िन्दा ही लपेट दिया गया था । भीतर वह केवल कुर्ता और पाजामा पहने थी । फ़कीर ने कहा—उधर चल ।

स्त्री कुछ भी नहीं समझी । वह फ़कीर के पीछे-पीछे मज़ार के पीछे चली गई । सड़क ओट में आ गई ।

ग्रन्धकार में सहसा फ़कीर ने उसका हाथ पकड़ लिया । स्त्री काँप उठी । उसने भर्राये स्वर से कहा—आप साईं । आप ?

फ़कीर पागल हो रहा था । उसने उसे अपनी ओर खींच कर उसे अपने शरीर से लगा कर भींच लिया । स्त्री छुटपटाने लगी । उसके मुँह से निकला मैं तुम्हारी बेटी हूँ बाबा ! यह क्या कर रहे हो ?

फकीर ने कुछ नहीं कहा। वह पशु-सा उन्मत्त हो गया था। स्त्री जोर से चिल्ला उठी और दोनों हाथों से उसने फकीर के मुँह को नोंच लिया। फकीर उसे लेकर पृथ्वी पर गिर गया।

इसी समय पास ही में पैरों की आहट हुई। किसी ने जोर से हँस कर कहा—अबे रज्जाक ! रात तो ऐसी है कि बजार चलते ! यन् क्या है कमबख्त !

फकीर ने सुना। स्त्री चिल्ला उठी—बचाओ ! बचाओ ! यह मरदुआ मुझे.....

फकीर ने जोर से उसका मुँह दाब दिया। स्त्री की आवाज़ घुट गई। पगध्वनि जल्दी-जल्दी पास आने लगी। फकीर ने देखा और भय से वह काँप उठा। पलक मारते वह पृथ्वी पर से उठा और मजार पर चढ़कर कूद गया।

स्त्री ने उठकर देखा, उसके कुर्ते के बटन टूट गये थे और जगह-जगह से फट गया था, जिसके भीतर से उसका गोंरा बदन भाँक रहा था और दोनों तरफ दो आदमी कुत्तों की तरह घूर रहे थे। वह बड़े जोर से चिल्ला उठी किन्तु उसकी आवाज़ निर्जन से टकरा कर विलीन हो गई। सादुल्ला और रज्जाक ठठा कर हँस पड़े।

रज्जाक ने कहा—अबे सादुल्ला, शाबाश ! फकीरों की मौत के बाद भी अच्छी कटती है ! कहाँ तो ये जिदे हैं कि कभी कोई नहीं आई और यहाँ इन मरों के ऐश हो रहे हैं।

सादुल्ला ठठा कर हँस पड़ा और उसने उस स्त्री का हाथ पकड़ लिया। स्त्री भय से काँप उठी। उसका श्वास रुद्ध हो गया।

उस समय रात गहरी हो गई थी। और शाह का मजार सो रहा था।

